हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज़

शेरका सवार !

['He who rides a tiger' का अविकल अनुवाद]

मूल लेखक
भवानी भट्टाचार्य
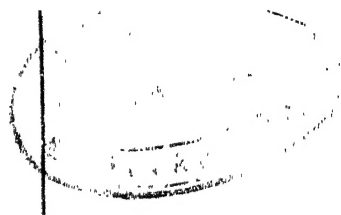
अनुवादक
शान्ता जैन,
एम. ए., बी. टी.

प्रकाशक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई-४.

प्रथम सस्करण—सितेम्बर, १९५८

प्रकाशक : नाथूराम प्रेमी, मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, हीराबाग, बम्बई
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, ५२५७-

प्रकाशकीय

डॉ० भवानी भट्टाचार्य आज एक विश्व-ख्यातिप्राप्त भारतीय लेखक और पत्रकारके रूपमें जाने जाते हैं। पटना विश्वविद्यालयसे एम० ए० करनेके पश्चात् आपने छह वर्ष विदेशोंमें बिताये और लन्दन विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। सन् १९४९-५० में आप अमेरिका-स्थित भारतीय दूतावासमें प्रेस-अटैची भी रहे। वहाँसे लौटनेपर आपने भारतके सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक 'इलस्ट्रेटेड वीकली'के सहायक सम्पादकका महत्त्वपूर्ण पद सँभाला और अब इधर कुछ समयसे उसे भी छोड़ सृजनात्मक साहित्यकी उपासनामें जुटे हुए हैं।

आपकी मातृभाषा बंगाली है, किन्तु अपने समकक्ष अन्य भारतीय लेखक डॉ० मुल्कराज आनन्द तथा नारायण आदिके ही समान आप भी अँग्रेजीमें ही भारतकी अन्तरात्माकी झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं। भारतके सच्चे स्वरूपको विश्वके नागरिकोंतक पहुँचानेके आपके प्रयासोंकी इतनी माँग है कि अब उनकी रचनायें विश्वकी प्रायः सभी प्रमुख भाषाओंमें छप चुकी हैं।

'शेरका सवार!' उनके अति प्रसिद्ध उपन्यास "He who Rides a Tiger" का प्रामाणिक अविकल अनुवाद है। यह अबतक सोलह प्रमुख यूरोपियन भाषाओं—फ्रेंच, रशियन, इटालियन, जर्मन, डेनिश, डच, स्वीडिश, नोर्वेजियन, फिन्निश, पॉलिश, जेच, स्लोवाक, रूमानियन, बल्गारियन, युगोस्लाव और स्पेनिश—और चीनी, सिंहली तथा छह अन्य भारतीय भाषाओंमें अनूदित हो चुका है। अब तक इसकी कोई तीन लाखसे अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं। इसकी भाव-भूमि इतनी विस्तृत है कि यह देश-कालकी सीमामें न बँधकर हर देश और हर कालके निवासीको अपनी धार्मिक परतंत्रता, अपने पिछड़े विचारों और सामाजिक

मर्यादाओं-मानोंके नवीनीकरणकी आवश्यकतापर विचार करनेको बाध्य कर देती है।

'शेरका सवार !' बंगालके सन् १९४३ के उस अकालकी पृष्ठभूमिपर लिखा गया है जो अँग्रेजी-साम्राज्यकी रक्षाके बहाने यहाँके नौकरशाहोंकी नृशंसतासे जबर्दस्ती खड़ा किया गया था और जिसके कारण स्वर्ण-देश बंगालकी चालीस लाखसे अधिक गरीब प्रजा चावलके दाने-दानेको तरसकर कालके गालमें समा गई थी। दूसरी ओर अकालके दिनोंकी वह कालनर्तन-वेला बंगालके पूँजीपति व्यापारियोंकी दीपावली थी जब उन्होंने मानों लक्ष्मी-पूजा की थी।

समाज-शिरोमणियोंके उस बल-प्रयोगका—धनके अत्याचारका—प्रत्युत्तर देता है, समाजकी निम्न कहलानेवाली जातिका व्यक्ति, कालू। वह जान चुका है कि "ये लोग उस जगह चोट करते हैं, जहाँ वह सबसे अधिक मार करती है—वह है पेट !" और वह एक खतरनाक खेल खेलता है—जवाबी चोट पहुँचानेके लिए। वह समाजकी दूसरी सबसे बड़ी कमजोरी धर्मको अपना हथियार बनाता है। किस प्रकार वह जीवनका सबसे भयावह खेल खेलता है, सिर्फ इसीलिए कि वह, और उस-जैसे करोड़ों लोग, जी सकें और जीना सीख सकें। उसी संघर्षकी कहानी है 'शेरका सवार !'

कहावत है 'He who rides a tiger, can never dismount,' उतरे कि शेरने खाया ! इसीलिए—

"बढ़े चलो,
चढ़े चलो !"

और उसकी पकड़ इस उपन्यासमें इतनी प्रबल हो गई है कि पाठक उसके मोहक प्रारम्भ, निर्बाध कथा-विस्तार, क्षोभ और आवेगोंके अद्भुत चढ़ाव-उतारमें बहता चला जाता है, उस अन्तकी ओर जहाँ सवारका शेरपर बैठना उतना ही खतरनाक हो जाता है जितना चढ़े रहना !

सुश्री शान्ता जैन, एम० ए०, बी० टी०, ने इसका परिश्रम-पूर्वक सफल अनुवाद किया है, इसके लिए हम उनके आभारी हैं। यहींपर आदरणीय डा० हीरालालजी जैनको भी हमारा हार्दिक आभार देना आवश्यक हो जाता है, जो आदिसे अन्ततक इसके प्रकाशनमें रुचि रखते रहे और समय-समयपर अपने बहुमूल्य सुझावोंके द्वारा उपकृत करते रहे। उन्हींके प्रयत्नोंका परिणाम है जो आपके हाथोंमें यह कृति इतने सुन्दर रूपमें पहुँच रही है।

—प्रकाशक

शेरका सवार !

शेरका सवार

१

स्नेही माँ-बाप बहुधा अपने दुर्बल और भीरु पुत्रोंका नाम जोधराज या रणवीर रखते हैं। मोटी और काली-कलूटी लड़कियाँ सौदामिनी और पुष्पमाला नामोंसे अपना जीवन बिताती हैं। किन्तु कालू अपने स्याही जैसे काले रंगके अनुरूप काला ही था। लोग कहते थे जब उसे पसीना आता है तब तुम उससे अपनी दावात भर सकते हो! इस मैत्रीपूर्ण कटाक्षको कालू अपने सहज उपहाससे टाल देता था। वह कहता—अब समय संकटका है, और तुम जैसे मेरे ग्राहक अपनी थैलियोंका मुँह जोरोंसे बन्द किये बैठे हो। तब मैं क्यों न अपनी इस लोहारी दुकानको बन्द करके एक स्याहीका कारखाना खोल दूँ? मैं अपने रसोईघरके चूल्हेके पास या तपते हुए सूर्यकी गरमीमें एक नादमें बैठकर स्याहीसे सैकड़ों दावातें भर सकता हूँ, आपकी क्या राय है?

उमर बढ़नेके साथ कालूके काले रंगपर एक नई छटा आ गई। उसकी अधेड़ आयुमें ही सिरके बाल खिरने लगे और धीरे-धीरे उसकी खोपड़ी मटहे रंगकी चमकीली तश्तरी जैसी चमक उठी, जिसकी दोनों बाजुओंमें लम्बे-लम्बे सघन बालोंके झुण्ड दिखाई देते थे। ऐसा लगता था मानो उसके ऊँचे पूरे शरीरपर दृढ़तासे रखे हुए सिरकी चाँद घुटवाकर उसपर पालिश चढ़ा दिया गया है। लोग व्यंग्य करते थे—कालू सर्वांग लोहा ही है, तीन मन धातु, जिसमें केवल शिखरपर एक कोमल स्थल है; और वह है उसकी पुत्री लेखा।

लेखा नामका भी एक इतिहास है। काल्लू तब युवक ही था और उसका विवाह हुए केवल चार वर्ष हुए थे। एक दिन उसकी दूकानपर एक बूढ़ा पुरोहित अपनी फूटी कलशी मरम्मत कराने लाया। वह एक सकरी काठकी बेंचपर बैठ गया जिसके पीछेकी चूनेसे पुती हुई दीवार बैठनेवालोंके झुके हुए सिरोंके तेलसे दगहाल हो रही थी। हथौड़ों और फूँकनेकी नली सहित उकरूँ बैठकर काम करते हुए काल्लूकी ओर देखकर उसने कहा—

"काल्लू, आज तुम्हें क्या हो गया है? तुम अपने आप एक अप्रकट सुखसे मुस्करा रहे हो, जैसे ठण्डा तरबूज खा रहे हो? वाह वाह!"

काल्लूने अपनी आँख उठाकर ऊपरकी ओर देखा। उसकी मुसकान उसके विशाल मुख और सघन काली मूछोंपर बिखर गई।

"मैं सोच रहा हूँ"—उसने कहा।

"यह भी क्या पागलपन है!"—बूढ़ा पुरोहित भयभीत होकर चिल्ला उठा। "अरे, सोचमें पड़-पड़ कहीं कमजोर मरम्मत करके मेरी कलशीका सत्यानाश मत कर डालना?"

काल्लू मुस्कराता ही गया और अपने काममें लगा रहा। उसने फिर कहा—"मैं सोच रहा हूँ। मेरी स्त्री—वह गर्भवती है। मेरी पत्नी—उसके दिन पूरे हो रहे हैं..."

—"और तुम खुशीसे खिलखिला रहे हो? यह भी खबर नहीं कि खिलानेको एक मुँह और बढ़ जायगा। पागल! पागल!"

—"मैं सोच रहा हूँ" पुरोहितकी बातपर ध्यान न देकर काल्लू कहता ही गया। "अपने छोटे मुन्नाका क्या नाम रखूँ? और यदि लड़की हुई तो..."

"हूँ" पुरोहितजी बोले।—"क्यों? यदि लड़का हो तो उसे अभिजित् कहना, और लड़की हुई तो चन्द्रलेखा। देखो, हम भले लोग अपने लड़के-लड़कियोंके ऐसे ही नाम रखते हैं। किन्तु तुम्हारी जातिके काले मनके लोग हव्वा, गीवा, पुण्टी, मुन्नी जैसे नाम पसन्द करते हैं।"

काळूने उन दो नामोंपर ध्यान दिया—"अभिजित्, चन्द्रलेखा।" उसने सन्तोपसे अपना सिर हिलाया। "अभिजित्, चन्द्रलेखा"—वह चुप हो गया और उसके मुखपर गम्भीरता और तल्लीनताकी मुद्रा प्रकट हो गई।

जब कलशीपर जोड़ लग चुका तब पुरोहितने पूछा—"कितना दूँ? देखो, दिन-दहाड़े मेरा गला काट लेनेका प्रयत्न मत करना!"

काळूने अपना सिर हिलाया और आँखें मिचकाईं—"भाई, तुमने मेरी मेहनत चुका दी।"

"क्या?"—ब्राह्मण कुछ आगेको झुकता हुआ चिल्लाया।—"यह क्या चालाकी खेल रहे हो?"

—"वे नाम! लड़का-अभिजित्, लड़की-चन्द्रलेखा। आपने इन नामों द्वारा मेरी मेहनत चुका दी। प्रणाम।"

वह वृद्ध ब्राह्मण उसकी ओर घूर कर देखने लगा, काळूको क्या हो गया? सारे झरना शहरमें ही क्यों, समस्त बंगालमें ग्राहकोंको लूटनेकी कलामें उसके समान घाघ और कोई नहीं था। काळू अपनी मेहनत-मजदूरीके मूल्यमें कभी एक पैसेकी भी छूट नहीं देता था। और अपने पेशेमें कुशल सारे शहरके कलइगरोंमें सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी वह बड़ी चतुराईसे कच्चा काम कर देता था, जिससे आगे फिर जल्दी काम मिले। ऐसा धूर्त था वह।

"क्या सच कह रहे हो?"—ब्राह्मणने पूछा। और उसकी आकुल दृष्टि काळूके मुखसे खिंचकर उसके द्वारा जोड़ी हुई कलशीकी ओर गई।

"आप घबराइए नहीं।"—ग्राहकके मनकी बात समझ कर काळूने कहा—"यदि जोड़ एक वर्षके भीतर उखड़ जाय, तो मैं फिरसे बिना एक पैसा लिए उसकी मरम्मत कर दूँगा। बिना एक पैसा लिए। आपने वे दो नाम सुझाकर मेरा मेहनताना चुका दिया है। लड़का-अभिजित्; लड़की चन्द्रलेखा। आपने कितने अच्छे नाम दिये हैं मुझे!"

उसे लड़की उत्पन्न हुई। उसके जन्मकी घोषणामें कोई तुरही नहीं बजी। प्रसवकी वेदनामें उसकी युवती माताकी मृत्यु हो गई।

कालूने बहुत दिन तक बड़ा शोक मनाया। किन्तु उसके दुखको दूर करनेके लिए वह छोटी-सी लड़की थी। उस नवजात शिशुने अन्ततः कालूके हृदयको भर लिया।

कालूने फिर अपना विवाह नहीं किया। उसे इस बातका दुख रहा कि उसे अब कोई लड़का नहीं होगा जिसका नाम वह अभिजित् रख सके। किन्तु दूसरा विवाह करके अपने कन्या-रत्नको सौतेली माँके अधीन करना भी तो उससे नहीं हो सकता था। और जो उसे छोड़ कर चली गई थी वह भी यथार्थतः गई नहीं थी। वह दिन-रात, सोते-जागते, उसीके पास रहती थी। विवाहके समय उसकी अवस्था पन्द्रह वर्षकी थी। वह दुबली-पतली थी, मजबूत नहीं, भीरु। उसे पति द्वारा चिन्ता की जानेकी आवश्यकता रहती थी। उसने कभी एक दिनके लिए भी पतिको अपनेसे दूर नहीं जाने दिया था। तब फिर वह उसे छोड़ कैसे जा सकती थी, भले ही उसने अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया हो? और क्या वह अपनी नवजात पुत्री चन्द्रलेखाको छोड़कर जा सकती थी?

उसने कितनी खुशीसे उस नामको स्वीकार किया था! उसका खुद-का नाम पुराने ढंगका था। कालू बहुधा उस क्षणका स्मरण किया करता था, जब उसे प्रसवकी वेदना हुई थी और वह आँखें मींचकर अस्त-व्यस्त लेट रही थी। उसने उसका हाथ खींच कर अपनी छातीपर रख लिया था और आँखें खोल कर एक बार उसकी ओर भर-नजर देखा था। कालूने उसकी ओर दृष्टि करके देखा कि उसके पीड़ित ओंठ चुपचाप कुछ चल रहे थे। उसने जान लिया कि वे उन्हीं जादूके नामोंका उच्चारण कर रहे हैं—अभिजित् और चन्द्रलेखा। उसने अपनी अँगुलियोंको धीरे-धीरे उसकी देह पर फेरकर उसकी पीड़ाको हलका करने और असीस देनेका प्रयत्न किया। फिर सिर हिलाते हुए उसने कहा—"एक दो घण्टेमें ही अभिजित् आ रहा है, या शायद चन्द्रलेखा।"

उसने उन मौन ओंठोंको फिर कुछ, और फिर कुछ, चलते देखा।

कुछ घण्टोंके पश्चात् चन्द्रलेखा आ गई और उसकी माँ बिलकुल शान्त हो गई जैसे वह गहरी नींदमें मग्न हो गई हो।

कालूकी एक बूढ़ी विधवा काकी वहाँसे एक दिनकी बैलगाड़ीकी दूरीपर एक गाँवमें रहती थी। वह एक दिन अपनी थोड़ी-सी गृहस्थीको एक टीनके सन्दूकमें बन्द किये हुए कालूके घर आ गई। वह उसी दो कमरोंके घरमें रहने लगी और गृहस्थीका सब काम-काज सम्हालने लगी। वह उस छोटी बच्चीकी सम्हाल भी करना चाहती थी। किन्तु इससे शीघ्र ही कालूके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो उठी। उसे यह बिलकुल पसन्द नहीं था कि लेखाका प्रेम दोमें बँट जाय। लेखा तो सोलहों आने उसीकी थी। वह किसी दूसरेको कभी दोनोंके बीच नहीं आने देना चाहता था।

कुछ वर्षों बाद, एक उत्सवके सप्ताहमें वह वृद्धा उसे अपने गाँव ले गई। पूरे दो दिन भी नहीं बीतने पाये कि कालू वहाँ जा धमका। उसके मुखपर विषादकी छाया थी। उसे तुरन्त लेखा वापस चाहिए थी।

"वह यहीं रहेगी"—बूढ़ी काकीने झिड़क कर कहा। कालू चुपचाप, बिना कुछ कहे, अपनी लड़कीकी ओर देखने लगा। तब लेखा केवल पाँच वर्षकी थी तो भी उसने पिताके मुखपर शोक पहचान लिया। वह उसकी ओर खिसक आई और अपने नन्हेंसे हाथोंको उसकी मुट्ठीमें डाल कर बैठ गई।

"यह त्योहारका समय है"—वृद्धाने क्रोधसे चिल्लाकर कहा। "पटेलके घर दशभुजा देवीकी मूर्ति बैठा दी गई है। सब कोई उसका दर्शन-पूजन करेंगे। लड़के-लड़की अपनी नई पोशाक पहनकर उस बड़े घर जाँयगे। उन्हें देवीके प्रसादकी गरीकी मुट्ठी-मुट्ठी मिठाई बाँटी जायगी। सबको बड़ा आनन्द होगा। क्या तुम कुछ नहीं समझते?"

"हाँ लेखा।" कालूने सम्मति देनेका प्रयत्न किया। नन्ही-सी बच्चीने ऊपरकी ओर देखा। उस छोटी-सी उम्रमें भी उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें उसके मुखको सुशोभित कर रही थीं। उनके द्वारा उसने पैनी दृष्टि-से पिताकी ओर देखा और कहा—"हम तो घर चलेंगे।"

"यहाँ दूसरे बच्चोंके साथ तुम्हें खूब तमाशा देखने को मिलेगा"—कालूने लटपटाती आवाजसे अपनेको दवाते हुए कहा।

"तमाशा ! हूँ", कह कर बच्चीने अपने नीचेके ओंठको कुछ आगे बढ़ा दिया। "घर ही पर काफी तमाशा है। बाबा, चलो।"

एक वयस्क कन्याके समान विश्वासपूर्ण भावसे लेखा उसे उनके लिए रास्ते पर खड़ी हुई एक जर्जरित बैल गाड़ीके पास ले गई।

शायद कालूका सबसे अधिक सुखका काल वही था, जब लेखा गोदमें खेलने योग्य थी। उसे लेकर घूमने और उसकी आवश्यक साज-सम्हाल करनेमें कितना आनन्द था! ऐसा लगता था मानो कालूमें मातृ-प्रेरणा उदित् हुई हो। बच्चीके बड़े होने और अपनी देखभाल आप करनेके साथ-साथ कालूके हृदयमें एक पश्चात्ताप-सा होता था। उसकी भुजाएँ अब भी उसको उठाकर गोदमें लेनेके लिए फड़कती थीं। जहाँ अपने चौड़े कंधे पर वह नन्हा-सा मुख बहुधा विश्राम लिया करता था वहाँ उसे अब सूनापन-सा लगता था। अब लेखा अलग बिस्तर पर सोने लगी थी, इससे कालूको सोनेमें भी सूनापन लगता था और वह उसे ढूँढ़नेके लिए इधर-उधर भटकने लगता था। कभी-कभी वह इस भयंकर भावनासे अकस्मात् जाग पड़ता था कि लेखाको कोई चुरा ले गया। वह उसका नाम लेकर चिल्लाते हुए अपने पैरों खड़ा हो जाता। फिर वह सरक कर उसके बिस्तरके पास आता और तकियेमें गड़े उसके अध-खुले मुखको अँधेरेमें ही देखनेका प्रयत्न करता। कहीं उसकी नींद न टूट जाय, इतनी सावधानी रखते हुए वह उसके कोमल केशोंको स्पर्श करता और उसकी साँसका अन्दाज लगाता। उसके पेशेसे कठिन हुए हाथपर वह साँसका झोंका कैसा चमत्कारी लगता था। मनुष्यको और चाहिए ही क्या? दैवने उससे उसकी स्त्रीको छीन लिया था, किन्तु उसके बदलेमें उसे दे दी चन्द्रलेखा।

जब लेखा छह वर्षकी हुई तब उसकी ठुड्डी पर एक सुईकी नोक बराबर तिल प्रकट हुआ। जिस दिन कालूने उसे देखा, उसे बड़ी प्रसन्नता

हुई। "लड़कीके मुखपर कमसे कम एक छोटा-सा तिल अवश्य होना चाहिए।"—उसने उससे कहा। "तेरी माँके तीन तिल थे। एक बाएँ गाल पर, जहाँ उसकी मुस्कराहटसे गड्ढा पड़ता था। दूसरा? वह था?" वह कहते-कहते रुक गया और उस यौवनपूर्ण मुखका चित्र अपनी स्मृतिमें जाग्रत करने लगा। "वह दूसरा तिल ठीक मुखपर नहीं था। वह था उसकी ठुटकीके कुछ निचले भाग पर।"

उसकी आँखें कुछ देर तक सदाकी नाईं उसी सुदूरवर्ती मुद्रापर जमी रहीं।

लेखाको स्कूल भेजनेमें बड़ी कठिनाई हुई। किन्तु कालूने निश्चय कर लिया था कि वह उसका भरण-पोषण शक्ति भर भले आदमियोंकी लड़की जैसा करेगा। इस निर्णयके पीछे लड़कीकी माँकी भी प्रेमभरी अभिलाषा थी, जो एक सीधे-साधे कलईगरके लिए विचित्र ही थी। जब वह अपने भावी सन्तानके विचारमें तल्लीन होती तब वह बहुधा कहा करती थी—"हमारा लाड़ला लड़का हो या लड़की; अवश्य ही मिशन-स्कूलमें जायगा और वहाँ दी जाने वाली समस्त शिक्षा पायगा। इस खर्चके लिए हमें धन जुटाना ही पड़ेगा; भले ही इसके कारण हमें अपने पेटपर पट्टी बाँधना पड़े।"

किन्तु सच्ची समस्या पैसेकी नहीं थी। उन पिछले दिनोंमें भी जब कालूने अपनी कारीगरीकी धाक दस कोसके इर्द-गिर्दमें नहीं जमा पाई थी, उसकी आमदनी इतनी तो थी कि वह अपनी लड़कीके लिए पुस्तकों और स्कूल फीसका खर्चा बखूबी उठा सके। किन्तु क्या स्कूल उसे लेना चाहेगा? उसके सुन्दर रूप, आकर्षक हाव-भाव तथा मनोहर नामके होते हुए भी वह थी तो एक कारीगरकी लड़की! केवल कालूकी आशा मिशनकी एक बूढ़ी महिलापर थी जो उस स्कूलकी प्रधान अध्यापिका भी थी। उसके मुखपर दयालुता थी और नीली आँखोंमें स्नेह। वह उसे काम दिया करती थी और कालू भी उसे प्रसन्न रखनेका भरसक प्रयत्न किया करता और कम-से-कम मजदूरी लिया करता। वह महिला

अनेक बार उसकी दुकानपर आ चुकी थी। उसने लेखाको भी देख लिया था और यह भी जान लिया था कि वह मातृ-विहीन है। जब काल्लूने उससे एक विशेष उपकारकी प्रार्थना की, तब उसने अपने ओंठोंको दबा लिया और देर तक लेखाको नीचेसे ऊपर तक देखा।

—"तेरा नाम क्या है, बेटी?"

—"लेखा।"

काल्लू तुरन्त अपनी लड़कीकी ओर मुड़ा—"तुझे अपना पूरा नाम बतलाना चाहिए? क्या जानती नहीं है?"

—"चन्द्रलेखा।"

काल्लू आशा और भयके बीच झूलता हुआ उस मिशनकी महिलाकी ओर देखने लगा। वह महिला गम्भीर चिन्तनमें पड़ गई। यदि कहीं उसने 'न' कह दिया, तो बस उसका सारा स्वप्न, उसकी माँका सुनहला स्वप्न, समाप्त हो गया। किन्तु वह महिला अपने निकेल-फ्रेम चश्मेके भीतरसे मुस्कराई और उसने स्वीकृतिके भावसे अपना सिर हिलाया।

"हाँ क्यों नहीं?"—महिलाने कहा। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने एक चेतावनी दी। "तुम्हारी लड़कीकी पोशाक अच्छी स्वच्छ होनी चाहिए, और जूते भी।" मजदूर-पेशा लोगोंके लड़के-बच्चे नंगे पैर चलते फिरते हैं, यह वह मिशनकी महिला जानती थी।

"चन्द्रलेखाको उसकी आवश्यकताकी सभी चीजें मिलेंगी।"—काल्लूने दृढ़तासे उत्तर दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल काल्लू उसे कान्वेण्ट स्कूलमें ले गया जो मुख्य रास्तेपर कोई आध मील दूर था। किन्तु वह फाटकसे पचास गज दूर ही रुक गया।

"अब तुम आगे चली जाओ, लेखा"—कहते हुए उसने उसके कंधेपर उसकी पुस्तकों और स्लेटका हरे कैन्वासका बना हुआ बस्ता लटका दिया।

वह उसका हाथ जोरसे पकड़े हुए चुपचाप खड़ी रही।

—"लेखा·····"

वह रो पड़ी।—"मैं स्कूल नहीं जाना चाहती।"—काल्लूकी आँखें भी सजल हो उठीं। उसने उसे अपने समीप खींच लिया और समझाकर कहा—"तुम्हें स्कूलमें सुख मिलेगा, बेटी, वहाँ तुम अपनी ही उमरकी अनेक लड़कियोंके साथ खेलोगी। तुम कहानी पढ़ना सीख लोगी। मुझे तुमपर गर्व होगा। देख तो, तूने अपना मुख कैसा कर डाला?"

"तो तुम भी मेरे साथ आओ"—वह गिड़गिड़ाई। वह एक हाथसे अपनी आँखें मलने लगी और उस लाल ईंटोंकी स्कूलकी इमारतकी ओर देखने लगी।

कालू उसे कैसे बतलाता कि वह उसके साथ वहाँके चौकीदार द्वारा देखा जाना नहीं चाहता। यद्यपि वह अपनी सबसे अच्छी पोशाकमें था, फिर भी शायद वहाँका चौकीदार जानता हो कि वह कौन है। वह सोचेगा—"लो, एक कलईगरकी लड़की भी स्कूलमें आ गई।"

वे कुछ दूर और बढ़े, और कालू फिर रुक गया।

—"अब, लेखा, तुम आगे जाओ। डरनेकी कोई बात नहीं है। उन दो लड़कियोंको देखो, वे तो तुमसे भी छोटी हैं।"

वह अब भी उसकी अँगुलियोंको जोरसे पकड़े हुए थी।

"चन्द्रलेखा!'—वह हैरानीसे चिल्लाया।

घबरा कर लेखा उसकी ओर देखने लगी और फिर उसने अपनी दृष्टि नीचेकी ओर कर ली। उसने उसका हाथ छोड़ दिया। वह मुड़कर कुछ कदम आगे बढ़ी।

—"लेखा, स्कूल जानेके पहले मुझे अपनी मधुर मुस्कान दो।"

लेखा ठहर गई और उसकी ओर मुस्कराई। उस कोमलताने उसके हृदयको भारी कर दिया। उसी क्षण लेखा आगे चल पड़ी और शीघ्र ही वह लड़कियोंके झुण्डमें विलीन हो गई। वे जब सब फाटकके भीतर हो गईं, तब कालू पीछेकी ओर मुड़ा। मार्गमें उसके पैर कठिनाईसे घरकी ओर बढ़ते थे। जब लेखा पास बैठकर देखनेको नहीं है, तब काममें मन लगाना उसके लिए कितना कठिन होगा।

उसने एक अलार्म घड़ी खरीद ली। जब वह अपनी छपरीकी भट्टीके पास बैठकर काम करता, तब बार-बार उसकी दृष्टि उस घड़ीके काले काँटोंपर पड़ा करती थी। जब घण्टे बीतते और स्कूल बन्द होनेका समय आता, तब एक-एक मिनट उसके लिए भारी प्रतीत होता। वह अधीर हो उठता और अपनी आँखोंसे उस घड़ीके काँटोंको आगे ढकेलनेका प्रयत्न करता। अन्तमें घड़ीका अलार्म बजनेके पहले ही वह अपने औजार पटक देता और घरकी तीन सीढ़ियोंसे उतर कर रास्तेपर आ जाता। वह जल्दी-जल्दी स्कूलकी ओर बढ़ता, किन्तु सदैव वहाँसे कुछ दूरीपर ही ठहर जाता था।

कालूको इस बातका बड़ा हर्ष और गर्व था कि लेखा अपने अध्ययनमें जल्दी-जल्दी उन्नति कर रही है। वार्षिक परीक्षामें वह सर्वोच्च उत्तीर्ण हुई, जिससे वह दो कक्षाएँ ऊपर चढ़ा दी गई। अब कालूको उसे लेने स्कूल नहीं जाना पड़ता था। वह अब केवल द्वारकी सीढ़ियोंपर खड़े होकर उसका मार्ग देखा करता था। वह उसे दूरके मोड़पर ही देख लेता था। ज्यों ही लेखा उसे देख पाती त्यों ही वह तुरन्त उसकी ओर दौड़ पड़ती। उसके घने केश, नीले रिबनसे छूट पड़ते और उसका मुख दौड़नेके कारण लाल हो उठता।

—"बाबा, जानते हो आज अंग्रेजीके घण्टेमें क्या हुआ ?"

वह उसका हाथ पकड़ कर भीतर ले गया।

—"अपना दूधका ग्लास खाली करो, गुड़ रोटी खा लो, और फिर मुझे अपनी बात बताओ।"

किन्तु उसका आधा भोजन होनेसे पूर्व ही उसने कौतूहलसे पूछा—"क्या हुआ ?"

"मैं खा रही हूँ।"—लेखाने गम्भीरताका ढोंग करते हुए कहा। उसके ऊपरके ओठके कोनेपर दूध लगा हुआ था।

वह उसको देखता हुआ कुछ देर और ठहरा।

—"अब बताओ; क्या हुआ ?"

—"हमारी अँग्रेजी पाठिकाने क्लासमें कहा है कि झरनाके महाराजा-की मृत्यु हो गई।"

"हाँ।"—काल्लूने कहा—"अपने जिलेमें कम-से-कम उनके सौ गाँव थे। वे आज सबेरे नहीं रहे।"

"उनके सम्मानमें कल स्कूल बन्द रहेगा"—जब यह बात हमारी अंग्रेजी पाठिकाने बताई तब दो-तीन लड़कियोंने ताली बजाई और कहा—"हुर्रे।"

"कितनी बुरी बात है!"—काल्लूने आगे कहा"—तुम तो हुर्रे नहीं चिल्लाईं, लेखा?"

"नहीं। हमारी अंग्रेजी पाठिका बहुत क्रुद्ध हुई। बड़ा मजा आया।" लेखा खिलखिला कर हँस पड़ी।

किन्तु काल्लू यह नहीं जानता था कि जब लेखाको कोई अप्रिय अनु-भव होता था, तब वह सत्य बातको सावधानीसे छिपा जाती थी।

सुहासीने उससे चिल्ला कर कहा था—"कम्मारकी लड़की, एक फूटी बालटी सुधारनेका क्या लेती है?"—अब यह बात छिपी नहीं थी कि उसका बाप कम्मार है।

दूसरी लड़कियाँ भी उसका उपहास करने लगीं। इराने कहा—"लुहार-की लड़की अपने बापसे कह कि अपने ग्राहकोंको धोखा न दिया करे। उसने हमारी भी एक बालटी सुधारी थी। किन्तु वह दो माहमें ही फिर चूने लगी।"

लेखाको अपने बापकी ईमानदारीमें दृढ़ विश्वास था। वह उसका इस प्रकार अपमान नहीं सह सकती थी। उसने इराके एक गालपर जोरसे एक थप्पड़ जमाया, फिर दूसरे गालपर भी।

लड़कियाँ क्रोधसे उसके ऊपर झपट पड़ीं। जब वह घर आई तो उसके कपड़े फटे हुए थे, और बाल बिखरे। बाप चकित होकर चिल्ला उठा—"चन्द्रलेखा।"

"मैं—मैं गिर पड़ी"—उसने कुछ साँस खींची—"अमरूदके झाड़

डरसे।"—उसकी नाकसे पानी झरने लगा।

काल्लूने उसे अपने घुटनोंपर ले लिया—"लेखा! वचन दो कि तुम अब कभी झाड़पर नहीं चढ़ोगी। यदि तुम गिर पड़ीं और तुम्हारी टाँग टूट गई तो क्या होगा?"

इस विचारसे वह उसकी ओर भयाकुल होकर देखने लगा।

"मैं वचन देती हूँ"—उसने छटपटाते हुए कहा। वे मर्मभेदी शब्द अब भी उसके कानोंमें गूँज रहे थे। काल्लूने उसके सिरपर और कन्धेपर थपथपाया। उसके कठोर हाथ भी कोमल हो सकते थे! काल्लू चुपचाप बैठ रहा और उसके हृदय तक पहुँचनेका प्रयत्न करने लगा। एक अचूक चेतनासे उसे प्रतीत हो रहा था कि लेखाके अनुभवमें झाड़से गिरनेके अतिरिक्त कुछ और भी है।

लेखाने भी उसके हृदयके भावको भाँप लिया और जल्दीसे उसकी तर्कणाका अन्त करना चाहा।

"मुझे मलाई पड़ा दूध नहीं चाहिए, देखो"—उसने पीतलके कटोरेको दूर हटा दिया और ओंठ बना लिए।

काल्लू एक चम्मचसे दूधकी मलाई हटाने लगा। तभी उसने हथेलीके पिछले भागसे अपनी सजल आँखें पोंछ लीं। अब वह फिरसे काल्लूकी वही सुखी लड़की बन गई।

"तो क्या आप कभी किसी झाड़पर नहीं चढ़े? क्या आप कभी छोटे लड़के नहीं थे?"—उसने पूछा।

काल्लू हँस पड़ा। यद्यपि वह कभी स्कूल नहीं गया था, तथापि उसके भी लड़कपनकी साहसिक घटनाएँ थीं। उसने कुछ सुनाई भीं, ऐसा नाटकीय रंग चढ़ाते हुए कि जिससे वह प्रभावित हो जाय। वह उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें आश्चर्यका भाव भी देखता जाता था। उसका वर्णन समाप्त हो जानेपर लेखाने निश्चयात्मक ढंगसे अपना सिर हिलाया।

—"मुझे आपका भरोसा नहीं होता। आप कभी लड़के नहीं थे। आप तो सदैव बाबा ही थे।"

उसी दिन बादकी लेखाने अपने पितासे कहा—"आप सुहासीके पिताकी बालटियोंको कभी मत सुधारिए—कभी नहीं।"

—"सुहासी कौन है?"

—"सुहासी सेन!"

'सेन' उसने अपने मनमें कहा—"शायद वह स्वास्थ्य विभागका इन्सपेक्टर हो। उसने क्या किया?"

—"उसने कुछ नहीं किया। किन्तु उसकी बालटियाँ मत सुधारिए।"

—"यदि मैं उनकी मरम्मत बुरी तरहसे करूँ? जोड़....."

"नहीं"—वह प्रायः चिल्ला उठी। वह फिर रोने-सी लगी।

"अच्छी बात है"—उसने उसे आश्वासन दिया। वह लड़कीके भावावेशसे चकित था।

"अच्छी बात है, लेखा।"—कभी-कभी वह अज्ञेय हो जाती थी।

उसे यही एक बड़ा दुःख था कि लेखा ऐसी दुबली, पतली, बीमार जैसी रहती है।

"तुझे इतनी दुर्बल देखकर मुझे घृणा होती है। तेरी रीढ़की हड्डी चमड़ेके ऊपर ऐसी दिखाई देती है मानो तुझपर भुखमरी पड़ गई हो।"—उसने लेखासे कहा—"लोग क्या कहेंगे? देखो इस निर्दय बापको—मोटा-ताजा हाथी जैसा हो रहा है और लड़कीको पेटभर खानेको भी नहीं देता। क्या यह बात तुझे अच्छी लगेगी?"

लेखा विचारमें पड़ गई।—"मूर्ख" वह अकस्मात् आवेशमें आकर बोल उठी। उसकी जीभ उन अदृश्य धूर्तोंकी ओर गई जो उसके पिताको दोषी ठहराते हैं। वह कल्पनामें भी अपने बापका उपहास या अपमान सहन नहीं कर सकती थी।

—"लेखा!"

कालूकी आवाजमें कुछ कठोरताकी ध्वनि थी। एक क्षणके पश्चात् ही वह हँस पड़ा। उसकी आँखें लेखाके क्रोधसे लाल मुखपर जम गईं। वह उस मुखपर प्रकट होनेवाले प्रत्येक हेर-फेरको श्रद्धासे देखने और उसके

हृद्गत भावोंका चित्रण करने लगा। उसकी आँखोंसे कोई छाया भी छिपकर नहीं निकल पाती थी।

कान्रू केवल पढ़ना-लिखना मात्र जानता था। अब जैसे-जैसे उसकी लड़की स्कूलमें आगे बढ़ने लगी, तैसे ही उसके मनमें एक क्लेश उत्पन्न होने लगा। ज्यों ही लेखा स्कूलसे लौटकर घर आती, तैसे ही वह पितासे अनेक प्रश्न करती—"पृथ्वीका आकार नारंगी जैसा कैसे है? चन्द्रग्रहण क्यों पड़ता है? प्राचीन-कालमें कौन-कौन राजा हुए? कैसी-कैसी लड़ाइयाँ हुईं?" इत्यादि। काल्रू उसको कैसे प्रकट कर सकता था कि वह इस जानकारीसे बिल्कुल कोरा है।

उसने स्वयं अपना ज्ञान बढ़ानेका निश्चय किया। सारे दिन तो वह अपने धन्धेमें लगा रहता, किन्तु खूब रात गये, जब लेखा गहरी नींद सो जाती, तब वह उसके हरे बस्तेमेंसे पुस्तकें निकालकर दीपककी रोशनीमें घण्टों अपनी आँखें खपाया करता। स्वयंकी प्रेरणा होनेसे वह जल्दी-जल्दी सीखने लगा और अपने ज्ञानको लड़कीकी पढ़ाईसे भले प्रकार आगे बढ़ाए रखनेमें सफल हुआ। इस प्रकार उसने अपनी लड़कीके साहचर्यको पुष्ट बनानेकी आशा की। फिर भी उसे यह विश्वास था कि एक-न-एक दिन लेखा अपने ज्ञानमें उसे पीछे छोड़कर आगे निकल जायगी।

किन्तु काल्रूको यह स्पष्ट सत्य नहीं दिखाई दे सका कि लेखाके हृदयमें उसकी विद्वत्ताकी अपेक्षा आग और लोहेसे नाल बनानेवाले कारीगरके लिए अधिक सच्चा स्नेह था। जब वह अपने पिताको जलती हुई धातुपर घनकी चोटसे चिनगारियाँ उत्पन्न करते देखती तब उसके हृदयमें इस पश्चात्तापकी हूक उठे बिना न रहती कि वह लड़का क्यों न हुई। उसके पिताने अपना वह हस्त-कौशल अपनी लड़कीको सिखानेसे साफ इन्कार कर दिया था, ऐसी लड़कीको जो स्कूलमें इतनी अच्छी तरह पढ़ सकती और इनामें पा सकती थी।

एक बार लेखा चिल्ला ही पड़ी: "हाय, मैं अभिजित् होती!" उसे अपने नामकी वह विचित्र कहानी ज्ञात हो गई थी।

कालूके हृदयमें एक चिन्ताने घर कर लिया । जो कारीगरी युग-युगान्तरोंतक उसके बाप-दादोंसे चली आई है और जिसे उसने अपने अभ्याससे और भी तेज बनाया है, उसका अब आगे क्या होगा ? यही कारीगरी तो उसके जीवन-चक्रका आधार-बिन्दु था और वही था उसका अन्तिम निधान । अभिजित् तो खाली नाममात्र रह सकेगा ।

उसने अपनी कन्याके मुखपर उस विषादकी छायाको देख लिया और तुरन्त उसकी व्याकुलताको दूर करनेका प्रयत्न किया—"मेरे शब्दोंपर ध्यान दो, बेटी ! एक पूरे अभिजित्के लिए मैं तुम्हारे एक बालका टुकड़ा भी देनेको तैयार नहीं हूँ । सुनती है ?"

इस प्रकार लेखा अपनी आयु और सुन्दरतामें बढ़ती हुई उस कठोर कारीगरका कोमल मर्म-स्थल बनी रही । वह अपने मित्रोंसे गर्वके साथ कहता—"उसके रूपकी बात करते हो ?"—उसका कारण तो यही है कि मैंने उसके जन्मके पूर्व ही उसका वह नाम निश्चित कर लिया था । मेरे वंशमें ऐसा ही होता आया है । मैं पैदा भी नहीं हुआ था, तभी मेरे बापने मेरा नाम कालू रख दिया था; और देखो मेरी ओर ! अब यदि मैं भी अपनी लड़कीका नाम पूँटी या मुन्नी रख लेता तो···" उसने अवज्ञापूर्वक अपने कन्धोंको हिलाया ।

किन्तु वह अपने हृदयमें जानता था कि लेखाके ऐसी सुन्दरताकी मूर्ति होनेका सच्चा कारण क्या है : वह अपनी माँकी छाया लिए हुए थी ।

लेखाका आकृतिक-विकास भी कैसा चमत्कारिक हुआ ! उसका रूप जन्मके समयकी अपेक्षा अब और भी निखर आया था, जैसे हाथी-दाँतकी मूर्ति ही हो । उसके लम्बे केशोंके नीचे उसकी आँखें काजलसे भी गहरी और मनोहर कालिमाको लिए हुए थीं । लड़कीकी दृष्टिसे वह अपेक्षाकृत कुछ ऊँची थी; उसका सिर कालूके कंधे तक पहुँच जाता था । उसका बर्ताव देखकर भी बड़ी प्रसन्नता होती थी; शान्त मुद्रा, हाथोंके स्वल्प संचालनमें सौष्ठव और सभीके प्रति सहज मुस्कराहट और मधुर भाषण । कालू तेजी और उत्सुकताके साथ, किन्तु उथलेपनसे नहीं—

उसके गुणोंका चिन्तन करता गया। वह अपनी पुस्तकोंसे बड़ा प्रम करती। उनमेंसे बहुत-सी तो उसने अपने स्कूलमें इनाम पाई थीं और कुछ पुस्तकालयसे ली थीं। किन्तु वह अपने ज्ञानका प्रदर्शन कभी नहीं करती थी और न कभी अपनेको सजाकर दिखानेका प्रयत्न करती जैसी कि युवतियोंकी आदत हुआ करती है। उसे जैसे अपने सौन्दर्यका भान ही न हो। जब लोग उसकी ओर देखकर उसकी प्रशंसाके भावको छिपा नहीं सकते थे तब भी उसका उधर ध्यान ही न जाता था। जो भी साड़ी और ब्लाउज़ उसे मिल जाता, उसीसे वह सन्तुष्ट थी। उसे अपनी स्कूलकी सहेलियोंकी भड़कदार पोशाकको देखकर कोई ईर्ष्या नहीं होती थी।

सारे झरना शहरके भले आदमियोंका प्रत्येक घर देख आइए। लेखा-की शानकी आपको कहीं दूसरी लड़की नहीं दिखाई देगी। कालूके हृदय-में वह विस्मयका भाव पुनः जाग्रत हो उठा कि लेखा उसकी अपनी है। जब वह बाल-देवता स्वर्गसे उतरकर पृथ्वीकी ओर उड़ी और स्त्रीके गर्भको सफल बनानेके लिए उसमें प्रविष्ट हुई, तब उस देवताने अवश्य ही भूल की होगी जो वह गलत रास्तेसे चलकर गलत द्वारपर आ पहुँचा। पर सम्भव है ऐसा विधान ही हो, क्योंकि उसकी माँ भी तो उसी सौष्ठवके साँचेमें ढली थी ?

कोई मनुष्य इस प्रकारकी दो देनोंका भाजन नहीं हो सकता। तब जो है वही बहुत है। लेखा ही उसे धन्य बनानेको उसके पास रहे। बस जब वह हाथ जोड़कर भगवान्की दयालुताके लिए प्रार्थना करता तब कालूके हृदयमें यही एक तीव्र अभिलाषा रहा करती थी।

सचमुचमें तो वह अपनी उस युवती पत्नीके विषयमें कितना कम जान पाया था। उसके साथ वह रह भी तो बहुत कम पाया था। वर्ष बीतते गये और कालूकी स्मृतिमें उसकी धुँधली आकृति भी विलुप्त होती गई। हाँ, उसके स्थानपर एक नई मूर्ति स्थापित होती गई—मनोहरतासे परिपूर्ण। कालूको अपनी यौवनकी इस संगिनीको जीवित रखनेकी

आन्तरिक आवश्यकता थी। उसे उसने एक नई सार्थकता, नई समृद्धि, दे रखी थी।

कालूकी इस कलाको लेखाने भी आत्मसात् कर लिया। पिताके समान पुत्रीके चित्तने भी अपनी माताकी मूर्ति निर्माण कर ली। लेखा भी उतनी ही अकेली थी जितना उसका पिता। अतः उसकी माता उसके लिए सजीव उपस्थित थी और आवश्यक भी। स्कूलमें साथ पढ़नेवाली लड़कियाँ उसकी हीन जातिके कारण उसकी ओर ठण्डी और दूर रहा करती थीं। वह प्रत्येक परीक्षामें सबसे ऊपर उत्तीर्ण होती थी; इस कारण दशा और भी खराब हो रही थी। अपनी स्कूलकी सहेलियोंकी मित्रता प्राप्त करनेके लिए लेखा अपनी कक्षामें सबसे नीचे रहना भी पसन्द करती। किन्तु वह जानती थी कि इसमें भी उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। उससे तो उसकी ओर उनकी घृणा और भी अधिक बढ़ जाती।

यही नहीं। स्वयं उसकी अपनी श्रेणी या जातिके लोग भी उसकी खुली आलोचना करते थे।

"एक कलईगरकी लड़की पण्डिताईके पंखे लगाकर उड़ रही है; चिड़िया सुआका स्वाँग रच रही है।"—बूढ़े वृन्दावनने अपनी जातिके बड़े बूढ़ोंकी जमातमें चिल्ला-चिल्लाकर और अपना भूरा सिर हिला-हिलाकर अपनी असम्मति प्रकट की थी। सुननेवालोंने भी उसकी चेतावनीकी प्रतिध्वनि की थी।—"यदि यह बिना माँकी लड़की अपने ज्ञानकी चकाचौंधमें आ गई तो क्या होगा?" यह प्रश्न उन सबके मुखपर था।

अपनी जातिके लोगोंकी ऐसी भावनासे कालूको क्रोध आ गया। वह उनसे दूर रहने लगा। तो भी उसकी जातिके लोग तथा पास-पड़ोसके अन्य लोग उत्सव मनानेके अवसरों पर, लड़ाई-झगड़ेका समझौता आवश्यक होने पर तथा सूतक मनानेके समय, विचार-सलाहके लिए भरोसेसे उसके पास आते थे। कालूकी बात भी बड़े धैर्य और समझदारीकी होती थी। जो निपटारा वह कर देता था उसमें अन्तिमताका गौरव हुआ

करता था। उसकी शक्तिका आधार उसकी आन्तरिक योग्यता प्रतीत होती थी। इस बातको लोग स्वीकार भी करते थे। वे जानते थे कि काल्‌ बड़े भरोसेका आदमी है। यह तो उसकी एक झख है जो उसने अपनी लड़कीको स्कूल भेजा और अभी तक अविवाहित रखा। तो भी उसका हृदय अपनी जातिके लोगोंके साथ है और उन्हींके जीवनका वह भागीदार है। उसकी जड़ें अपनी जातिकी परम्परागत उर्वरा भूमिमें गहरी गड़ी हुई थीं।

इतना सब होने पर भी उसका अपना सूनापन बना ही रहा। उसकी कन्याका भी यही दुर्भाग्य था। चन्द्रलेखाने पुस्तकोंमें सन्तोषका मार्ग ढूँढ़ लिया था और इस बातकी काल्‌को खुशी थी। यह बहुत अध्ययनशील हो गई थी। इसका सुफल उसे अपनी सोलहवीं सालमें स्कूलकी अन्तिम कक्षामें मिला। बंगाल भरमें एक वार्षिक निबन्ध-प्रतियोगिता हुआ करती थी जिसमें विजयी लड़के या लड़कीको अशोक-स्मारक पदक मिला करता था। उस प्रतियोगिताका समय आया।

काल्‌ देखता था कि उसकी लड़की अब पहलेसे और भी अधिक चिन्तनशील रहा करती है। वह एक फटी चटाईके टुकड़े पर बैठ जाती। उसके सम्मुख एक फुट ऊँची चौकी होती। ठुड्डी हथेलीकी प्यालीमें और आँखें बन्द। अथवा वह अपनी स्वच्छ लेखनीसे पन्नेके ऊपर पन्ने लिखे जाती। वह सदैव चमकदार नीली स्याहीका उपयोग किया करती थी। फिर वह उन पन्नोंको फाड़ डालती और फिर लिखना प्रारम्भ करती। कभी-कभी वह अपने आप धीरे-धीरे लेख-खण्डको पढ़ती। ऐसा कई दिनों तक चलता रहा। काल्‌ कभी उसकी प्रवृत्तिमें विघ्न नहीं डालता था। वह दूरसे ही चुपचाप उसे देखता रहता। कभी-कभी वह दूध भरके पीतलका कटोरा उसकी चौकी पर रख देता; दूधसे चिन्तन निर्मल और तेज हो जाता है। किन्तु वह दूधका कटोरा जैसाका तैसा रखा रह जाता। वह उसे हाथ भी नहीं लगाती और दूध ठण्डा हो जाता। वह उसे उठा कर फिर गरम करता और फिर उसके सन्मुख रख देता—"मलाई

जमनेसे पहले दूध पीले" यह वात वह सावधानीपूर्वक वड़े धीरेसे कहता, जिससे कहीं उसकी गम्भीर चिन्तनधारामें विच्छेद न पड़ जाय। "कुछ और शक्कर डाल दूँ क्या ?"

उसे सुख भी होता और दुख भी। सुख इसका कि उसकी प्यारी वेटीमें इतना आत्म-विश्वास तो था कि वह समस्त वंगालके लड़के और लड़कियोंकी प्रतिस्पर्धामें खड़ी होनेका साहस कर रही है। दुख इस वात-का था कि उसे निराश होना पड़ेगा।

एक माह पश्चात् जव लेखा स्कूलसे लौटी तो उसका मुख चमक रहा था। वह निवन्ध-प्रतियोगितामें जीत गई थी।

काल्ट कुछ देर तो वोल ही नहीं सका। वह चुपचाप साँस रोके उसकी ओर घूरता रहा। इस पदकको पानेवाली वंगालभरमें वह पहली लड़की थी। उसने उसकी योग्यताको कितना हीन आँका था !

किन्तु रात्रिको काल्के हृदयपर एक अन्धकार-सा छा गया। वह लेखाकी अदृश्य माँसे वात-चीत कर रहा था। वह माँ जो उस घरपर अपने हृदयका आशीर्वाद विछाये हुए थी।

"तेरा स्वप्न सफल हुआ" काल्टने कहा। "तेरी वेटीने झरना शहर-की प्रतिष्ठा वढ़ाई है। हाय, आज तू यह देखनेको जीवित होती !"

अगले कुछ दिनों तक वह अपने वरामदेमें यह आशा लगा कर वैठता कि उस शहरके वड़े-वड़े आदमी उसके घर आयँगे और उसको वेटीको वधाई देंगे कि उसने उतने वड़े कलकत्ता शहरको भी लज्जित कर दिया। उसका नाम सवकी जानकारीके लिए 'हिन्दुस्तानमें' प्रकाशित हुआ। उसमें यह समाचार भी दे दिया गया था कि उस प्रतियोगितामें एक हजारसे भी अधिक निवन्ध प्रस्तुत किये गये थे। एक हजार ! इस सवके अतिरिक्त निवन्ध-परीक्षककी रिपोर्टमेंसे यह भी उद्धृत किया गया था—"विचारपूर्ण और रोचक !" इससे अधिक और तुम्हें क्या चाहिए ?

कालूने उस समाचार-पत्रकी तीन प्रतियाँ खरीद कर उतना अंश काट लिया था।

"तीन प्रतियोंका क्या करोगे बाबा ?"—लेखाने हँसते-हँसते पूछा। उसे अपनी उस अनुपम सिद्धिके मूल्यका कुछ भान ही नहीं था।

"एक मेरे लिए, और एक तेरे पतिके लिए, जब तेरा विवाह हो जायगा।"

लेखाने अपना सिर झुका लिया। किन्तु फिर भी पूछती ही गई—"तब भी एक प्रति और बची ?"

—"अरी, यदि इनमेंसे एकाध गुम गई, तो यह तीसरी काम आ जायगी।"

"विचारपूर्ण और रोचक"—इन विशेषणोंका काल्लू स्वाद लेने लगा। उसके मनमें आया जैसे उस परीक्षकने चन्द्रलेखाको साक्षात् देख लिया हो।

क्या शहरके मजिस्ट्रेट साहब आकर बधाई नहीं देंगे ? उन्होंने गत वर्ष काल्लूको दो बार बुलाकर अपने घोड़ोंके नाल ठुकवाये थे। यह बग्गी बेंचकर मोटर ले लेनेसे पहलेकी बात है। क्या स्कूल इन्सपेक्टर साहब भी आवेंगे ? वे अवश्य ही टाउन हालमें सभा कराकर चन्द्रलेखाको पुरस्कृत करेंगे और उसे हार पहनावेंगे। शायद वे उसे भी कुछ बोलनेको कहें ! प्लेट-फार्मपर उसकी तो जीभ ही नहीं खुलेगी और यह बड़ी लज्जाकी बात होगी।

किन्तु कोई नहीं आया। मानो झरना शहरमें कुछ हुआ ही नहीं।

सुन्दर मखमलके बेरेमें रखा हुआ पदक आ गया। उसपरके लेखका काल्लूकी आँखोंने खूब भोजन किया। कितने भाग्यकी बात है कि उसने अपनी लड़कीको वह उचित नाम दिया—वह नाम जो अब उस पदकके चाँदीके पृष्ठको अलंकृत कर रहा है। किन्तु वहाँ और कोई नहीं था जिसे वह दिखा सके। रातको काल्लूने उस पदकको अपने तकियेके नीचे रखा और सोनेसे पूर्व उसपर बड़े प्रेमसे अपना हाथ फेर लिया।

२

चन्द्रलेखाके रजत-पदक जीतनेके दो-तीन महीनेके बाद ही दुःखका साल प्रारम्भ हो गया। शायद बंगालके इतिहासमें वह सबसे दुखद साल था। देश एक प्लेगकी झपेटमें आ गया। भुखमरीका प्लेग! वह युद्ध-काल था १९४३ का। जापानी सेना पूर्वी मोरचेपर आ खड़ी हुई थी और विरोधकी दीवारका सामना कर रही थी। किन्तु सीमाके भीतर शत्रुको रोकनेके लिए कोई बाड़ी नहीं लगाई गई थी। न अन्न-विभाजनकी व्यवस्था थी, न मूल्य-नियन्त्रणकी और न उन बड़े ग्राहोंपर कोई प्रतिवन्ध था जो बहुत बड़े पैमानेपर धान्य-संचयका खेल खेल रहे थे।

धान्यके कुठार खाली थे—किसानोंको लोभ देकर उनका सारा धान्य खरीद लिया गया था। बाजार खाली थे—सारा ही धान्य कहीं छिप गया था। खेत जोतनेवाले भूखों मर रहे थे। उन्हींके उत्पन्न किये हुए धान्यको वापिस मोल लेनेके लिए अब उन्हें अपने खेत बेचनेके सिवाय और कोई चारा नहीं रहा था। चावल पहलेसे अब पाँच गुना मँहगा हो गया था।

जुलाहों ने अपने करघे बड़े शहरोंके व्यापारियोंके हाथ बेच दिये। ये व्यापारी मुनाफेकी चीजोंका सौदा पटाने गाँव-गाँव घूम रहे थे। कारीगरोंने अपने औजार बेच डाले। मछुओंकी डोंगियाँ काट-पीटकर जलानेके लिए बेच दी गईं।

प्लेगकी भयंकर बाढ़ें आ रहीं थीं। बंगाल मर रहा था, झरना शहर मर रहा था।

कालू अपनी दूकानपर बैठकर चुपचाप मार्गकी ओर देख रहा था। भुखमरीके चुँगलमें फँसे हुए उस शहरसे लोग भाग रहे थे। बहुत-से राज-धानीको जा रहे थे—इस आशासे कि वहाँ उन्हें कुछ रोजी मिल जायगी।

कालू ग्राहकोंकी बाट जोहता, किन्तु कोई नहीं आता। लोगोंने अपना सोना, जेवर, खाट, पलँग यहाँतक कि थाली, लोटे भी, मुट्ठी-मुट्ठी अनाजके लिए बेच डाले थे। उस शहरसे कोई बीस गाड़ियाँ भरकर गृहस्थीके बासन-बर्तन बाहर चले गये थे। व्यापारी अब भी अपनी अनाजकी थैलियाँ और नगदी पैसा लिए सौदोंकी खोजमें फिर रहे थे।

ऐसी दशामें यदि कालूको कोई काम न मिल रहा हो तो आश्चर्य ही क्या है? उसकी वज्रकी-सी वह प्रचण्ड आवाज बन्द हो गई थी। गलफुल्ले (फूँकनी) का अब कुछ काम ही न था। उसके सब औजार-हथियार भट्टीके आस-पास बिखरे पड़े थे।

"गलफुल्ले, अब तुम विश्राम करो। वज्र, तुम भी अब आराम लो। तुमने अब छुट्टी पाई है"—कालू इस प्रकार शोकसे उन निश्चल हथियारोंको सान्त्वना देता था। ये वे पुराने वज्र और गलफुल्ला नहीं थे जिन्हें कालू कई वर्षों तक काममें ला चुका था। उन्हें तो उसने उनकी लम्बी और उपयोगी सेवाके पश्चात् स्वयं ही सेवा-निवृत्त कर दिया था और अपने सोनेके कमरेमें एक पटियेपर सम्मानके साथ रख दिया था। किन्तु नये औजारोंके भी उसने वे ही नाम रखे थे, जिससे उनकी वही परम्परा बनी हुई थी और वही भावनाकी प्रतिध्वनि उनसे निकलती थी।

एक दिन दोपहरके पश्चात् एक अपरिचित आदमी उसके बरामदेके पास आ खड़ा हुआ। कालू अपनी घासकी चटाईपर अपने सिरको झुकाकर दोनों हाथोंके बीच पकड़े हुए बैठा था। बेरोजगारीके इन दिनोंमें बस यही उसकी बैठक थी। वह आगन्तुकके पाँव देखकर जल्दीसे मुड़ा। उसकी निराशाभरी आँखें अच्छी शहरी पोशाकसे सुसज्जित उस मोटी गोल-मटोल आकृतिकी ओर स्नेहसे निहारने लगीं।

"प्रणाम।"—कालूने अपने दोनों साथ जोड़कर आगन्तुकका अभिवादन किया।—"क्या तुम्हारे पास कोई गहने बेचनेको हैं? चूड़ियाँ? हार? पैजन? मैं तुम्हें अच्छा मूल्य दूँगा। क्या कहते हो?" कालूने विस्मयसे अपना मुँह फाड़ लिया—"चूड़ियाँ? हार?" उसने दुहराया।

वह कोई व्यापारी नहीं था। किन्तु काल्लूने अपना विस्मय छिपाया।

—"तुम्हारी एक जवान लड़की है—"

काल्लू अकस्मात् जल उठा—"कुछ नहीं। मुझे कुछ नहीं बेचना। कालूने चिल्लाकर कहा।

"तुम्हारी जवान लड़की—शायद वह चाहती हो कि···"—वह शहरी आदमी कहता गया।

"कुछ नहीं बेचना"—काल्लू फिर चिल्लाया—"कुछ नहीं! वह व्यापारीकी ओर अपनी पीठ फेरकर अपने औजारोंकी ओर बढ़ा।

—"देखो! मैं कलकत्तासे चलकर इतनी दूर आया हूँ।···"

—"हाँ ठीक है।"

व्यापारीने सिर घुमाया और अपने आप धीरेसे कहा—"ये नीच आदमी झुकेंगे नहीं, भले ही वे टूट जायँ। ईश्वरने यह भयंकर दुष्काल इन्हीं नीचोंको सबक सिखानेके लिए ही तो भेजा है।" किन्तु दूसरे ही क्षण उसका स्वर मैत्रीपूर्ण हो गया।—"हो सकता है तुम और तुम्हारी लड़की उस बड़े शहरमें आओ। अब और करोगे ही क्या? मेरी बात सुन लो। जब तुम वहाँ आओ तो शहरके उत्तरमें चितपुर रोडपर आना और वहाँ 'साधु काकाका सार्वजनिक केबिन' नामक चायकी दूकान देख लेना। उसीकी बाजूकी सीढ़ियोंसे चढ़कर तीसरे मंजिलपर आ जाना। वहाँ तुम्हें 'रजनी बोस' नामकी पट्टी दिखाई देगी। 'रजनी' तुम्हें काम देगा और अच्छा वेतन। समझे?"

व्यापारी चला गया। काल्लूने अपने औजारोंपर दृष्टि डाली—"आपत्ति टल गई, भाई वज्र! तुम्हारी छुट्टीमें बाधा नहीं पड़ी। मित्र गलफुल्ले!" उसने उन्हें विषादसे सिर हिलाते हुए विश्वास दिलाया।

किन्तु दो दिन पश्चात् काल्लूके हृदयपर एक आघात लगा। लेखाकी बाहोंमें काँचकी लाल चूड़ियाँ थीं।

—"सो तुमने उस व्यापारी बन्दरको देख लिया?"

लेखाके पन्द्रहवें जन्म-दिवसपर काल्लूने अपनी कमाईकी बचत

खोदकर निकाली थी और उससे लेखाकी प्रत्येक बाँहमें दो-दो पहननेके लिए सोनेकी पतली-पतली चार चूड़ियोंकी जोड़ी बनवा दी थी। उस उपहारका लेखाको कितना गर्व था !

लेखाने उसकी ओर देखा और उसको समझानेके लिए हँसते मुस्कराते हुए कहा—"बाबा ! क्या तुम भी इतने नासमझ हो ?"

—"तो क्या तुमने अपनी चूड़ियाँ नहीं बेचीं ? तुम 'न' कहती हो ? बतलाओ मुझे !"

"देखिए !" उसने अपनी सुन्दर गोल बाँहोंको सौम्य भावसे ऊपर उठाते हुए कहा—"क्या ये नई चूड़ियाँ उतनी ही सुन्दर नहीं लगतीं ?"

लेखाको उस व्यापारीकी याद आई जिसने उसकी बाहोंपरकी उन सोनेकी चूड़ियोंके तौलका अन्दाज लगाया था। लेखाने उसकी गीली गरम अँगुलियोंके स्पर्शका अनुभव किया था। उसका मुख पीला पड़ गया।

"ऐसी विपत्ति कि जिसने ऐसी सुन्दर कोमल बाँहको सूनी कर दिया !"

कालूका मुख अट्टहाससे खुल गया और पान खानेसे लाल हुए दाँत बाहर निकल आये।

"क्या मूल्य दोगे ?"—लेखाने उस व्यापारीसे पूछा था। वह उत्सुक थी कि उसके पिताके इतवारी बाजारसे लौटनेके पूर्व ही सौदा पूरा हो जाय।

"मूल्य ?" कहते हुए व्यापारीकी आवाज भर्राई और उसकी दृष्टि लेखाके मुखके सौन्दर्यको पीने लगी। "यह सोना जहाँका तहाँ लौट आवेगा। मेरी बातपर भरोसा रखिए, बाई। आप चिन्ता न कीजिए, बाट देखती रहिए।"

लेखाने पीठ फेर ली थी। उसका मुख लाल हो गया था और उस अपरिचित व्यक्तिकी दृष्टिमें रूखापन और शब्दोंमें कुछ अज्ञात अनिष्टके कारण उसका हृदय भयभीत हो उठा था।

"जाइए नहीं"—वह व्यापारी चिल्लाया। चूड़ियाँ तौल लेने दीजिए। मैं अच्छा मूल्य चुकाता हूँ।

व्यापारीने अपनी कोटकी जेबसे एक छोटा-सा तराजू निकाला।

चूड़ियाँ बाहोंपर गाढ़ी बैठी थीं। जब लेखाने उन्हें एकके बाद एक जोरसे खींच कर उतारीं, तो उसका चमड़ा लाल हो गया।

"धीरे-धीरे!"—उस व्यापारीने कहा। किन्तु लेखाने उन्हें उतारनेमें और भी अधिक उतावली की। उसे भय था कि कहीं वह चूड़ियाँ उतारनेमें सहायता करनेके लिए बाँहको हाथ न लगा दे। "यदि ईश्वरने चाहा तो हम फिर मिलेंगे, सम्भवतः जल्दी ही·····"

व्यापारीके शब्दोंकी मोटी आवाज उसके पीछे-पीछे दौड़ी। लेखा पाँव उठा कर शीघ्रतासे दौड़ रही थी।

व्यापारीकी दी हुई रकम उसकी मुट्ठीमें जल रही थी।

लेखाने अपनी खिड़कीसे एक बार फिर उस व्यापारीको देखा। उसका हृदय अब भी धड़क रहा था। जान पड़ता था कि व्यापारीके पैर मार्गपर कठिनाईसे आगेकी ओर बढ़ रहे हैं। उसने दो बार मुड़कर उस घरकी ओर घूर कर देखा, मानो वह उसे अपनी स्मृतिमें ठूँस लेना चाहता हो। लेखा तभी साँस ले सकी जब वह चला गया। किन्तु बहुत समय तक लेखाके मनमें उसका वह मुख अपना घर किये रहा और किसी अज्ञात अनिष्टके चिह्नसे उसके हृदयको व्याकुल करता रहा।

लेखाके पिताकी दृष्टि उसकी बाहोंपर जमी रही और उसका क्रोध दुखमें बदलता गया। वे सस्ती चूड़ियाँ लेखाकी माँकी थीं। बस वे ही उसका सब जेवर थीं। उन आरम्भके दिनोंमें कालूकी ऐसी दशा नहीं थी जो वह कुछ अच्छे जेवर खरीद कर अपनी स्त्रीको दे सकता। जब दशा सुधरी तब वह परलोक सिधार चुकी थी। उसके साथके थोड़े-से जीवनमें सिवाय भूख-प्यासके और कुछ वह नहीं दे पाया था। किन्तु उसे कोई शिकायत भी नहीं थी। इस बातमें लेखा अपनी माँकी अनुहार थी। वह अपनी बाँहोंपर माँकी काँचकी चूड़ियाँ पहन कर भी सन्तुष्ट थी।

उसे अपने सुखके लिए बहुत थोड़ा चाहिए था। किन्तु वह थोड़ा-सा भी तो कुछ दिनके बाद उसका पिता उसे न दे पायगा। सम्भव है सैकड़ो अन्य स्त्रियोंके साथ उसे भी भूखे पशुके समान न खानेके लिए कुछ कंदमूल कद खोजते हुए खेतोंमें भटकना पड़े।

काल् मुड़ा और अपना दुख अपने साथ लिए वहाँसे चल दिया। वह अपनी फूँकनेकी नलीके पास जाकर पहलेके समान अपने मुखको हथेलियोंके बीच थामकर बैठ गया। उसे लेखा कंदमूलकी खोजमे जमीन खोदती हुई, बेर मकोईके लिए ऊँची झाड़ियोपर चढ़ती हुई तथा कुछ जल-जन्तुओंके लिए तलैयोंमें घुसती हुई स्पष्ट दिखाई देने लगी। लेखाका मुख सूख कर हड्डियोका ढाँचा मात्र रह गया था। उसकी आँखें धुँधली और धुमी हुई थी। उसकी चाल एक छोटे बच्चेके समान लटपटाती हुई थी।

यह चित्र प्रतिदिनके अनुभवका था। सैकड़ो नर-नारीं उस अवस्थापर पहुँच गये थे और मर भी गये थे। काल्ने अबतक उस प्रलयको अपनी कमाईकी बचतके द्वारा दूर रखा था। वर्षोंके किफायती जीवनसे बचाई हुई सम्पत्ति अब क्षीण हो गई थी। और कितने शीघ्र ? जब भी उसके मनमें यह विचार आता तभी उसका मुँह सूख जाता। उसकी गाढ़ी कमाईके पाँच रुपयोंका मूल्य अब केवल एक रुपया था। परिस्थिति कुछ समझमें नहीं आती थी। ऐसा जान पड़ता था मानो पिछले सब वर्षोंमें उसकी चार-पचमान मेहनतका उसे कुछ मिला ही नहीं, सब निष्फल गई। और उसने मेहनत जी तोड़ की, सारे दिन और देरतक रातमे भी जहाँतक उसमें बल था। वह ग्राहकोका कभी कोई लिहाज नहीं करता था। अपनी वाजिब मजदूरींमसे कभी कुछ छोड़ता नहीं था। केवल एक बार ही उसने इस बातमे ढिलाई दिखलाई थी और वह तभी जब उस पुरोहितने उसी रात्रिको उत्पन्न होनेवाली उसकी सन्तानका नामकरण किया था। क्यो ? उस नामको सुझानेमें उस पुरोहितका क्या गया था, भले ही वह नाम जीभपर भी बहुत मधुर हो ? इन सोलह वर्षोंमें आज

पहली वार कालूको अपनी उस हानिका पश्चात्ताप हुआ। दो रुपया! फिर उसने कुछ घृणाका भाव दिखलाया। आज उन दो रुपयोंका मूल्य उनका पंचमांश ही तो होता! तब उसने कुछ उदारता ही कर ली, यह क्या बुरा है? किन्तु उस बूढ़े ब्राह्मणने उस वातको दूसरोंपर भी प्रकट किया। लोग हँसे और बोले—"अरे कालू! हम उससे भी अच्छा नाम उसके आधे मूल्यपर तुम्हें दे सकते थे। तुमने हमें क्यों नहीं अवसर दिया?"

कालू मुस्कराया। मनमें कितनी वेतुकी बातें फँसी रहती हैं! किन्तु तत्काल ही वह गम्भीर हो गया। हाँ, वह अपनी बचत तो खाये जाता है, अथवा यों कहिए, कोई अदृष्ट शक्ति उसे खाये जाती है। जल्दी ही कुछ नहीं बचेगा। तब फिर क्या होगा?

फिर क्या होगा? कालूने गम्भीरतासे अपने आप यह प्रश्न किया। किन्तु उसके स्पष्ट उत्तरको वह टाल गया। एक पूरा महीना बीत गया और तब उसे वह निर्णय करना पड़ा, जिसकी आशंकासे वह भयभीत था।

अब उसे राजधानीके शहरको जाना चाहिए—उस शहरको जो अपनी जनसंख्यामें संसारभरमें छठा या सातवाँ था—लेखाकी भूगोलकी पुस्तकमें उसने ऐसा ही कुछ पढ़ा था। वह उस शहरकी गलियोंसे अपरिचित न था। अपनी जवानीमें वह वहाँ पूरे दो वर्ष रह चुका था। उसके कई वर्ष पश्चात्, जब लेखा बारह वर्षकी थी तब वह उसे उसकी छुट्टियों-में लेकर गया था। उन्होंने वहाँ काली-मन्दिरके पास एक कमरा किरायेपर ले लिया था। उन्होंने वहाँ शहरकी रीतिसे पकाई हुई तीन प्रकारकी तरकारियाँ खाई थीं। इनमेंसे एक लेखा और उसे, दोनोंको खूब पसन्द आई थी—गोल-गोल आलू और उबाली हुई झुरझुरी प्याज, रसेदार। केवल भोजन ही मजेदार नहीं था। उस बड़े शहरकी दिखाई उसका स्पर्श और वहाँकी सुगन्ध!

झरना अब शहरका भूत मात्र रह गया था। सैकड़ों मनुष्य अब कलकत्ते-की यात्रापर थे। संसार एक भयंकर युद्धमें गुँथ रहा था, ऐसा युद्ध जैसा रामायणमें वर्णित है। पश्चिमके लोगोंने प्राचीन भारतके अस्त्र-शस्त्रोंका गूढ़

रहस्य जान लिया था। उन्होंने आकाशगामी विमान भी बना लिए थे, शब्दभेदी तोपें भी तैयार कर ली थीं, और वह ब्रह्म शस्त्र भी खोज लिया था जिसके चलानेसे अन्धकार छा जाता और शत्रुकी सारी सेना निद्रा-मग्न हो जाती। सारी राजधानीकी नगरी युद्धके अस्त्र-शस्त्रोंका कारखाना था। निश्चय ही वहाँ काल्लू जैसा कारीगर बेकार नहीं रह सकता। उसके हाथ घन-जैसे मजबूत और लोहेको कुम्हारकी मिट्टीके समान चाहे जैसा तोड़ने-मोड़नेमें कुशल थे।

लेखाको उसकी बूढ़ी बुआके पास छोड़ जाना पड़ेगा। यही एक चिन्ताकी बात थी—भारी चिन्ता। पर यह बात बहुत दिनोंके लिए न होगी। वह अपना नया घर तैयार कर ही लेगा—शहरमें कोई दो कमरों-का छोटा-सा निवास। वहाँ पानीका नल रहेगा, और जैसे बिजलीका भी। हो सकता है कि एक वर्षके भीतर वह वहाँ अपनी निजी लुहारी दुकान जमा ले। वहाँ शहरके बहुत ग्राहक मिलेंगे, और किसीकी नौकरी भी नहीं बजाना पड़ेगी। लेखाकी बाहोंके लिए नई तर्जके जेवर आ जायँगे, और कानोंके लिए गोलाकार लटकन। लड़कीकी उम्र भी अब खूब विवाहके योग्य हो गई। यह भी शहरमें जानेके लिए एक कारण है। वहाँ कोई योग्य जवान लड़का मिल ही जायगा। वह युवक उसकी लोहारी दुकानमें भागीदार भी हो सकता है, जिससे लेखा भी उससे बहुत दूर न जा पायेगी। वह अपने पतिके साथ उसके आस-पास ही रहेगी। उसकी ओर सावधानी रखना भी आवश्यक है। एक तो उसका रूप है, और दूसरे उसकी वर्तमान् मनोवृत्ति जो उसके यौवनके कारण उत्पन्न हुई थी। बूढ़ी बुआने शिकायत की थी कि इन दिनों लेखा बहुधा बिना किसी कारणके हँसा करती है।

"वह क्यों न हँसे?"—काल्लूने तुरन्त पूछ लिया।

"तुम बाप हो। तुम्हें जानना चाहिए। जो लोग लड़कीका हँसना सुनेंगे वे अपने मनमें न जानें क्या सोचने लगें? वे सोचेंगे यह लड़की बड़ी हल्के स्वभावकी है। हँसनेसे लड़कीकी अपनी कुछ ऐसी बात खुल

जाती है जो छिपी रहनी चाहिए। लड़कीकी भलाई केवल इसीमें है कि वह गम्भीरताका चोगा पहने रहे।"

बुड्ढीका कहना बिलकुल गलत भी नहीं था। रोजगारमें मंदी आनेसे पूर्व एक दिन काल्लू लेखाको सिनेमा दिखाने ले गया था। एक हँसी मजाकका चित्र था, जिसमें एक दुबला-पतला और दूसरा मोटा-ताजा आदमी परस्पर गा-खेल रहे थे। लेखाको ऐसा मजा आया जैसा पहले कभी नहीं आया था। वह रोमांचित होकर काँप उठी थी। उसे कोई रहस्यमय आनन्द आ रहा था। उसे अपने बाईं ओर बैठे अपरिचित व्यक्तिका कुछ ध्यान ही न रहा। उसी हँसीके कारण, या शायद उसकी हलचलसे, उसकी टिहुनी उस अपरिचित व्यक्तिके हाथसे लग गई थी, जिससे वह मनुष्य उत्तेजित हो उठा और उसकी ओर तिरछी नजरसे देखता रहा। काल्लू यह सब चुपचाप देख रहा था। उसे ऐसा क्रोध आया कि वह अपनी लड़कीको वहाँसे खींचकर सिनेमा-घरसे बाहर चला जाय। किन्तु उसके हृदयने सम्मति नहीं दी। इस बातसे कैसे इन्कार किया जाता कि लेखाका सुख उसका सुख है! इस बातसे भी कैसे इन्कार किया जाय कि कोई भी मनुष्य दूसरी बार उसे देखनेकी इच्छासे मुख मोड़े बिना उसके पाससे नहीं निकल सकता था! हाँ, इसका भी ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा कि लोग उसकी हँसीमें हास्य और विनोदके अतिरिक्त कुछ और भी न सुनने लगें।

इस विचारसे काल्लू गुर्राया। जो बदमाश उसका कुछ भी बिगाड़नेका विचार करेगा उसके वह प्राण ले लेगा। वह······

—"क्या है, बाबा?"

लेखा उसे गुर्राते सुनकर बाहर दौड़ पड़ी। वह घरके भीतरी बरामदेमें दोपहरके भोजनके लिए दाल धोकर साफ कर रही थी। काल्लूकी दृष्टि लेखाके मुखपर जम गई और उसकी मोटी मूँछें कुछ-कुछ कँपने लगीं। लेखा उत्तर पानेके लिए अड़ गई।

"क्या है, बाबा? बताओ तो मुझे।"

"चन्द्रलेखा !"—कालूने अपना मौन भंग किया। जब वह भावावेश-में आता तो वह अपनी लड़कीका पूरा नाम लिया करता था। "चन्द्र-लेखा, जब मैं मर जाऊँगा तब तुम्हारा क्या होगा ?"

लेखा तीन डग आगे बढ़कर उसकी गोदमें जा पहुँची और उसकी खुली छाती पर अपना सिर गड़ा कर बैठ गई।

"तुम्हें मेरे आँसू देखना है ?" वह रुँधे गलेसे चिल्लाई।

कालूकी छाती भर उठी और वहाँके घने बालोंके पसीनेसे लेखाके चिकने गाल भींग गये।

"जब मैं चला जाऊँ, तब तुम अपनी बहुत सावधानी रखना। अपनी गलियोंमें अनजान लोग आँखमें और हृदयमें पाप लेकर घूम रहे हैं। चाहता हूँ कि मुझे बाहर न जाना पड़ता।"—कालू ठहर गया। विवशतासे उसका गला रुँध गया था। "पर यह बात बहुत दिनके लिए नहीं होगी। मैं तुम्हें और क्या कह सकता हूँ ? तुम तो स्वयं चतुर और समझदार हो। ये बुरे दिन भी निकल जायँगे।"

वह फिर ठहर गया और उसके मुँहकी ओर देखता रहा। पुत्रीके छूटनेका क्लेश उसके हृदयमें असह्य था।

वज्र और गलफुल्ला (फूँकनी) नये और पुराने, उसकी सम्पत्तिमेंसे जाने वाली अन्तिम वस्तुएँ थीं। "अपने नये मालिककी अच्छी सेवा करना" उसने उन्हें प्यारसे थपथपाते आशीर्वाद दिया। "अपने नये रोजी देने वालेका बुरा मत सोचना" कहकर उसने अपनी आँसू भरी आँखोंको मींच लिया। आँसू टपाटप नीचे गिरने लगे।

घरमें जो कुछ बच रहा था, उससे दो माहका काम और चल सकता था, या अधिक-से-अधिक तीन। दो या तीन माह ? इतना समय तो उसके लिए बहुत होना चाहिए ? वह टिकट नहीं खरीद सकेगा। हजारों मनुष्य चलती गाड़ियोंकी पटरियोंपर बिना टिकट जाते-आते हैं। यहाँ झरनामें पुलिसकी निगरानी थी। इसलिए अगले स्टेशन तक पैदल चल-कर वहाँसे अपना मौका ढूँढ़ लेना चाहिए। उसे जल्दी ही अवश्य कुछ

काम मिलना चाहिए और जितना हो सके बचाना चाहिए। जब उसकी वसनीमें सौ रुपया हो जायँगे, तब वह घर लौट आयगा। कितनी खुशीका होगा वह दिन ? वह फिर लेखाको भी उस शहरको ले जायगा। फिर कभी चन्द्रलेखाको भूखका भय नहीं सतावेगा।

'जल्दी करो, जल्दी करो' वह अपने आप कहने लगा। किन्तु उसका हृदय तो धातुके गोलेके समान जड़ हो रहा था। वह तीन दिन और रुका रहा—केवल घरमें लेखाकी उपस्थितिका सुख लेने। वह उसकी ओर निहारता, जैसे कभी उसका जी भरेगा ही नहीं। वह भोजन बनाते, बर्तन साफ करते, कपड़ोंकी मरम्मत करते, उसीको देखता रहता। रातको सोतेमें भी वह इतनी सचेतता रखता कि लेखा भींतके उस तरफ अपने बिछौनेमें सो रही है।

और जिस आश्चर्यने उसे सदैव चकित किया था, वह अब उसे भीतरसे जलाने लगा। वह कुरूप आदमी, ऐसी सुन्दर लड़कीका बाप ! कहाँ उसका रूखा हल्का मन, और कहाँ लेखा नारीके रूपमें एक देवी ! यह कैसे हुआ ? यह आश्चर्य कैसे घटा ?

वे तीन दिन बीत गये और वह भयंकर घड़ी आ गई। लेखा पिताके गलेसे लिपट कर रोने लगी। उसे कुछ ऐसा लग रहा था जैसे वह फिर कभी अपने पिताको न देख पावेगी। वह भयसे स्तब्ध हो गई। कालू न तो उसे सान्त्वना दे सका और न कोई भरोसा। वह कुछ बोल ही न पाया। वह केवल अपनी धुँधली आँखोंसे उसकी ओर देखता और उसके सिर और कंधे पर हाथसे थपथपाता रहा।

बूढ़ी बुआ देख रही थी। "बहुत हुआ"—वह चिल्लाई।—"ज्यों ही सूर्य भगवान्‌का रथ पश्चिमकी ओर घूमने लगेगा, त्यों ही शुभ घड़ी निकल जायगी। फिर दो दिन और एक रात तक जानेका मुहूर्त नहीं है। यह रोना-धोना किस लिए ?"

कालूने अपनी छोटी-सी पोटली और एक गमछेमें बँधे चावलके लड्डुओंको उठा लिया। जानेसे पहले वह अपनी काकीको एक तरफ ले

गया और उसे कुछ रुपया देता गया—"लेखाने वे रुपये मुझे जबरदस्ती दे दिये हैं। मुझे इतनोंकी जरूरत नहीं है। उसे वापस दूँ तो वह चिल्ला कर रोने लगेगी।"

"तो तू खाली हाथ यात्रा करेगा?"—बुड्ढीने शोकसे अपना सिर हिलाया।

—"क्या मैं एक पेट भी न भर सकूँगी? तुम्हें वहाँ रुपयोंकी जरूरत पड़ेगी।

"मैंने दो रुपया और कुछ फुटकर पैसे अपने पास रख लिए हैं।"

"दुर्गा! दुर्गा!" बूढ़ी काकीने उस महान् दयाकी देवीका कालूकी यात्रामें कुशलताके लिए स्मरण किया।

एक पोटली कन्धेपर और दूसरी हाथमें लटका कर मार्गपर चलते-चलते कालू रुका, और उसने एक बार, दो बार, तीन बार और फिर अन्तमें चौथी बार घूम कर द्वारकी ऊँची सीढ़ीपर खड़ी हुई लेखाको देख लिया। फिर वह चल पड़ा और लगभग दौड़ता हुआ रास्तेके मोड़से अदृश्य हो गया।

२

केवल छः दिन हुए थे। इतनेमें ही संसार उलट-पुलट हो गया। दुस्साहसके एक क्षणने उसको जीवन भरका दुःख दे डाला।

काल्ू जब घरसे चला तब झरनाका रेल-रोड स्टेशन पुलिसके सिपाहियोंसे भर रहा था। वहाँ ठहरकर उसने पूर्वकी ओरसे पैसिंजर गाड़ीको आते देखा। गाड़ी खड़ी भी न हो पाई थी कि लाल टोपीवाले उसकी पटरियोंसे चिपके बीसों नर-नारियोंको ढकेल-ढकेलकर दूर भगाने लगे। बेबसीके दुःखकी चीत्कारें होने लगीं।

—"हम भूखों मर रहे हैं···। कुछ अन्नके दाने दो। बाबा···बड़े शहरतक गाड़ीमें बैठ जाने दो। उस बड़े शहरमें काफी अन्न है। वहाँ कुत्ते बिल्लियोंतकके लिए खानेको है···। मरतोंपर दया करो, बाबा। हमें जाने दो।"

"तुम्हारे पैर पटरीपरसे फिसल जायँगे और तुम गिर पड़ोगे। देखते नहीं हो?"—पीतलके बटनोंवाला सफेद कोट पहने और ऊँची टोपी लगाये एक रेलवे-मैनने दयालुतापूर्वक समझाया।

—"हम गिरेंगे तो जल्दी मर जायँगे; यहाँ पीछे रह गये तो दिन-दिन घुल-घुलकर मरेंगे। अन्न मिलनेका एक अवसर तो दो, कृपानिधान। भगवान् तुम्हारा भला करेगा।"

"किन्तु भगवान् तुम लोगोंका भला क्यों नहीं करता?"—रेलवे-मैनका धैर्य छूट रहा था।

भुखमरोंको इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं सूझा। कई दिनोंतक और महीनोंतक वे बड़ी लगनसे प्रार्थना करते रहे; मन्दिरोंके और स्वर्गके समस्त देवी-देवोंकी वन्दना करते रहे। किन्तु देवोंने उनकी कोई बात न सुनी। उन्होंने इतनी भी दया न की कि जो त्राहि-त्राहि करते हुए

धीरे-धीरे मर रहे थे उनको अपने वज्रपातसे शीघ्र मुक्ति दे दें। आत्म-घात कर लो और और मुक्त हो जाओ ! यह तो पाप होगा। तुम जीवका घात नहीं कर सकते, स्वयं अपने आपका भी नहीं।

सीटी वजी और इंजिनकी भुश, भुश, भुश आवाजके साथ गाड़ी चल पड़ी। कुछ भुखमरे आगेको दौड़े और कूदकर पटरियोंपर चढ़ गये। दो पैर फिसल जानेसे गिर पड़े और कराहने लगे। कांस्टेविल चिल्लाये और गाली-गलौज करने लगे। इधर ट्रेन चली गई।

हाँ, गाड़ीपर चढ़नेका यह उपाय है। काल्लूने इसे अपने मनमें रख लिया। अव दूसरी ट्रेन लगभग पाँच घण्टे पश्चात् आनेवाली थी। वह घर जा सकता था और समयपर लौटकर गाड़ी पकड़ सकता था। उसे घर लौटनेकी तीव्र इच्छा भी थी, क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसने लेखाको युगोंसे न देखा हो। उसने अपने अकस्मात् घर लौटनेपर क्या होगा इसका कल्पना की।

"चन्द्रलेखा !"—वह घरके द्वारपर पहुँचते ही पुकारेगा।

लेखा चकराकर पुस्तकपरसे आँख उठाकर देखेगी। उसे ऐसा लगेगा मानों वह आवाज उसके मनकी कल्पनामात्र थी।

"चन्द्रलेखा !"—वह दूसरी बार पुकारेगा। लेखा भयभीत होकर सोचने लगेगी कि कहीं कोई आवाज बनाकर तो नहीं पुकार रहा। धीरे-धीरे वह उठेगी और दरवाजेके पास आकर उसे थोड़ा खोलेगी। उसे देखकर उसकी आँखें बड़ी हो जायँगी और वह इतनी भावावेशमें आ जायगी कि वोल भी न सकेगी।

काल्लूकी कल्पनासे उसकी आँखोंके पलक उसे ही काटने लगे। वह प्लेटफार्मसे झट वाहर आ गया और स्टेशनके चौकसे बाहर आकर चौराहेपर खड़ा हो गया। वहाँसे एक मार्ग दक्षिणकी ओर उसके घरको जाता था। पश्चिमकी ओरका मार्ग बोधू-ग्रामके अगले रेल-रोड स्टेशनको होकर जाता था। वहाँ शायद पुलिसकी इतनी निगरानी न हो और उसे रेलपर चढ़नेको कुछ अच्छा अवसर मिल सके।

वह निश्चय नहीं कर पा रहा था। यदि वह घर गया तो वह दस साँसें भी न ले पायेगा कि फिर वही विदा होनेका क्लेश सताने लगेगा। वहाँके सुखके लिए वह उस क्लेशको झेलनेके लिए भी तैयार था। किन्तु लेखा ? लेखाको फिर वही दुःख भोगना पड़ेगा। वही भय उसे सतायेगा।

नहीं ! वह मुड़ा और पश्चिमके मार्गसे चल पड़ा। केवल एक बार वह फिर रुका और दक्षिणके रास्तेको घूरकर देखने लगा। वह फिर चल पड़ा और जल्दी-जल्दी पैर उठाने लगा कि कहीं उसका मन फिर न बदल जाये।

उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। यह भी क्या विपत्ति है ! वह अपने और लेखाके लिए केवल एक मुट्ठी चावल ही तो चाहता है ! और इतनेके लिए वह सुबहसे शाम तक अपना पसीना बहानेको, किसानके बैलके समान जुतनेको तथा तुम्हें अपने हृदयसे आशीष देनेको तैयार है। बस, उसे अपनी पुत्री लेखासे अलग न होना पड़े।

वह आगे बढ़ता गया। उसकी आँखें आगेके मार्गपर थीं, किन्तु उसका मन पीछे घरकी ओर मुड़ रहा था। उसे मनमें अपने घरकी मधुर बातें, लेखा सम्बन्धी छोटी-छोटी सुखकी स्मृतियाँ, याद आ रही थीं। वे भले दिन—जो अभी बहुत दूर नहीं गये थे। नलीकी फूँकसे अग्नि कैसी तेज जल उठती थी ! उसे अपने कामसे एक मिनटकी भी फुरसत नहीं मिलती थी। लेखाको रामतरोईकी रसेदार तरकारी, मिरचोंसे खूब चिरपरी, बड़ी पसन्द आती थी। उसने अपनी बुआसे कालूके लिए परमल लानेको कहा था। तरकारी सरसोंके तेल-लहसुनसे छौंककर खूब चटपटी बनें (अभी पूरा दोपहर भी न हो पाया था कि कालूको अपनी तेज चालके कारण भूख लग आई)। वे दिन थे जब उसे अपनी भूखपर गर्व हो सकता था। जो लोग उसे न्यौता देकर ज्यौनार कराते थे वे इसकी सावधानी रखते थे कि उसे परोसनेमें कसर न रहे। देखनेवाले उसकी खुराकका अन्दाज लगाते थे, खानेवालों-को उसकी खबर कर दी जाती थी।

—"कालूने ग्यारह पूड़ी तरकारीसे खायीं और उसे छः बार भात परोसा गया। देखो, आज कालूका दही और आम छोड़कर और कुछ खानेपर मन नहीं है। उसने थक्का दहीका एक बड़ा कटोरा खाली कर दिया है और आम अभी तक पचाससे ऊपर हो गये हैं; पर अभी खुराक पूरी होनेके कोई लक्षण दिखाई नहीं देते।"

जब उनकी जातिमें कोई विवाह-शादी या सूतककी जेवनार होती तब लेखा घबराती थी। बाबा कहीं पहलेसे भी अधिक न खा जायँ और बीमार हो जायँ! लेखाकी खुराक सदैव अल्प ही रही। वह तो खाती क्या, चुगती थी। उसे कुछ अधिक खिलानेके लिए कालूको प्रतिदिन बड़ा प्रयास करना पड़ता था।

कालूने झटकेसे अपने विचारोंको मोड़ा। यदि उसे जल्दी कोई काम नहीं मिला तो लेखाको उसकी आवश्यकताके वे मुट्ठीभर दाने भी न मिलेंगे; उसे पशु-पक्षियों जैसे अपना पेट भरना पड़ेगा।

बोधू गाँव आ गया। वहाँका छोटा-सा स्वच्छ लाल खम्भोंवाला रेलवे स्टेशन दोपहरकी धूपसे गरम हो रहा था। किन्तु उसका बड़ा भारी बरामदा ठण्डा और मनोहर था, क्योंकि उसमें लकड़ीकी जाफरी लगी हुई थी जिसपर बड़े-बड़े नीले फूलोंवाली लतायें चढ़ी हुई थीं। कालू प्लेटफार्मसे दूर एक सूने कोनेमें रखी बेंचपर अपनी पोटली उतारकर बैठ गया।

क्या वे गुड़की राबसे बने चावलके लड्डू खाए जायँ? उसने चावसे अपनी उस पोटलीपर हाथ फेरा। नहीं, अभी खाना ठीक न होगा। उसे उस बड़े शहर तक पहुँचनेमें कई घण्टे रेलगाड़ीपर बिताना पड़ेंगे। जो कुछ थोड़ा-बहुत उसके पास है उसे ब्यालूके लिए बचाना चाहिए।

गाड़ी ठीक समयपर आई और कालू बीसों दूसरे आदमियोंके साथ उसकी पटरीपर चढ़ गया और हाथसे लोहेका हैंडिल थामकर खड़ा हो गया। आश्चर्य कि इन लोगोंको किसीने ढकेलकर अलग नहीं किया। क्या लाल पगड़ीवालोंको दया आ गई? तब तो वह इसी गाड़ीको

झरना स्टेशनसे ही पकड़ सकता था। उसने कितनी मूर्खताकी जो वह व्यर्थ इतनी दूर पैदल चला और अपनेको थका मारा। वहाँसे अगला स्टेशन छः मील था। अब वह कुछ भी हो, बड़े शहरके एक कदम और पास तो पहुँचेगा ही। उस स्टेशनपर मात्र एक कर्मचारी था, जिसने घण्टी बजाकर ट्रेनको विदा कर दिया।

काल्लूने सोचा अब चित्तको विश्राम दिया जाय। उसी पटरीपर खड़े-खड़े लम्बी यात्रा करना है, तब कुछ चित्तकी शान्ति बिना काम न चलेगा। क्या यह फास्ट ट्रेन है? उसके घण्टे और मिनिट अपने ही नहीं थे। वे सब चन्द्रलेखाके थे। वह जितनी जल्दी वहाँ पहुँचकर कुछ रोजगार-धन्धेसे लग सकेगा उतनी ही जल्दी उसकी प्यारी बिटिया फिर उसके पास आ जायगी। जल्दी करो ड्राइवर, जल्दी करो। कुछ और कोयला-पानी एञ्जिनमें डाल लो।

क्या गल्ती हो गई? प्लेटफार्मसे गाड़ी निकल भी न पाई थी कि वह फिर खड़ी हो गई। वह धक्केके साथ ठहरी और लाल पगड़ीवालोंका दलका दल उन भूखसे पीड़ित मनुष्योंपर टूट पड़ा और गाड़ीकी पटरी खाली कराने लगा। बेचारोंके कन्धों और पीठोंपर डण्डे पड़ने लगे। एक डण्डा काल्लूकी पोटलीपर पड़ा। कपड़ा फट गया और वे चावलके लड्डू गिरकर धूलमें बिखर गये। पुरुष और स्त्रियाँ खुशीसे चिल्लाते हुए गिद्धों-जैसे उनपर टूट पड़े और एक क्षणमें वहाँ एक दाना भी न बचा।

लाल पगड़ीवाले काल्लूकी ओर घूर-घूरकर देखने लगे। काल्लू हक्का-बक्का-सा चुपचाप जहाँका तहाँ खड़ा रहा। वे गुस्सेसे गुर्राते हुए वहाँसे चले गये और गाड़ीमें जा बैठे। एक क्षण पश्चात् ही सीटीकी तेज आवाजके साथ गाड़ी फिर चल पड़ी। वह अपनी 'कू-ऽऽऽह' आवाजसे मानो उन छोड़े हुए असहाय मनुष्योंका उपहास कर रही थी।

काल्लूके हृदयमें क्रोधका पूर उमड़ पड़ा—ऐसा कठोर कोप जैसा उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। उसने गाड़ी चलते समय अपनी मुट्ठी बन्द करके हवामें हिलाई—"सुअरके बच्चे! जानवर!

शैतान !''

उसके गालोंपर खून दौड़ गया।

गरीब लोगोंका दल अपने भाग्यको कोसता हुआ सिर लटकाये पश्चिमकी ओर बढ़ चला। कालूने अपनेको उन सबसे कुछ पीछे रखा। फिर उसने चलकर उनके आगे निकल जानेका निश्चय किया। उसने तब तक अपना कदम धीमा नहीं किया, जब तक वे उसके बहुत पीछे नहीं छूट गये।

अन्तमें उसने कुछ आरामकी साँस ली और अपने मुँहपर छाये हुए पसीनेको पोंछा। उन लोगोंने उसे कैसा डरा दिया! उसे स्वयं आप और चन्द्रलेखा भी उसी अभागे दलमें शामिल दिखने लगे थे। उसका समस्त अन्तरंग भयके आवेगसे चीत्कार कर उठा। जल्दी करो! अब समय नहीं है। जल्दी!

जल्दी क्यों? रातके पहले अब कोई गाड़ी नहीं थी। उसे छह मील अगले स्टेशनपर ही तो जाना था और वहाँ भी यदि वह गाड़ीपर न चढ़ सका? बड़े शहर तक पैदल चलनेमें तो उसे आठ-दस दिन लग जायँगे। उसे कुछ खानेको भी नहीं मिलेगा। जमीन खोदकर या झाड़ोंसे तोड़कर कुछ खाना पड़ेगा। और इसमें रोज कई घण्टोंका समय खोना पड़ेगा। उसकी सारी शक्ति उसी प्रकार क्षीण हो जायगी, जैसे तेल जल जानेपर बाती। हाँ, पैदल चलकर बड़े शहर पहुँचनेमें उसे हफ्तों लग सकते हैं। एक समूचा महीना भी या इससे भी अधिक। और जब वह वहाँ पहुँचेगा भी तो कड़ी मेहनतके कामका नहीं रहेगा। वह भी उन भुखमरोंके प्रवाहमें डूब जायगा। उन्हीं सरीखा—देहके ऊपरका रूप और मनके भीतरकी निराशा—

और लेखा? उसका क्या होगा?

जल्दी करो! समय नहीं है—जल्दी।

अगले रेलरोड स्टेशनपर पहुँचकर वह स्टेशनके चौकमें ठहर गया और वह देखने लगा कि वहाँ आकर वे गरीब क्या करनेवाले हैं। वे

आध घण्टेमें वहाँ आ पहुँचेंगे। यदि वे एक दलमें ही वहाँ आये तो पुलिस अन्यत्रकी नाईं वहाँ भी कार्रवाई करे बिना नहीं रहेगी। तब तो समय रहते ही उसके वहाँसे चल देनेहीमें भलाई है।

जब वह दल वहाँ आया तब वह चौकन्ना होकर खड़ा रहा। उस क्षणमें उसे उन गरीबोंसे भी बड़ी घृणा हुई। वे आगे चले जाते तो अच्छा था।

किन्तु वे वहीं ठहर गये। कालूका दिल धड़कने लगा। अब उसे आप ही आगे चल देनेके सिवाय और कोई चारा नहीं था।

फिर एक आशातीत बात हुई। वे लोग केवल एक क्षण ही वहाँ रुके। उन्होंने बातचीत की और निर्णय कर लिया। वे वहाँसे चल पड़े। कालू अविश्वासकी दृष्टिसे घूरता रहा। वे पश्चिमके रास्तेसे चल पड़े—सभी नर-नारी अपनी छोटी-छोटी पोटलियाँ और बच्चे लिए हुए। शीघ्र ही वे एक घनी अमराईकी आड़में विलुप्त हो गये।

"हे भगवान्!"—कालूने ईश्वरका स्मरण किया। उसका जी बड़ा हल्का हो गया। वह जोरसे अपनी बेटीसे बातें करने लगा—"हाँ, हाँ, बेटी! अभी भी अपने लिए आशा है।"

उसने बड़ी सावधानीसे अपनी योजना बनाई। अभी अपनेको प्लेट-फार्मपर दिखाना ठीक नहीं होगा। टिकट कलेक्टर शायद पूछ-ताछ करने लगे। सूर्य हालहीमें डूबा था। गाड़ी आनेमें अभी बहुत देर थी। वह वहाँसे चल पड़ा। आस-पास कोई गाँव दिखाई नहीं दिया। किन्तु एक-दो मीलके भीतर कोई गाँव होगा अवश्य। परन्तु वहाँ उसे क्या मिलनेकी आशा थी, सिवाय भूखसे पीड़ित नर-कंकालोंके या सम्भव है उस गाँवके सभी लोग निकल भागे हों? और इसी कारण शायद वहाँ कोई ट्रेनकी बाट जोहनेके लिए नहीं रहा हो। किन्तु रहना तो रेल मार्गके पास ही चाहिए। वह बाँधके हरे ढालपर लेट गया। उसका विचार कुछ समय पश्चात् प्लेटफार्मपर जानेका था।

समय निकलता गया। चमकते हुए तारोंके नीचे वह पीठके बल लेटा

और कुछ ऊँघता रहा। उसके पैर और मन दोनों थकानसे भारी हो रहे थे। किन्तु उसे चूकना तो था नहीं। वह उठ बैठा और सावधानीसे स्टेशनके फाटकसे भीतर घुस गया।

रेलवेका एक पोर्टर प्लेटफार्मकी बेंचपर बैठा था। उसकी बगलमें लाल रोशनीकी लालटेन रखी थी।

"कलकत्ता जाने वाली कोई गाड़ी नहीं है क्या?"—कालूने सहज भावसे पूछा।

—"एक घण्टे बाद—नाइन-अप आज लेट रन कर रही है। जहाँ देखो तहाँ लाइन भरमें भुखमरोंका त्रास है। कितने दलके दल—हजारों।"

—"हाँ, हाँ, भाई! बड़ा त्रास है।" कहता हुआ कालू तुरन्त वहाँसे दूर हट गया।

वह एक अँधेरेसे कोनेमें जाकर ठहर गया। समय बड़ी कठिनाईसे कट रहा था। अन्तमें वह समय आ ही गया जब एक बार वह पुनः रेलगाड़ीकी पटरी पर जा खड़ा हुआ। इस बार वह अकेला ही था। पुलिसकी कड़ी देखरेख थी।

उसने अपनी बाँहें हेंडलके डण्डेमें फँसा लीं। एञ्जिनकी तेजीकी हवा उसके कानमें सनसनाने लगी। फौलादी चक्के उसके नीचे चीत्कार करने लगे। हवाकी फटकार और गाड़ीकी गड़गड़ाहट उसे मानो पकड़कर दूर खींच रहे थे। किन्तु वह प्राणोंके साथ चिपका ही रहा। प्रत्येक आध घण्टेमें जब गाड़ी स्टेशन पर ठहरती तब वह चुपकेसे प्लेटफार्मपर उतर जाता और ज्योंही गाड़ी चलने लगती त्योंही पुनः कूद कर पटरी पर चढ़ जाता।

—"सिगरेट! पान! तमाखू!"

ये चीखती हुई ध्वनियोंसे वह चौंक उठता। "मुफ्त पीनेका ठण्ढा पानी"के अतिरिक्त उस रात उसे केवल पान-तम्बाखू बेचने वालोंकी ही आवाज सुनाई दी। सदाकी वे दूसरी आवाजें कहाँ चली गईं?

—"पूड़ी मिठाई!"

—"फेनी कलाकन्द !"

—"मलाईका बरफ !"

ये सब कुछ भी तो नहीं थे। केवल खरीदनेको थे पानके पत्ते और तमाखू।

इस प्रकार कालू बंगालकी काली अँधेरीमेंसे पार होता गया। उड़ती हुई धूलसे उसका मुँह किरकिराने लगा। उसकी बाहें भी अकड़ गईं। थोड़ी-थोड़ी देरमें वह पटरीपर अपने पैर हेर-फेर लेता था। दो-तीन घण्टे पश्चात् उसे दिखाई पड़ा कि उसके आगेके डब्बेसे कोई छायाकृति चिपकी है।

कोई साथी यात्री हो! वह ट्रेनपर कहाँ चढ़ा होगा? पिछले स्टेशन पर या उससे पहले कभी? कालूने अपनी आँखें गड़ाईं जिससे उसे उस आदमीका मुँह दिखाई दे जाय। जवान है कि बूढ़ा? वे कैसे थे जिन्हें उसने अपने पीछे छोड़ा था—माँ? स्त्री? लड़का और लड़की? कालूको उससे अपनत्वका भाव उत्पन्न हुआ। उसका जी चाहता था कि अपना हाथ उस मनुष्यके कन्धेपर रख दे और पूछ ले—"भाई तुम्हारा क्या नाम है? और तुम्हारा गाँव या कस्बा?"

इस नई अनुकम्पासे उसके हृदयको सुख मिला। पटरीपर खड़े खड़े यात्राका क्लेश भी कुछ कम हो गया। हवाके थपेड़ोंके कारण उसे अपना मुख उस अपरिचित मनुष्यसे फेर कर रखना पड़ता था। किन्तु जब तब वह उसकी ओर देख लेता और उसकी उपस्थितिसे कुछ बल प्राप्त कर लेता था। गुड़के लड्डुओंके खो जानेका दुख अब उसे कुछ भारी मालूम पड़ने लगा। उन्हें वह अपने नये साथीके साथ खाता। वह अवश्य बहुत भूखा होगा।

...भूख...? खुद उसके पेटमें ऐसी पीड़ा हो रही थी कि उससे सही नहीं जाती थी। जीवन भरमें पहले उसे कभी ऐसी कड़ाकेकी भूख नहीं लगी थी। उसके सिरमें कुहरे जैसा धुँधलापन भर रहा था। अँगोंपर थकान छा गई थी। वह घुटने नवाकर बैठ जाना चाहता था। किन्तु तुरन्त ही

उसने मनका जोर लगाकर अपनेको सम्हाला। वह गिरना नहीं चाहता था।

वह काली रात बढ़ती गई। ट्रेन हिलती-डुलती एक पुलपरसे जाने लगी। उसने अपनेको डब्बेसे खूब चपेट लिया। पुलके गार्डर उसीकी ओर झुक रहे थे। और वह उनसे बाल बाल बचता जा रहा था। घोर गड़गड़ाहटसे उसकी नाड़ियोंको आघात पहुँचा और उसके कान फटने लगे।

संकट कट गया! उसने अपना सिर अपने साथीकी ओर फेरा—"तुम्हें कैसा लगा भाई?"

वह चौंक पड़ा और प्रायः उसके पैर पटरीपरसे उखड़ गये। जहाँ वह छायाकृति थी वहाँ अब कुछ नहीं रहा था। कुछ देर तक वह बात समझ ही न पाया। फिर वह काँप उठा। उन फौलादके खम्भोंने उसके मित्रको खा लिया।

उसकी आँखोंमें आँसू भर आए। वह अपने आप कुछ बुदबुदाने लगा—"भाई यह सब तुमसे न सहा गया? तुम्हें मुक्ति मिल गई। मुझे तो भुगतना ही पड़ेगा भाई, क्योंकि मेरी एक लड़की है। और कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है।"

प्रभातकी किरण फूटते ही उसे कुछ शान्ति मिली। उसकी यात्रा पूरी होने आ रही थी। उसने डिब्बेके पीले रंगपर ध्यान दिया। दूसरे सब डब्बे काले मटहा रंगके थे। यदि वह भूखा न होता तो खूब हँसता। वह पहले दर्जेके डिब्बेमें यात्रा कर रहा था। उसके आगे समीप खुली हुई खिड़की थी। वह खिड़कीमेंसे देखनेके लिए सावधानीसे आगेकी ओर खिसका।

एक मष्नुय अपने विस्तरपर आरामसे सो रहा था। वह डिब्बे भरमें अकेला था। बड़ी लापरवाही थी उसकी जो उन बुरे दिनोंमें भी खिड़की खुली रखकर सो रहा था। लापरवाही! उसी क्षण कालूकी दृष्टि बाजूकी टेबिलपर रखे हुए केलोंपर पड़ी, अच्छा पका सुनहला गुच्छा!

न्लोंने उसकी आँखोंको पकड़ लिया। उसे असह्य पीड़ा होने लगी। वह अपनी दृष्टि और कहींको फेर ही नहीं सकता था। उसकी भूख मानो सौगुनी बढ़ गई हो। वह उस पटरीपर और अधिक खड़ा नहीं रह सका। उसे बैठना या लेटना ही चाहिए। लेटना! ठीक! किन्तु वह अपनी आँखें उन केलोंपर गड़ाए ही रहा; अपनेको पीड़ा देता रहा।

ट्रेन रुकी। धरती मातापर पैर रखनेका फिर सुख मिला। अब वह बड़ा शहर केवल पचास मील दूर रह गया था। डिब्बेके भीतरवाले मनुष्यने मखमली कसीदेदार स्लीपरोंमें अपने पैर डाले और प्लेटफार्मपर उतरकर हथेलीकी पीठसे आँखें मलता हुआ समाचार-पत्रोंकी दुकानकी ओर चला गया।

अकस्मात् कालूको सनक आई। डिब्बेका पीला दरवाजा खुला हुआ पड़ा था। वह उसके पास आया। ट्रेनकी चाल उसके अंगोंमें अब भी घूम रही थी। घूमकर वह जल्दीसे डिब्बेमें तीन कदम घुसा और पलक मारते बाहर आ गया। उसकी मुट्ठीमें तीन पके केले थे। उसकी आँखें उन फलोंका स्वाद ले रही थीं, कि किसी मजबूत हाथने उसे पकड़ा और वह चौंक उठा। उसे पकड़नेवाला साधारण पोशाक पहने हुए एक पुलिस-मैन था।

—"भाई, मैं अपनी आँख बराबर तुमपर रखे था। मैं तो आदमीको उसके चेहरेसे पहिचान लेता हूँ।"

उसने फल चुराये थे, और कुछ नहीं। किन्तु थी तो वह चोरी ही। ऐसी बातोंपर आँखें नहीं मींची जा सकती थीं; जबकि भूखसे पागल हुए आदमियोंके दलके दल चारों ओर घूम रहे थे। क्यों? यदि उसे अवसर मिलता तो सम्भव है वह और बड़ी कीमती चीज चुरा सकता था। यदि उसे रोका नहीं गया और दण्ड नहीं दिया गया तो उसका साहस बढ़ जायगा। ये बातें उन्होंने उसे पुलिस स्टेशनपर ले जाकर कहीं।

"लेखा!"—कालूने निराशासे कराहते हुए उसका नाम पुकारा।

"लेखा!"—ट्रेनकी चाल अब भी उसके सिरमें घूम रही थी।

"छोटा-सा जुर्म है"—एक गार्डने उसके दुःख भरे प्रश्नके उत्तरमें दया पूर्वक उससे कहा—"शायद पन्द्रह दिन, शायद एक माह"—

शायद पन्द्रह दिन। शायद एक माह। कालूको सजाका कोई डर नहीं था। डर तो लेखाका था। लेखा दुख भोगती रहेगी। उसके एक क्षणके पागलपनसे लेखाको बड़ा दुख भोगना पड़ेगा।

किन्तु विवेकने उसकी सहायता की। उसकी जो ठहरी हुई धारणाएँ थीं उनमें 'कानूनपर भरोसा' भी एक थी। इस साधन द्वारा गरीबोंको भी न्याय मिलता है। उसे केवल न्याय ही तो चाहिए, उसने मनमें कहा। उसका मामला तो सीधा-सादा है। उसे केवल सच्चा बयान दे देना है। अदालत खुद समझ जायगी। वह कोई चोर तो था नहीं! वह था—झरना शहरका चतुर कारीगर! उसे सब कोई जानते थे, और कोई भी उसकी गवाही दे देगा। एक वर्ष पूर्वतक तो मोटर खरीदनेके पहले स्वयं वहाँके मजिस्ट्रेट साहबने उसीसे अपने घोड़ोंके नाल ठुकवाये थे। कलेक्टर साहबने सीताराम स्ट्रीटके पास एक-मजला बड़ा मकान बनवाया था। उसके सारे लोहेके कामका—साँकलों, छड़ों वा जालियोंका—ठेका उसीको तो दिया गया था! उसकी लड़की भले आदमियोंकी लड़कियोंके साथ दस वर्ष तक स्कूलमें पढ़ी थी। चोरी उसके रास्तेसे बहुत दूरकी चीज थी। वह तो दुष्कालकी भूखसे घर-द्वार छोड़कर काम ढूढ़नेके लिए बड़े शहर जा रहा था। उसकी तो नस-नसमें इस बातकी लज्जा थी कि उसे रेलगाड़ीकी पटरीपर खड़े होकर यात्रा करनी पड़ी थी।

कालूकी चिन्ता कुछ कम हुई। नाहक कोरे भयसे उसने अपनेको उतना क्लेश दिया। उसने कानूनकी सत्य-खोजी आँखपर इतना अविश्वास क्यों किया!

पाँच दिन बाद वह एक क्रिमिनल अदालतमें पेश हुआ। उसके हाथ बेड़ियोंसे जकड़े हुए थे और एक लम्बा रस्सा उसकी कमरसे बँधा हुआ था। उसने अपना नाम, आयु और धन्दा बतलाया। जब उसने अपनेको

अपराधी स्वीकार कर लिया, तब मजिस्ट्रेट साहबने तीक्ष्ण दृष्टिसे उसका सर्वेक्षण किया।

—"तुमने चोरी क्यों की?"

—"मैं भूखा था, साहब! मुझपर एक पागलपन सवार हो गया था। यह इसलिए हुआ क्योंकि मैंने सोचा मुझे अवश्य खाना चाहिए, नहीं तो मैं मर जाऊँगा। मुझपर पागलपन सवार हो गया। मुझे जीना था।"

वे तीन केले टेबिलपर रखे थे। वे खूब पककर सड़ रहे थे।

"क्यों?"—धुएँके रंगकी अँग्रेजी पोशाक पहने उस न्यायाधीशने पूछा "क्यों जीना चाहते थे। तुम?"

उसकी आवाजमें कोई उपहास नहीं था, और उसका गोल चिकना चेहरा ठण्डा और शान्त था।

उसका प्रश्न सीधा-सादा था। उसमें कोई अलौकिक, उलझावकी बात नहीं थी। मजिस्ट्रेट साहब स्वयं जीवनकी अच्छी बातोंसे प्रेम रखते थे, और मरनेसे डरते थे। किन्तु एक कुलीका जीवन दूसरी बात थी।

काळू चकराया! "मैं—", वह हड़बड़ा गया। "मैं—"

"तुम जीना क्यों चाहते थे?" मजिस्ट्रेटने फिर पूछा; तीव्रतासे नहीं, किन्तु शान्त और सहज भावसे, टेबिलपर अपना सिर झुकाए हुए। उसकी आँखें अपनी सुनहली टोपीवाली कलमपर जमी हुई थीं। मानों वे उसके वजनका अन्दाज लगा रही हों, या उस फैसलेके वजनका अन्दाज, जो उसके द्वारा एक क्षण पश्चात् ही लिखा जानेवाला था।

"न्यायके दाता!" काळूने अपनी जबान साफ कर ली थी—"मैं तो एक कीड़ा हूँ, साहब। मेरे मरने-जीनेका कोई मूल्य नहीं। किन्तु मेरी एक लड़की है। उसकी माँ नहीं है। उसका सब-कुछ मैं ही हूँ, साहब! मेरी लड़की चन्द्रलेखा जीती रहे।"

काळू कहता जाना चाहता था कि चन्द्रलेखा सेण्ट जोसेफके कान्वेण्टमें पढ़ी और उसने अशोक-स्मारक पदक भी जीता है। लेकिन मजिस्ट्रेटने तो अपने मनमें फैसला कर लिया था। कानून भंग करनेकी

प्रवृत्ति बहुत फैल रही थी। उसे सख्त सजा द्वारा रोकनेकी जरूरत थी।

"क्यों ?"—उसने फिर धीरेसे सुस्तीके साथ पूछा।

"क्यों ?"—कालूने न्यायके उस चन्द्र समान मुखकी ओर घूरकर जड़बुद्धि जैसे देखा। उसकी जीभ तालूसे चिपक गई। वह गूँगा हो गया। उसका गला सूज उठा, मानों उसमें काँटा गड़ गया।

"तीन माहकी सख्त कैद।" मजिस्ट्रेटने अपनी सफाचट मूछोंवाले होठोंमेंसे कह डाला। कालूको ज्ञात हुआ कि उसके पैरोंके नीचे पृथ्वी डोल रही है। उसकी आँखोंमें अँधेरा छा गया।

एक पुलिसके सिपाहीने उसकी पसलियोंमें गुलक कर कठोरतासे कहा—"चलो" वह बेड़ियोंसे बँधा हुआ चकित होकर चल पड़ा। उसकी कमरसे वह चोरके बन्धनका रस्सा लटक रहा था।

कालूका वह स्थूल शरीर, जिसका मुँह डाढ़ीके बालोंके ठूँठोंसे भर रहा था और रूखे बालोंसे घिरा हुआ था, अदालतके कटघरेसे धीरे-धीरे चला गया। किन्तु उसका कुछ भाग वहीं रह गया जो उसे फिर कभी वापस नहीं मिला। वह बात चली गई; झरना शहरका लुहार कालू फिर कभी पूरा न बन पाया।

४

यह शहर मझोले आकारका था। यहाँका जिला-जेलखाना सरसोंके तेलकी उपजके लिए खास तौरसे प्रसिद्ध था। यहाँ जैसा तेल बाजारमें दुर्लभ होता था। वह सरकारी अफसरों और उनके कुछ विशेष कृपापात्रों-को ही रियायती मूल्यसे बेचा जाता था। तेलकी घानी कैदियोंकी ही मेहनतसे चलती थी। वे ही घानीके जुआको अपने कन्धेपर लादकर और आसपास घूम-घूमकर सरसों पेरते थे। इस प्रकार कैदी अपना खर्च निकालते थे, और उनपर निगरानी रखनेवाले गार्डों और वार्डोंके वेतनमें भी वे सहायता पहुँचाते थे।

कालू अब 'पी–१४' कहलाने लगा था। वह चुस्त छोटा जाँघिया और बनियान पहिनता और अपने दलके साथ काम करता था। उसकी वह अकड़ अब बिलकुल चली गई थी। उसके साथके कैदी घानी चलाते-चलाते बीच-बीचमें कुछ ठहर जाते, और अपने मुँहपरके पसीनेको पोंछकर उसे चुल्लूमें लेकर उस तेलके अदृश्य ग्राहकोंके नामसे जल चढ़ाते थे।

—"खाइए इसे···हमारे हाड़ोंका तेल खाइए। इसे अपनी तरकारी छौंकनेके लिए लीजिए···इसे कढ़ी बनानेके लिए···और यह लीजिए अपनी देहका मालिश करने। खाइए इसे, हमारे हाड़ोंका तेल, खाइए।"

किन्तु कालू अपने मुँहपर ताला लगाये रखता था। वह कड़ी मेहनत करता और कभी शिकायत न करता। वह आदर्श कैदी था। वह अपने वार्डोंकी गाली-गलौज और डाँट-फटकारको चुपचाप सह लेता। यह तो थर्ड क्लासके कैदियोंका दैनिक दुर्भाग्य था। किन्तु कभी-कभी उसके मनमें ऐसे क्रोधका वेग आ जाता था कि उसका जी उनसे लड़ बैठनेको हो उठता। वह तमाचा मारनेवाले या कहनेके अयोग्य बुरी गाली देनेवाले गार्डको पीट दे सकता था।

अपने मनमें कालूको क्रोधसे अपना मुक्का पहरेदारके बक-बकाते हुए मुँहकी ओर बढ़ता दिखाई दे जाता था। पहरेदार ऐसे चीत्कारके साथ चिल्लाता मानो उसे कोई मारे डालता हो। उसी क्षण फाटकके पासकी निगरानी-मिनारपर लटका हुआ 'पागल घण्टा' बज उठता और भयकी कटु घोषणा कर देता। 'जेलमें बलवा हो गया।' कालूको दिखाई देता कि गार्ड और पहरेदार जो कुछ अस्त्र-शस्त्र उनके हाथ लगते—लाठी, डण्डे, लोहेकी छड़ोंके टुकड़े—लेकर चौकमें कतार बाँधकर दौड़ पड़ते। बात हवामें उड़ती हुई जाती और दस मिनटके भीतर खाकी वर्दीवाले सिपाही आ धमकते। वे भी चौकमें कतार बाँधकर खड़े हो जाते, तथा उनकी बन्दूकोंपरकी छुरियाँ चमक उठतीं और वार करनेके लिए तैयार हो जातीं।

"प्रत्येक आदमी अपनी खोलीमें !"—डिप्टी जेलर अपना आदेश भौंक उठता।

जब कैदी पुनः बन्द हो जाते, तब पहरेदार उनपर आक्रमण करते। वे डण्डा उठाये भूखे शेरों जैसे टूट पड़ते। वे कैदियोंको उनकी खोलियों-में ही बुरी तरह पीटते, डण्डेपर डण्डे मारते और इस तरह उनके दिल-दिमाग दोनोंको तोड़ डालते।

और वे उसके साथ कैसा बर्ताव करते—उस कालूके साथ जो इस झगड़ेकी जड़ था ? उसका सिर जब जोरके प्रहारसे फट जाता तब वे उसे उस ठण्डे सीमेण्टके फर्शपर लम्बा-चित्त पड़ा छोड़ते, बेड़ियोंसे सुरक्षित।

इन विचारोंसे कालूका हृदय धड़कने लगता। किन्तु लेखा उसे सान्त्वना देनेके लिए उपस्थित थी। उसे ऐसा लगने लगता मानो लेखाका सान्त्वनापूर्ण हाथ उसके हाथोंमें हो। और उसकी कोमल आँखें कह रहीं हों—"बाबा, धैर्य रखिए !"

कालूका हृदय अपनी कल्पनासे निखर उठता। वह अपनेको स्थिर बनाये रखता और हर प्रकारके अपमानको सहन कर लेता।

एक कैदीने अपने अच्छे आचरणके द्वारा अपने कैदकी अवधिमें कुछ थोड़ी-सी छूट पा ली, एक माहमें दो दिन। काल्लूने उत्सुकतासे इस बातको पकड़ लिया। वह अपनी कैदकी म्यादसे छः दिन पूर्व छूट जानेका स्वप्न देखने लगा। इस विषयमें रातको उसने अपनी लड़कीसे बातचीत की।

"चन्द्रलेखा!" उसने कहा—"मुझे अपना छह दिनका समय वापिस मिल रहा है—मेरा नहीं तेरा समय। छह दिन चन्द्रलेखा!" वह अपनेमें तल्लीन और मौन रहा करता था। उसने बहुत कम मित्र बनाये थे। काल्लूको अपराधियोंसे घृणा थी। पहले अनेक बार उसने नीली वर्दीवाले सिपाहियों द्वारा बेड़ियोंमें जकड़े हुए चोरोंको झरना शहरके रास्तेपरसे अदालत ले जाते देखा था। उसने अपना सिर हिलाकर इस कार्रवाईको ठीक समझा था। ऐसे आदमियोंके साथ ऐसा ही वर्ताव करना चाहिए।

एक बार लेखा उसके विरुद्ध बोल पड़ी—"बाबा, सम्भव है उन लोगोंके चोरी करनेका कारण यह हो कि उन्हें कोई काम-धन्धा न मिला हो और उनके पास कुछ खानेको न हो।"

—"पर तुम्हें कैसा लगेगा यदि तुम्हारी आधी रातको नींद टूटे और तुम्हें अपने कमरेमें घुसा हुआ चोर दिखाई दे?"

इसपर लेखा काँप उठी थी।

आज लेखा मेरी ओर देखकर काँपेगी। काल्लूके मनमें विचार उठा।

काल्लूके मनमें नाना विकल्प उठते। किन्तु वह किसी निर्णय पर न पहुँच पाता था। उसे लेखाको पत्र लिखना पड़ेगा। किन्तु पत्र पर जेल-खानेकी मुहर लगी होगी। तब तो उसे यह भी बतलाना पड़ेगा कि मेरे साथ क्या घटना घटी। किन्तु उससे तो लेखाके हृदयको बड़ी चोट पहुँचेगी। वह उसे कैसे बतलावे कि उसने चोरी की?

किन्तु उसने यदि कुछ भी नहीं लिखा, तो भी तो वह चिन्तासे बहुत दुखी होगी।

किसी भी दशामें लेखाको दुख ही भुगतना पड़ेगा। तो फिर कैदकी

अवधि पूरी होने तक चुप ही क्यों न रहा जाय? अभी उसके हृदयमें अपने पिताके प्रति जो आदरकी भावना है, उसे मार डालनेकी जल्दी क्यों की जाय? यदि वह जान गई तो क्या फिर कभी वह बात रहेगी?

क्या वह समझ सकेगी? उसे झरना शहरके चोरोंके लिए भी पीड़ा होती थी। किन्तु उसके बापकी भी उन चोर आदमियोंमें गणना हो?

काल्‍ू कुछ निर्णय नहीं कर पा रहा था। एक बार उसे लगा कि लेखा टूटे हृदयसे चीख रही है, क्योंकि उसे उसका कोई समाचार नहीं मिला। उसने तुरन्त बैठकर एक चिट्ठी लिखी। उसे कुछ सुख मिला। किन्तु थोड़ी ही देर पश्चात् वह पुनः उसी अनिर्णयकी अवस्थामें आ पड़ा। उसने उस पत्रको दो दिन तक अपने पास रखा और फिर फाड़कर फेंक दिया।

दो सप्ताह बीत गये। उसने फिर पत्र लिखा और फिर फाड़कर फेंक दिया।

जैसे-जैसे दिन निकलते गये, उसने अपने मनमें यह सोचकर सन्तोष कर लिया कि वह शीघ्र ही तो जेलखानेके बाहर हो जायगा और तभी लेखाको लिखेगा—"बेटी! अब तुझे बहुत दिन बाट नहीं देखना पड़ेगी। एक माह तीन दिन और। बस फिर तुझे यह जाननेके दुःखसे छुट्टी मिल जायगी कि तेरा बाप चोर है।

कालूके हृदयमें जो चोरोंके प्रति घृणा थी वह अब नहीं रही। उसी जेलमें बहुत कैदी ऐसे थे जो साधारण नागरिक थे और जिनपर किसी बहुत छोटी चोरीका जुर्म लगाया गया था। उनमेंके एक मनुष्यके साथ उसकी घनिष्ठता बढ़ गई। एक शान्त नवयुवक; ऊँचा, किन्तु गठनका दुबला-पतला। उसे बड़े शहरमें भूखे मनुष्यों द्वारा एक अन्नकी दुकान लूट लेनेकी उत्तेजना दिलानेके अपराधमें एक वर्षकी सख्त कैदकी सजा मिली थी। 'बी-१०' तब जेलमें आया था जब कालू अपनी आधी सजा भुगत चुका था। खोलीमें उन दोनोंकी लोहेकी चारपाइयाँ प्रायः आजू-

बाजू थीं।

"उस बड़े शहरमें भी भूखे आदमी?"—कालूने बड़े आश्चर्य से पूछा—"थोड़े-से होंगे।"

—"हजारों, लाखों। प्रत्येक मार्ग उनसे भरा पड़ा है और सैकड़ों हर सप्ताह मरते हैं।"

कालूपर जैसे वज्रपात हुआ हो। क्या यह सच हो सकता है? क्या वह कोरी मृगतृष्णामें पड़ा है? अवश्य ही वह मनुष्य बढ़ा-चढ़ाकर संख्या बता रहा है। नवयुवकोंका तिल्का ताड़ बनाकर बतलानेका अपना एक ढंग है। बी-१० को मनगढ़न्तकी आदत है। कालूने उसे एकबार सोतेमें बड़बड़ाते हुए सुना था—"अरे, वे उस बूढ़ेको मार डालते हैं। वे तुम्हारे भाईको मार रहे हैं, सुनते हो?"वह कुछ और बुदबुदाया और उसकी आवाज प्रायः ठंडी पड़ गई। किन्तु वह फिर अकस्मात् तेजीसे चिल्ला उठा—"तोड़ डालो, नष्ट कर दो।"

—"क्या उस बड़े शहरमें कोई जेलखाना नहीं है? नहीं तो उन्होंने तुम्हें यहाँ क्यों भेजा?"

—कलकत्तेका सेन्ट्रल जेल 'भारत छोड़ो'का नारा लगानेवालोंसे भर रहा है।—बी०-१०ने कहा। ये वे पुरुष हैं जो भारतको अंग्रेजोंसे मुक्त कराना चाहते हैं। इसलिए बी-१० को रखने और खिलाने-पिलानेके लिए यहाँ पचास मील दूर इस मुफस्सिल जेलखानेमें स्थान देना पड़ा था।

तत्पश्चात् कालू अपनी स्मृति ताजी करके बी-१० को आप-बीती सुनाने लगा। उसकी लुहारी। वे पहलेके खुशीके दिन। चन्द्रलेखा—उसका वह नाम कैसे रखा गया। उसके स्कूलके दिन। उसके पदक पानेकी बात। भुखमरीसे उत्पन्न हुई सत्यानाशी। रेलगाड़ीकी पटरीपर खड़े होकर यात्रा। ये सब बातें उसने उसे विस्तारसे सुना दीं।

"तुम उस बड़े शहरको खूब जानते होगे"—कालूने कहा—"तो बताओ मुझे वहाँ काम कहाँ मिलेगा? पैसा अच्छा मिलना चाहिए। इतना तो हो कि मैं जल्दी झरना लौट सकूँ और वहाँसे अपनी

लड़की चन्द्रलेखाको लेकर बड़े शहरमें फिर आ जाऊँ।"

बी-१० ने चुपचाप अपना सिर हिलाया।

"बोलो!"—कालू भयके आवेगसे चिल्लाया।

—"तुम्हें काम नहीं मिलेगा।"

"क्या?"—कालूने उस युवककी बाँह पकड़ ली।

—"बिना सिफारिशके वहाँ तुम्हें कौन काम देगा? तुम्हारे साथ जेलखानेकी तेज गन्ध भी तो रहेगी।"

कालू घूरता रहा। उसे इस समस्याका ध्यान भी न आया था। उसने छुट्टी पानेके दिनके और काम ढूँढ़नेके सिवाय और कुछ सोचा ही न था।

"यह सच नहीं है।"—वह थर्राती आवाजमें चिल्ला उठा।

अपने मनमें तो कालू भी बहुत कुछ जानता था। क्या वह स्वयं किसी ऐसेको अपने धन्धेमें भागीदार बनायेगा, जो जेलखानेमें रहा हो? क्या झरनाका कोई मनुष्य जेलसे छूटे आदमीको नौकरीपर रखेगा? क्या वह ऐसे आदमीको अपनी लड़कीका कन्यादान करेगा जिसका बाप कैदी रह चुका हो?

तब फिर क्या? उसे अपनी निजी लुहारी दुकान करना चाहिए, जिससे कोई कुछ न पूछे। किन्तु लागतका पैसा कहाँसे आयेगा?

वह अपना सिर खुजलाने लगा। पूरे तीन माह व्यर्थ चले गये, और उसकी पहलेसे बुरी दशा हो गई। जीविकाके लिए वह करे क्या?

वह उस दिनसे भय खाने लगा, जब उसे जेलखानेके लोहेके फाटकसे बाहर कर दिया जायगा। स्वतन्त्र! स्वतन्त्र? सोचते-सोचते उसके कपालकी नसें फूलकर बाहर आने लगीं। उसका क्रोध बढ़ा। उसने ऐसा क्या पाप किया जो उसकी यह दशा हुई? क्या वह एक मामूली चोरसे कुछ भी बहतर नहीं है? क्या यह न्याय है? नीतिका खेल? वर्षकी कड़ी मेहनतकी कमाईमेंसे वह जो कुछ बचा सका था, उसका मूल्य एक सालमें, पंचमांश रह गया। बाकीका हिस्सा कौन ले गया?

वह कहीं तो गया होगा—किसी थैलीमें, किसी तिजोरीमें, किसी लोभी पेटमें। क्या इसके लिए कोई जिम्मेवार नहीं है? इस लूटके लिए कोई दण्ड पानेवाला नहीं है!

रातको काल्‌ अपनी सकरी चारपाईपर पैर बाहर लटकाये लेटा-लेटा सोचता रहा। उसे नींद न आ सकी। लेखा भी उसकी कोई सहायता न कर सकी। काल्‌ स्वयं भूख सहनेके लिए तैयार था। किन्तु उसकी लड़कीका क्या होगा?

वी–१० ने एक दिन काल्‌की चिन्तन-धाराको रोकते हुए कहा—"मैं तुम्हें देखता रहता हूँ।"

काल्‌ कुछ न बोला।

—"हमारे लिए एक मार्ग है—मेरे लिए, तुम्हारे लिए, हम सबके लिए।"

"क्या मार्ग?"—काल्‌ने तुरन्त उत्सुकतासे अपना मुँह उसकी ओर मोड़ लिया।

—"हम तो धरतीकी धूल हैं। बड़े आदमी हमसे घृणा करते हैं, क्योंकि वे हमसे डरते हैं। वे हमें ऐसी जगह मारते हैं जहाँ चोट बुरी तरह लगती है—पेटके गड्ढेमें। हमें भी जवाबी चोट करना चाहिए।"

काल्‌ने धीरे-धीरे सिर हिलाया।

वी–१० ने काल्‌को ओर घूरकर देखा और उसकी आँखोंमें नरमी आ गई। उसे इस शोकाकुल मनुष्यके लिए खेद होने लगा जो अपनी लड़कीके लिए इतना पागल हो रहा था और लगातार उसीके विषयमें बोलता रहता था।

"मुझे यह तो बताओ"—काल्‌ने पूछा—"भले प्रकार रहनेका तुम्हें कोई अवसर दिखाई नहीं देता? तुम्हें किसीने कोई काम नहीं दिया?"

वी–१० कुछ देर चुप रहा। उसके मुखपर तनाव था।

—"एक बार एक आदमीने मुझे एक काम बतलाया था।"

—"बताओ मुझे, मित्र।"

"तो सुनो।"—वह कुछ ठहरा और लोहेकी चारपाईपर अपनी अंगुलियाँ बजाने लगा। यह उसकी एक आदत थी—"सुनो। मैं एक गलीमें रहनेवाले कुछ गरीब लोगोंको जानता था। मैं उस गलीमें बहुधा जाया करता था। एक बार शामको जब मैं उस गलीसे निकल रहा था, तब रास्तेके मोड़पर किसीने मेरे कन्धेपर हाथ रखा। मैंने उसे पहले भी देखा था—दो या तीन बार, जब वह या तो लैम्पके खम्भेसे झुका खड़ा था या पान खा रहा था या बीड़ी पी रहा था। वह मुझे मित्रतासे खींच ले गया और उसने अपनी चाँदीकी डिब्बीमेंसे निकालकर एक मसालेदार पान दिया।"

वह फिर रुका और घूँट लेकर अपने मुँहके कुछ कड़ुए स्वादको निगल गया।

"कहिए"—काल्ने प्रेरणा की।

"...तुम भूखोंकी रक्षा करना चाहते हो?" उस आदमीने पूछा। उसकी आँखें उस गलीकी ओर घूम गईं। मैं उसकी ओर घूरता रहा और रजनी—यही उसका नाम था—कहता गया! मेरी बातका कोई और अर्थ न लगाना, मित्र। मैं और तुम इस दुष्कालकी कहानीके एक अक्षरको भी नहीं बदल सकते। किन्तु कुछका जीवन बचाया जा सकता है—कुछ मूल्य देकर। उस दलमें पाँच जवान स्त्रियाँ हैं—दो खूबसूरत; बाकी चलतू। उन दोमेंसे एकका विवाह हो चुका है। उसकी माँगमें सिन्दूर भरा है। एक रास्ता है जिससे ये औरतें अपनी भी रक्षा कर सकतीं हैं और अपने सगे-साथियोंकी भी। और तुमको भी इनाम मिल सकता है। यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें भी नौकरी दे सकता हूँ और अच्छा वेतन। क्या कहते हो, मित्र?"

"भगवान्!"—काल्ू चिल्ला उठा—"तुम्हारा मतलब..."

"...रजनी अपनी गोल-गोल आँखोंसे मेरी ओर देखने लगा। मित्र! वह बोला—यद्यपि तुम युवक हो, पर तुम्हारे मुखपर चतुराईकी छाया है, इसलिए सुनो! सच्ची सेवामें अपना त्याग करनेसे बढ़कर और कौन-सा

पुण्य है ? क्या हमारी सारी परम्परा आत्म-त्यागकी श्रेष्ठ महिमा और उत्तमताके गीत नहीं गाती ? अपने प्यारे कुटुम्बियोंको भयंकर विनाशसे बचाना—इससे बढ़कर क्या सेवा हो सकती है ? ये जवान स्त्रियाँ महत्त्व प्राप्त कर सकती हैं। वहाँके नर-नारी तुम्हारे प्रति श्रद्धा रखते हैं। मैंने देखा है, वे किस प्रकार तुम्हारे एक-एक शब्दका सहारा लेकर चलते हैं। इसीसे कहता हूँ। केवल, तुम मेरी बातका कुछ और अर्थ मत लगाना।"

वी—१० ने अपना मुँह फेर लिया। उसकी अँगुलियाँ फिर चारपाई बजा रहीं थीं।

"भगवान् !"—काल्ू चिल्ला उठा—"बड़ा शहर तो धरतीपरका नरक बन गया है। रजनी ? क्या उसने यह नाम कभी पहले नहीं सुना ? हाँ, झरनामें उस चूड़ियोंके व्यापारीने यह नाम बतलाया था। जाकर रजनीसे मिलना। वह तुम्हें काम देगा और अच्छा वेतन। क्या यह वही रजनी हो सकता है ? और क्या उस व्यापारीका अर्थ ऐसे ही कामसे था ?"

कालूने आँखें फाड़कर देखा और अपनी बड़ी-बड़ी मुट्ठियाँ बाँधी।

"भगवान् !"—उसने फिर पुकारा।

"रजनी एक वेश्या-घरके लिये काम करता है।" वी—१० ने कहा और उसकी आँखें तेजीसे पी—१४ पर मुड़ीं। "समझे तुम ? यह उस घरका मालिक नहीं है। ऊपरके लोग तो छिपे रहते हैं। हो सकता है कि वे बड़े सम्मान्य वकील हों या साहूकार, समाजके स्तम्भ। जो हो, किन्तु रजनीने मुझे बतलाया कि उन वेश्या-घरोंमें आज ऐसी कमाई हो रही है, जैसी पहले कभी नहीं हुई। नये घर भी खुल गये हैं। जवान स्त्रियाँ या तो उनके माँ-बापसे खरीद ली गई हैं, या चुरा ली गई हैं, या लोभसे फुसलाकर भगा लाई गई हैं।"

—"तुमने फिर क्या किया ?"

—"मेरे मनमें एक ऐसे प्रश्नकी पीड़ा हुई जिसका उत्तर नहीं। क्या स्त्रीका स्वयंको बेच डालनेकी अपेक्षा मर जाना भला है ? उसे क्यों मरना चाहिए ? शरीर मात्रकी ही तो बात है शरीर—जिसका कोई मूल्य

प्रतीत नहीं होता—शरीर, जो यदि बेचा न जाय तो बकरेके एक सेर मांसके बराबर कीमतका भी नहीं है। वह अपनी इज्जतके लिए क्यों मरे ? इज्जत एक कोरी कल्पना है !"

"कोरी कल्पना ?"—काल्लूने दोहराया। उसकी आँखें कुछ सिकुड़ रही थीं।

—"क्या इस देशमें कोई इज्जत बाकी बची है ?"

काल्लू इसका कोई उत्तर न दे सका। उसे केवल आश्चर्य हुआ। बी–१० को हो क्या गया है जो वह अपनी इस छोटी-सी आयुमें इतना कटु हो गया है ? और बी–१० कहता गया—"स्त्रियोंको ही क्यों इज्जतकी इस सड़ती हुई लाशका बोझा अपने कन्धोंपर ढोते रहना चाहिए ? स्त्रियाँ, जिन्हें समाजके अत्याचारका इतना दुख भोगना पड़ता है !"

काल्लूने उदासीसे अपना सिर हिलाया और उसका हृदय बी–१० के प्रति गरम होता गया—"तुम्हें क्या हो गया है मेरे मित्र ?"

"मेरे विचार उलझे हुए थे, मेरा कोई ऐसा मित्र भी नहीं था जो मुझे सच्ची वस्तुस्थिति समझा सकता। किन्तु मेरा क्लेश एक-दो दिनमें ही दूर हो गया। मैंने सेन्ट्रल एवेन्यूमें अन्नकी दूकानके सामने रास्तेपर खड़े हुए एक बूढ़े गरीबको देखा। वह अपनी आँखोंको पूड़ी और तरकारियोंके सुन्दर दृश्यसे तृप्त कर रहा था और उनकी सुगन्धसे अपने नथुओंको भर रहा था। अकस्मात् एक पुलिस मैनका डण्डा उसकी पीठपर जोरसे पड़ा। 'चलो यहाँसे' उस सिपाहीने हुकुम दिया। बूढ़े आदमीके घुटने झुक पड़े और उसे वहीं रास्तेमें बैठ जाना पड़ा। 'सुअर कहींका ! हुक्म नहीं मानता ?' अबकी बारका डण्डा उस भूखे मनुष्यके सिरपर बजा। वह गिर पड़ा और वहीं धूलमें लम्बा चित होकर पड़ रहा। जब मैंने उसे गिरते देखा, तब मैं पासकी उसी गलीमें जल्दीसे फिर घुस पड़ा। मैंने उन लोगोंको पुकारा जो वहाँ आस-पास बैठे हुए थे—'वे उस बूढ़े आदमीको मारे डालते हैं। वे तुम्हारे भाईको मार रहे हैं।' पहले उन्होंने मेरी बातको नहीं समझा—'वे हमें क्यों मारेंगे ? हमें केवल थोड़े-से

दिन ही तो और जीना है।' 'वे उसे पीट रहे हैं,'—मैं चीत्कार कर उठा। मेरा सिर आगका गोला हो रहा था। 'वह धूलमें पड़ा है। वे उसे मारे डालते हैं, क्योंकि उसने खानेकी दुकानमें खानेकी चीजेंको देखनेका साहस किया। उसके देखने मात्रसे ही धनी लोगोंका खाना विषैला हो जाता है!' जब मैंने यह कहा, तब वहाँ कुछ हल्ला मचा। 'एक कुत्ता भले ही खाना देख ले और दूरसे सूँघता भी रहे, किन्तु तुम ऐसा नहीं कर सकते!' —मैं चिल्लाया। 'तुम्हारी दृष्टिसे ही खाना खराब हो जाता है।' कोलाहल कुछ और बढ़ा—'अरे वे तुम्हारे भाईको मारे डालते हैं, कुछ सुनते हो?' —इन शब्दोंने चिनगारीका काम किया। एक क्षणमें बीसों आदमियोंके मरते-जीते शरीर पागल होकर उस गलीमेंसे दौड़ पड़े। जो आदमी चल भी नहीं सकते थे वे भी चिल्लाकर दौड़ने लगे। उनकी आँखें लाल और भयंकर हो रहीं थीं।'

बी–१० अपने सामने नजर बाँधकर देखने लगा। वह उस क्षणके आवेशको अपनेमें पुनः अनुभव कर रहा था।

"और उन्होंने तुम्हें पकड़ लिया? उन लाल पगड़ीवाले हराम-जादोंने?"

"हाँ उन्होंने मुझे पकड़ लिया। परन्तु उस भूखोंकी भीड़में से बहुत-से उस विपत्ति उत्पन्न करने वाले निर्दोष बूढ़ेके साथ-साथ भाग निकले। हाँ! वे एक मोटर ट्रकमें चढ़कर अपनी चितापर पहुँच गये।"

कालू बी—१० की ओर घूर कर देखता रहा। उसे उस नवयुवकके मुखमें गम्भीर उदासी दिखाई पड़ी। वह आकस्मिक दृश्य था जो केवल क्षण मात्र ही टिक सका। बी–१० अपने अन्तरात्माको छिपा कर रखना अच्छी तरह जानता था।

—"तुम इतने छोटे हो, फिर भी तुमने जीवनकी इतनी झाँकियाँ देख लीं, और तुम जानने लगे कि वस्तुस्थिति कैसी है।"—कालूने कहा।

"छोटा? अरे मैं अपनी उमरसे बीस वर्ष जेठा हो गया हूँ।"—बी–१० ने अपनी आकस्मिक उज्ज्वल हँसीके साथ कहा।

उसी रात कुछ देर पश्चात् बी–१० अपनी लोहेकी चारपाईपर बैठ गया और पी–१४ से कहने लगा—"मैं तुम्हारे बारेमें सोचता रहा हूँ।"

काल्टू ठहरा रहा। यह अचम्भा ही था कि उसे इस विलक्षण बातें करने वाले भावुक नवयुवकमें दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

—"शायद मैं तुम्हें बता सकूँ कि उस बड़े शहरमें तुम किस प्रकार अपनी जीविका कमा सकते हो।"

—"बताओ, भाई।"

—"क्या तुम गेरुआ वस्त्रकी लँगोटी पहन सकते हो, शरीरमें भस्म लगा सकते हो और मस्तकपर लाल चन्दनका त्रिपुण्ड लगा सकते हो? फिर, रास्ते चलते तुम्हारे भीख माँगनेके खप्परको भरते देर नहीं लगेगी। यदि तुम भाग्यवान हुए, तो यह भी हो सकता है कि कोई धनी, जिसके पास व्यर्थ खर्चके लिए काफी पैसा हो, तुम्हें बड़ा महिमाशाली योगी मान ले।"

—"बी–१०, तुम मेरी हँसी क्यों उड़ा रहे हो।"

बी–१० ने इस अपराधको स्वीकार नहीं किया—"मैं बहुत सोच-समझकर कह रहा हूँ। तुम्हारे शरीरकी गठन एक साधुका पार्ट खेलनेके लिए बहुत उपयुक्त है। मैं तुम्हें कुछ रहस्यमयी वाणी भी सिखा सकता हूँ। तुम्हें अपनी स्वतन्त्र लुहारकी दूकान खोलने योग्य पैसा इकट्ठा करनेमें अधिक समय नहीं लगेगा।"

काल्टू उदासीसे मौन धारण किये बैठा रहा।

बी–१० ने कुछ देर सोचा। फिर बोला—"मुझे दूसरा मार्ग भी सूझा है और सम्भव है वह पहलेसे अच्छा हो। हाँ, वह बन जाय तब है। यह भी एक चाल है जिसके द्वारा अल्प श्रद्धा और खूब पैसा वाले लोगोंको दुधार गाय बनाया जा सकता है। श्रद्धाके द्वारा पैसा निचोड़ा जा सकता है।"

काल्टूको दुख होने लगा। वह कुछ निश्चित धारणाएँ रखने वाला मनुष्य था। उसकी जड़ें मन और विश्वासकी युगों पुरानी रूढ़ियोंकी

भूमिमें गहरी जमीं हुई थीं।

"आत्माके लिए भोजन भी उसी प्रकार उत्पन्न किया और बेचा जाता है, जिस प्रकार पेटका भोजन। और यद्यपि इन दोनों व्यापारोंकी रीतियाँ भिन्न हैं, तथापि दोनोंका मूल्य नगद पैसेसे चुकाया जाता है। मन्दिर भी एक दूकान है और पुजारी वहाँका दूकानदार। लोग इस आध्यात्मिक मनुष्यके भरण-पोषणके लिए अच्छा मूल्य चुकानेको तैयार हैं।"

काल्रूने चिन्तामग्न होते हुए अपना सिर हिलाया और वह तत्त्व-ज्ञानकी बात करने लगा।

"मिट्टीका शरीर मिट्टी और हवामें मिल जाता है। किन्तु अन्तरात्मा अग्नि व प्रकाशके समान अमर है।"

"इस आध्यात्मिक भोजनको तैयार करनेके लिए केवल एक चालकी आवश्यकता है"—बी–१० निरपेक्ष भावसे कहता गया—"इसके तरीके तो एक-सौ-एक हैं किन्तु यह अन्न तैयार करना मुख्य समस्या नहीं है। इस चालको बेचनेमें होशियारी चाहिए। क्या आध्यात्मके भूखे तुम्हारे हाथसे खानेके लिए तैयार भी होंगे?"

काल्रू भौंचक्का-सा देखने लगा। यह बात उसकी समझसे बाहर थी।

"केवल ब्राह्मण ही इस आध्यात्मिक भोजनको परोस सकता है।" —बी–१० अपनी बातपर आया—"ब्राह्मण जन्मसे होता है। वही पुराना रक्त उसकी नसोंमें सृष्टिके आदिसे बहता रहा है, ऐसा माना जाता है। सच है कि नहीं?"

"सच है।"—काल्रूने कभी ब्राह्मणकी उच्चतामें सन्देह नहीं किया था। वह उसे भगवानका प्यारा मानता था।

"इस व्यापारका एकमात्र अधिकार ब्राह्मणको है। उसे उससे लेनेके लिए तुम्हें भी ब्राह्मण बनना पड़ेगा। ब्राह्मणका कौन-सा ऐसा चिह्न है जो उसे अन्य लोगोंसे पृथक् करता है?"—बी–१० ने उत्तर फटकारा।

"केवल एक चिह्न। छातीपर जनेऊका एक डोरा। बचपनमें ही उसे यह जनेऊ एक धार्मिक क्रियाकाण्डके साथ पहना दिया जाता है। उसी समयसे

तो वह द्विज—दूसरी बार उत्पन्न हुआ—कहलाता है। यह बतलानेकी आवश्यकता है क्या ?"

"सभी ब्राह्मण तो पुरोहित-पुजारी नहीं होते"—कालूने उत्तर दिया—"बहुत थोड़े, शायद कहीं ५०० में एक।"

—"किन्तु पुरोहित तो सब ब्राह्मण ही होना चाहिए। असल बात तो यह है। यही कारण है कि तुम्हें अपनेको द्विज बनाना पड़ेगा। वह सफेद नौ सूतोंका भँजा धागा तुम्हारी छातीपर चमकना चाहिए।"

"मैं ?"—कालूकी आवाजमें घोर अविश्वास था—"द्विज ?"

—"तुम। हाँ, तुम !"

—"बस करो; बहुत हुआ।"

—"अरे यह तो आरम्भ मात्र है। पुरोहित भी तो उतना गरीब हो सकता है जितना एक किसान—लगभग। जाति बदलनेका क्लेश उठाकर भी तुम गरीब तो बने नहीं रहना चाहोगे! इसलिए अब मैं असली बातपर आता हूँ। वह जादूकी चाल !"

"सनकी कहींके !" धुँधले बरामदेसे एक गुर्राहटकी आवाज आई। "पागल गधीके जोड़ुए बच्चे! तुम्हें अकेली कोठरीमें जानेकी खुजली उठी है ?"

बी-१० अपनी चारपाईपर लेट गया। "अब कल"—उसने धीरेसे फुसफुसाया—"अभी सो जाओ। कल फिर।"

६

नियत दिन जब कालूके लिए जेलखानेका फाटक खुला, तब पहरेदारने उसे बाहर ढकेलते हुए व्यंग्यकी हँसी हँसकर कहा, 'वापस आनेमें बहुत समय मत लगाना!' कालू लड़खड़ाता हुआ रास्तेपर आया और वहाँ ठहरकर पीछे उस ऊँची धुँधली दीवारकी ओर देखने लगा, जिसके भीतर उसे लगभग तीन माह तक खानेको और रहनेको मिला था। एक तरहसे वे तीन माह निश्चिन्ततासे गुजरे—निश्चित कार्यक्रमके फौलादी पेटमें। वहाँ उसका समय, चाल-ढाल, अपनी निज की नहीं थी। यहाँ तक कि वह सोता भी दूसरोंके आदेशके अनुसार था। केवल उसके भाव और विचार स्वतन्त्र थे, इस छूटनेकी घड़ीकी प्रतीक्षामें स्वतंत्र; स्वप्न देखनेमें स्वतंत्र।

मुक्ति! यद्यपि अब उसे वह मिल गई थी, तथापि वह भयंकर लगने लगी। उसका हृदय ठण्डा पड़ रहा था।

कंधे पर बन्दूक झुकाए पहरेदारने हाथ हिलाकर उसे वहाँसे चले जानेको कहा। कालूने अपना मुँह मोड़ा और धीरे-धीरे चल दिया। उसके जीवनके नाटकका एक विष्कंभक भाग समाप्त हो गया था। उसकी यात्रा अब फिर प्रारम्भ हो रही थी। किन्तु इस बार उसे बहुत दूर नहीं जाना था। उन्होंने उसके पुराने कपड़े लौटा दिये थे, रेलका टिकट भी दे दिया था, और दो रुपया तथा कुछ ताँबेके पैसे।

रेलवे-स्टेशन तक एक मील चलते-चलते सवेरेके सूर्यमें गर्मी आ गई और हवामें भी गरमीकी बेचैनी आने लगी। कालू आने-जाने वालोंसे अपनेको दूर ही रख रहा था। उसे भय था कि वे कहीं चिल्ला न उठें—'चोर; वह चोर जा रहा है।' रेलवे-स्टेशन पर वह प्लेटफार्मके मुख्य फाटकसे ही निकला, कुछ गर्वके साथ, और उसने अपना टिकट भी

दिखला दिया। उसे बहुत नहीं ठहरना पड़ा। पश्चिमको जाने वाली ट्रेन आध घण्टेमें ही आनेवाली थी।

जब गाड़ी आई तब कालू ऐसे डिब्बेकी खोज करने लगा जिसमें सबसे कम भीड़ हो। अपने मनका डिब्बा ढूँढ़कर वह एक बेंचके सबसे दूर कोनेमें जा बैठा। उसने खिड़कीमेंसे अपना सिर निकाल लिया। जेलखानेकी दुर्गन्धका उसपर भारी बोझ था। वह उस दुर्गन्ध-को अपने मुँहसे, नकुओंसे और पसीने भरे देहके सब अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे निकाल फेकना चाहता था। क्या यह जो दुर्गन्ध उसके शरीरकी बन गई थी, उससे कभी मुक्ति मिल सकेगी? उस दुर्गन्धका बस एक मात्र झोंका, और उस डिब्बेके सब लोग जान जायँगे। फिर कोई न कोई जरूर चिल्ला उठेगा—'चोर! वह चोर बैठा है।'

उसे अपना मुख मोड़नेका साहस न हुआ। अतएव उसने अपनी आँखोंको बंगालके चलते हुए मीलोंकी यात्रा करने दी। खेतोंमें धान पीली पड़ रही थी। फसल खूब आयेगी। किन्तु वह होगी किसकी? झरनाके आस-पासके प्रदेशमें किसानोंने धानकी फसल बढ़नेसे महिनों पहिले ही उसे गिरवी रख दिया था, और उस पैसेसे उन्होंने व्यापारियोंसे पुरानी दरके पँचगुने मूल्य पर चावल खरीद लिया था। पैसा खर्च हो गया, चावल खा लिए और अब जब उनके खेतोंमें फसल आई, तब भूखे किसान पेट पर पट्टी बाँधे बैठे थे। उनके खेतोंकी फसल उनकी नहीं थी। वे उसे छू भी नहीं सकते थे। उसे उनकी फसल कहना एक हँसी-मजाक था। तब क्या समस्त बंगालकी यही दशा है?

कालूको अपनी वह पटरीपरकी यात्रा याद आ गई। उसे ऐसा लगा जैसे मानो वह कल ही हुई हो, यद्यपि वह थी बहुत पुरानी बात। वह कौन-सी आशा थी जिसके बल पर वह पेटमें भूख लिए उस रेलगाड़ी-की पटरी पर चिपका रहा? वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने उसके अङ्गोंके दुर्बल होते हुए भी हृदयको बल दिया?

सूर्यके प्रकाशमें वह मीलों आगे निकल गया। अकस्मात् उसे लोगों-

का एक दल दिखाई दिया। वे भी गरीब भूखे यात्री थे, जो उस मार्गसे बड़े शहरको ओर जा रहे थे। उनमें पुरुष भी थे, स्त्रियाँ भी और बच्चे भी। वे शायद सौ मील पैदल चल चुके हों ? शायद वे अपनेमेंसे आधों-को रास्तेकी बालू पर ही छोड़ आये हों ?

जेलकी दीवारोंके भीतर एक बन्द और अपने आपमें पूर्ण संसारमें रहते हुए वह प्रायः इस सत्यको भूल बैठा था। उस डिब्बेके दूसरे यात्री भी खिड़कीके बाहर देख रहे थे।

"वह हमारा सोनार-बांगला, बंगालकी सुनहली भूमि है, जैसा कि पुराने लोकगीतोंमें गाया गया है ?"—एक कठोर और कटु आवाज आई। उसपर टीका-टिप्पणीका कोलाहल होने लगा।

कालूको विचित्र-सा लगा। उसके मनमें जो भयकी लहर थी, उसके स्थानपर एक नई गर्मी, जीवनदायिनी शक्ति आ रही थी। अब वह जेलकी एक संख्या मात्र नहीं रह गया था। उसके कन्धेपरसे भयका धुरा उतर गया था। वह अन्ततः पुनः स्वतन्त्र था। गरीबोंका वह झुण्ड दुःखके रास्तेपर चलते-चलते छोटा हो गया और फिर अदृश्य। कालूकी रेलगाड़ी उनके पाससे दौड़कर निकल गई। वह आशाके बड़े सुनहले शहरकी ओर जा रही थी।

लेखा भूखी है। कालूकी अन्तरात्मा बोल रही थी। लेखाकी बात उसे सुनाई दे रही थी। लेखा भूखी है ! लेखाने रोटी नहीं खाई।

अकस्मात् उसने अपना सिर खिड़कीके भीतर खींच लिया। वह सीधा बैठ गया और सामनेकी ओर देखने लगा। उसकी आँखोंमें एक तीव्रता थी। डब्बेमें बैठे हुए दूसरे लोग भी अब उसका मुख देख सकते थे। देखने दो ! चोर कहकर पुकारनेका साहस करने दो उन्हें।

वह चोर नहीं था। उसकी दासताका भी अब अन्त हो चुका था। वह संसारके सम्मुख निर्भय होकर अपनी आँखें उठा सकता था। वह मुट्ठी बाँधकर लड़ सकता था।

किन्तु उसे काम अवश्य मिलना चाहिए। काम अवश्य मिलेगा।

उसे अपनी भूखकी परवाह नहीं थी, किन्तु लेखाकी थी। लेखाने भोजन नहीं किया।

यही चिन्ता उसके मनमें घण्टों घूमती रही। अब वह उस महानगरीके मध्य भागकी सड़कपर बाजूके फुटपाथपर चल रहा था।

वहाँके आवागमन सम्बन्धी कोलाहलसे वह घबरा रहा था। किन्तु उसकी आँखें और कान फिर भी सतर्क थे। पहले वह गोला-बारूदके कारखानोंकी ओर गया। किन्तु वहाँ पहुँचनेके पूर्व ही उसने जान लिया कि वहाँ जाना व्यर्थ होगा, क्योंकि वहाँसे लोगोंकी कतारकी कतार लौट रही थी और वे क्रोध भरी बातें करते जाते थे।

तो भी काल्लू आगे बढ़ता ही गया। सम्भव है उन लोगोंके हाथोंमें वह कला न हो जो उसने अपने वज्र और गलफुल्लेके साथ सीखी थी। शायद वे सब किसान रहे होंगे जिन्हें धातु और छड़ोंको तोड़ना और मोड़ना नहीं आता होगा। तथापि अपने हृदयमें वह सच्ची बात जानता था। भरती कार्यालयके बन्द द्वार एवं 'अब और आदमियोंकी आवश्यकता नहीं' के सूचना-फलकको देखनेसे पहले ही जानता था।

क्या द्वारपर खटखटाया जाय? क्या कुछ प्रयत्न किया जाय? नहीं! यहाँ बादमें देखा जायगा, जबकि उसकी जेलखानेकी दुर्गन्ध पूरी तरहसे धुल जायगी, जब उसके पास कुछ रुपये-पैसे भी हो जायँगे और जब वह खा-पीकर कुछ अच्छा-भला दीखने लगेगा। तभी तो वह वहाँके अधिकारियोंसे बातें कर सकेगा और उन्हें दिखला सकेगा कि वह क्या कर सकता है।

वह जहाँसे आया था उसी ओरको लौट पड़ा। वह कहीं भी जाकर कुछ ताँबेके टुकड़े पैदा करनेके लिए बड़ा ही आतुर था।

वह रिक्शा भी खींच सकता है। यहींसे प्रारम्भ करना क्या बुरा है? एक रिक्शावाला सड़कके कोनेपर कटघरेके पास रिक्शा खड़ा किये था। इसीसे क्यों न पूछा जाय? काल्लूको उसके पास जानेमें कुछ झिझक हुई। रिक्शा-कुलीने भावपूर्ण मुखसे उसकी ओर देखा और बिना पूछे ही काल्लूके

प्रश्नका उत्तर दे दिया—"तुम्हें कुछ जमा करना पड़ेगा। कोई रिक्शा-मालिक विना पाँच रुपया पेशगी जमा कराये अपनी गाड़ी तुम्हें न देगा।"

कालू आगे बढ़ा। वह सोचमें पड़ा था, कैसे प्रारम्भ किया जाय?

वह महानगर बेरोजगार आदमियोंसे भरा पड़ा था। हजारों भूखे मनुष्योंके झुण्डके झुण्ड जीविकाकी खोजमें वहाँ आ घुसे थे। कौन उनके हाथोंमें काम देगा?

उस दिन दोपहरके पश्चात् उसका भाग्य कुछ जागा। नगरपालिकाकी एक गाड़ी लाशें उठा रही थी—उन भूखसे मरे मनुष्योंकी लाशें जिन्हें कोई काम-धन्धा नहीं मिल सका था। लाशें उठानेके लिए उन्हें एक और मनुष्यकी आवश्यकता थी। कालू वहाँ उपस्थित था। वह स्ट्रेचरपर लाशें ढोकर ट्रकमें लादने और श्मशानमें उन्हें उतारनेके कामपर लग गया।

उस रात कालू नाना आकारोंके घरोंके बीच एक अँधेरी, गीली और पथरीली गलीपर ही सो गया। आँख बन्द होते ही उसे वे सिकुड़ी चमड़ीकी थैलीमें पिचके गालों और नटेरती आँखोंवाले नर-कंकाल दिखने लगे। उसने इस दुर्दृश्यसे अपने चित्तको हटानेका प्रयत्न किया। उसका सारा शरीर ठण्डे पसीनेसे गीला हो गया। इससे तो वह जेलमें ही भला था। वहाँ कमसे कम उसे मुर्दे तो नहीं ढोना पड़ते थे।

बंगाल राइस लिमिटेडकी नं० ५ गोदाममें चावलके बोरे भरे हुए थे। उसकी विशाल दीवालके पास और भी बहुत-से नर-कंकाल पड़े हुए थे, जिनमें अभी भी कुछ जीवनकी साँसें चल रही थीं। तब कल भी तो काम रहेगा? नगरपालिकाके ट्रकपर शायद एक आदमीकी फिर भी कमी हो? कालूने बुरे स्वादसे अपना मुँह सिकोड़ा। उसी समय उसके कानमें आवाज आई—

एमन चन्द्र आलो, मरि जदि सेऊ भालो, से मरन स्वर्गसमान।[१]

यह मनमोहक रेडियोका गाना समीपके एक घरके ऊपरकी मंजिलकी

१. द्विजेन्द्रलाल रायका बंगला गीत। चाँदकी कैसी चाँदनी छिटक रही है। यदि इस समय मर जायँ तो भी अच्छा। वह मरना स्वर्गतुल्य है।

खिड़कीसे आ रहा था।

इन शब्दोंके उपहाससे उसने अपना मुँह बनाया। सचमुचकी चाँदनी! वहाँ तो घोर अन्धकार था। और यदि यही स्वर्गके समान था तो उसे उसकी जरा भी चाह न थी।

दिनकी किरणें फूटते ही, जब सड़कोंपर आवागमनका जोर नहीं बढ़ा था, तभी एक अँग्रेजी पोशाकवाले मनुष्यने अपनी मोटरकार सड़कके मोड़के कटघरेके समीप खड़ी की। गलीमें पटे पत्थरोंपर चलनेसे पैरोंकी गम्भीर ध्वनि आई। वह वहाँ पड़े हुए अभागे मनुष्योंका अपने मनमें लेखा-जोखा लगा रहा था। कभी-कभी वह किसी पुरुष या स्त्रीको झुककर उसे ध्यानसे देख लेता था। काल्लूने कुछ दूर रहते हुए उसका पीछा किया। उसके मनमें भारी तरंग उठ रही थी। वह शायद सेवा-दलका मनुष्य हो! उससे सहायता मिलेगी।

"तुम्हें रुपया चाहिए, मित्र?"—उस मनुष्यने काल्लूकी ओर मुड़कर कहा।

आश्चर्य! काल्लूने अपनी साँस रोकी। पासमें पड़े हुए लाशोंके ढेरकी ओर एक बार फिर देखकर उसने कहा—"देखो इनमेंसे कौन-कौन मर चुके हैं। उनकी लाशोंको अभी आनेवाली बैलगाड़ीपर रखो। गाड़ीवाला भी तुम्हारी सहायता करेगा। फिर उसके साथ ऐसे ही अन्य सुन्दर स्थलोंपर जाना और सफाई करना।"

काल्लूका हृदय चूर-चूर हो गया। यह भी कोई नगरपालिकाका कर्मचारी होगा। अपराह्नमें काम पूरा हो जाने पर उसने गाड़ीवालेसे पूछा—'क्या इस कामके लिए काफी मोटर गाड़ियाँ नहीं हैं, भाई?'

गाड़ीवालेने खेदसे अपना सिर हिलाया—'यह तो खानगी काम है। ये मुर्दे डाक्टरके घर जाते हैं। हाँ, भाई! वह आदमी डाक्टर है।'

काल्लू अचम्भेमें पड़ गया, "डाक्टरोंको तो जीते हुओंकी परवाह होती है। उन्हें उनसे क्या काम जो अच्छे नहीं किए जा सकते?"

"तो तुम सम्राट्की अतिथिशालासे निकल आए ?" रजनीने पूछा। उसने इसके उत्तरकी प्रतीक्षा नहीं की।

इससे तो कालूकी अयोग्यता निश्चित हो गई। वे गोलियों जैसी आँखें फिर उसके शरीरका मानो लेखा-जोखा लगाने लगीं। कालू घबड़ा गया। उसे अपने जेलखाने जानेकी बात स्वीकार करनेसे कितनी घृणा थी! किन्तु रजनीको उसके पूर्व कार्यका प्रमाण-पत्र चाहना था।

और वह तीव्र मस्तिष्कवाला युवक कैसा चल रहा है! क्या उन्होंने उसका साहस तोड़ डाला ?

"उसे काम ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है।" कालूने उत्तर दिया "अगले दस माह तक तो नहीं।"

"क्या तुम्हें बाहर आनेका खेद नहीं है ?" रजनीने व्यंगकी हँसी-हँसते हुए कहा। फिर उसके मुखकी मुद्रा गम्भीर हो गई। "ठीक है। यह काम तुम ठीकसे कर सकोगे।" यह कहकर रजनी ठहर गया और फिर बोला—'हाँ मित्र, मैं मनुष्यको उसके मुखसे पहचान लेता हूँ।'

कालू चौंक उठा। 'मैं मनुष्यको उसके मुखसे पहचान लेता हूँ।' उसने पहले भी ये शब्द सुने थे—उस पुलिसमैनसे जिसने उसे केलोंकी चोरीके लिए पकड़ा था। 'चोर' उसके मुखपर लिखा हुआ ही था। अब 'वेश्यागृहका दलाल' भी उसपर लिख जायगा। इस लेखको वह कैसे छिपा सकता है ? वह घूमा और रजनीके कमरेसे बाहर हो गया। सीढ़ियाँ भी उतर आया। उसने रजनीके इन शब्दोंपर कोई ध्यान नहीं दिया "हा हा ! सुनो··अरे तुम्हें क्या हो गया ?"

"बाबा, भूखसे मर रही हूँ। मुझे एक पैसा दो···" कालू काँप उठा। उसने अपनी अंटीसे एक चवन्नी निकाली और उस स्त्रीको दे दी। यदि वह जान पाती कि एक रुपया और कुछ ताँबेके टुकड़े, बस इतना ही उन दोनोंके बीच अन्तर था!

कालू सड़कके इस ओरसे उस ओर देखने लगा। वहाँसे लाशें हटा ली गई थीं। नगरपालिकाके ट्रक वहाँ आये होंगे, और उसीके समान

किसी दूसरे निराशापूर्ण व्यक्तिने सम्भवतः वह एक रुपया कमा लिया होगा ?

वह बिना कोई दिशा निश्चित किये ही वहाँसे चल पड़ा। वह मीलोंतक चला गया। चौरंगी रोडपर आवागमन बढ़ने लगा था। दुकानोंपर लोहेकी जंजीरोंके द्वार समेट दिये गये थे, और उनके लम्बे-चौड़े काँचके दरवाजे दिखाई दे रहे थे। कर्जन पार्कके फुलवाड़ीसहित हरी दूबके मैदानपर वह डाक्टर लोनी स्मारक खड़ा-खड़ा मेघाच्छन्न आकाशके नीचे साम्राज्यकी पाषाणरूपी सुदृढ़ताकी घोषणा कर रहा था। दक्षिणकी ओर दूर, नदीके तीरके पास फोर्ट विलियम नामक विशाल किला लेटे हुए सिंहके समान दिखाई दे रहा था।

सड़कके कोनेपर कचरेखानेमेंसे एक छोटे लड़केको एक सूखी रोटीका टुकड़ा मिल गया था। वह उसे धीरे-धीरे चाट रहा था, और थोड़ा-थोड़ा काटकर खा रहा था, जिससे वह कुछ देरतक चले। कौर लेनेके बीचमें उसका मुख खुला हुआ लटक रहा था। एक नीली बच्चा-गाड़ी धीरे-धीरे गिट्टीसे चिकनी पटी हुई सड़कपर ढलकती हुई आई। एक साँवले रंगकी एंग्लो-इण्डियन लड़की उसे ढकेल रही थी। उसमें एक गोरी और फूले हुए गालोंवाली सुन्दर लड़की लिननकी फ्राक पहिने तकियोंपर लेटी हुई थी और एक नलीके द्वारा बुलबुले उड़ा रही थी। बड़े-बड़े रंगीन बुलबुले उड़कर हवामें लुप्त होते जाते थे। वह छोटा लड़का अपनी सूखी रोटीके टुकड़ेको भूलकर, उस कचरेखानेसे टिका हुआ उन बुलबुलोंकी ओर अचम्भेसे एकटक देखने लगा।

काल्लू घण्टोंतक काम ढूँढ़नेके लिए भटकता रहा। कहीं काम नहीं मिला। दोपहरके पश्चात् वह एक प्रासाद जैसे सिनेमाघरके पास जा खड़ा हुआ। वहाँ लोगोंकी लम्बी कतार टिकटघरकी खिड़कीकी ओर लगी हुई थी। वहाँकी चकचकाहटसे चकाचौंध होकर काल्लू मोटर-गाड़ियोंकी अपार कतारसे निकलते हुए स्वच्छ युवकों और भड़कीले वस्त्रोंसे सुसज्जित युवतियोंकी ओर देखने लगा।

उसने साँस खींची। वह महानगर धनसे सम्पन्न और सौन्दर्यसे चमक रहा था, तथा जीवन और सुखसे हरा-भरा था। किन्तु साथ-साथ वहीं अकथनीय दुख, उद्वेगकारी कुरूपता और धीमी चालसे रेंगती हुई मृत्युका भयंकर दृश्य भी था।

सहसा उसकी बाँहको किसीने स्पर्श किया और वह चौंककर पीछेको देखने लगा।

"जेब काटनेका अवसर देख रहे हो?" लाल पगड़ीवालेके मुखसे उसकी हँसी उड़ाई जा रही थी।

"क्या सड़ककी बाजूमें खड़े होनेके विरुद्ध भी तुम्हारे पास कोई कानून है?" कालूने तपाकसे उत्तर दिया।

लाल पगड़ीवाला आश्चर्यसे उसकी ओर देखने लगा, फिर अपनी तलवार पर हाथ रखकर बोला—"जेलखानेकी वह सुगन्ध? क्या मैं जानता नहीं हूँ? और वह मुखकी मुद्रा?"

कालूको ज्ञात हुआ कि उसका हृदय बैठा जा रहा है। वह गन्ध! वह मुखकी मुद्रा! उसका आत्म-विश्वास छेदे गये फुग्गेके समान पिचक गया। फिर भी वह साहस करके बोला "क्या हममें और उन बकरोंमें कोई अन्तर नहीं है जो हट, हट, हट करके हँकाले जाते हैं।"

वह लाल पगड़ीवाला उसकी ओर घूर-घूरकर देखने लगा।

"चलो! यदि तुम्हें एक-दो थप्पड़ खानेकी खुजली न उठ रही हो तो···"

कालू मुड़ा और वहाँसे चल दिया।

क्या सच है? वह गन्ध! वह मुखकी मुद्रा! क्या यह सच है?

उस दिन कालूने कुछ नहीं खाया। उसे भूख ही नहीं लगी। उसके गलेमें जैसे कोई बीमारी उठ रही हो। अच्छा है कि पैसा बचाया जाय। शाम होते ही उसने नलसे पानी पिया और वह सड़ककी पटरीपर लेट गया।

दूसरे दिन तड़के ही उसे फिर काम मिल गया—वही नगरपालिकाकी

ट्रक पर लाशें लादना और सड़क सड़क फिरना। एक लड़का पड़ा था। उसका मुँह खुला था और उसके होठोंपर मक्खियाँ भिनक रही थीं। क्या यह वही लड़का था जिसे कालूने कल रंगीन बुलबुलोंकी ओर निहारते देखा था? लड़का मरा-सा ज्ञात होता था, किन्तु उसका चमड़ा गरम था।

कालू ने उस लड़केको अपनी बाहोंमें उठा तो लिया, किन्तु वह हिचक रहा था।

"ले चलो" नगरपालिकाका आदमी भौंक उठा। "जल्दी करो।"

कालू लड़खड़ाता हुआ ट्रककी ओर बढ़ा। यदि वह जिन्दा भी हुआ तो अब केवल कुछ क्षणोंका ही तो प्रश्न है।

कालूको दिनभरकी मजदूरीका आठ आना मिला। उसने अठन्नी और माँगी। तब नगरपालिकाके मनुष्यने कहा—"अब दर घटा दिया गया है, समझे? बीसों हाथ इसी दरपर काम करनेको तैयार हैं। हम अधिक क्यों दें?"

"देखिये साहब......"

नगरपालिकाका मनुष्य क्रुद्ध हो उठा:

"तुम लोगोंका स्वभाव ही बुदबुदाना है। मैं तो देखता हूँ। तुम्हारे जैसे आदमी मुझे नहीं चाहिए। अब फिर कभी तुम मुझे अपना मुँह मत दिखाना।"

कालू चुपकेसे एक गलीमें घुस गया। वह अपने दुखते हुए सिर-को हाथोंसे थामे था।

वह गंध! वह मुख की मुद्रा!

अकस्मात् मोटर गाड़ियोंकी पों-पोंसे मिश्रित मधुर संगीतकी ध्वनिसे कालूकी एकाग्रता भंग हुई। वह खड़ा हो गया और उस गलीके मुख तक चला गया। पहले उसे कुछ पता ही न चल पाया कि जिस सड़कपर वह गली मिली थी वहाँ क्या हो रहा है। फिर उसे एक मृतककी अर्थी दिखाई दी। अर्थी फूलोंसे सजी हुई थी और चार

ब्राह्मण उसे कंधोंपर ले जा रहे थे। उनके पीछे दस बारह आदमी चल रहे थे। जो अपनी बाँहें उठा उठाकर एक अद्भुत आवेगमें एकाग्रचित्तसे गा रहे थे—

राम राम सत्य है।
और सब अनित्य है॥
राम राम सार है।
और भरमजाल है॥

उस श्मशानयात्राके पीछे दो मनुष्य खुली मोटरकारमें खड़े थे। वे बाँसकी टोकरियोंमें हाथ डाल डालकर मुट्ठी-मुट्ठी चावल सड़क-पर बखेरते जाते थे। एकाध बार एक मुट्ठी ताँबेके पैसे भी फेंक देते थे। भिखारियोंकी भीड़ लगी हुई थी जो तीव्रतासे परस्पर धक्का-धूमी करते हुए पैसे बटोर रहे थे। उनमें से कुछ केवल दाने-दाने चावल बीनने-में ही संतुष्ट थे।

कालू उस शहरका नया आगंतुक था। उसने आज देखा कि धनी आदमीकी शवयात्रा कैसी होती है। जब यात्रा आँखोंसे ओझल हो गई तब कालू फिर उस गलीमें घुस गया। राम-नामकी ध्वनिका प्रयोजन था मृतात्माको स्वर्गकी ओर उठाना। बिना इसके और बिना एक भारी कर्मकांडके मृतकका जीव इस संसारसे बँधा रहेगा। सड़क-पर बखेरे हुए वे पैसे और चावल तथा श्मशानकी दाहक्रियासे उस मृत ब्राह्मणके जीवको अच्छा पुण्य मिलेगा और स्वर्गके द्वारपर उसके स्वागतका निश्चय हो जायगा।

जो सड़कपर पड़े-पड़े मर रहे हैं उनकी आत्माओंका क्या होगा? कालूने अपने मनमें प्रश्न किया। क्या उनके भाग्यमें इसी पृथ्वीपर भूत बनकर रहना बदा है? या वे सात नरकोंमें पड़े-पड़े सड़ेंगे? उनके लिए तो कोई राम-नामकी ध्वनि सुनानेवाला नहीं था? उनके ऊपरसे फेंकनेके लिए चावल—देहको पोषण करनेवाले चावल—भी नहीं थे। कोई ब्राह्मण पुरोहित वेदकी अनादि वाणी सुनानेवाला तथा चिताओं-

पर उनके तुचके हुए मुखोंको अग्निकी पवित्र ज्वालाका स्पर्श करानेवाला भी नहीं था।

तब क्या वे लाखों मृतक अदृश्य रूपसे उसी शहरपर अनन्तकाल तक मड़राते रहेंगे? क्या स्वर्ग केवल धनी व्यक्तियोंके लिए ही है?

काल वहीं धूलमें लेट गया और उन्हीं प्रश्नोंको दुहराता रहा जिनका उसे कोई उत्तर नहीं मिल रहा था। वे प्रश्न घुनके कीड़ोंके समान उसके जीवन-भरकी अटल धार्मिक श्रद्धाको छिन्न-भिन्न करने लगे।

× × ×

रजनीने मैत्री-पूर्ण हास्यके साथ कालूका अभिवादन किया। "मैं जानता था कि अपना सब लेखा-जोखा लगा लेनेके पश्चात् तुम वापिस आओगे। और जब वापिस आओगे, तब मेरे कामके अधिक उपयुक्त होगे। मैं थोड़ा बहुत मनुष्यके स्वभावको जानता हूँ।" और रजनीने उसे कामपर रख लिया। उसे पाँच वेश्यागृहोंका काम सौंपा गया। इनमेंसे एककी उस महानगरीमें सबसे अधिक ख्याति थी।

"अपनी खोपड़ीको एक गाँधी टोपीसे ढँक लो" रजनीने बिदा होते समय उसे सलाह दी। "उससे तुम अधिक प्रतिष्ठित दिखाई दोगे।"

सीढ़ियोंसे उतरते हुए कालूने हाथ उठाकर अपने बालोंपर फेरा। किन्तु वहाँ अब कोई बाल रहे ही नहीं थे। चाँदकी तश्तरीके आस-पास जो बाल थे वे घुटवा दिए गये थे। जेलखानेकी यही रीति थी। सड़कपर चलते-चलते कालू एक दूकानके सामने रुका और उसने एक सस्ती सफेद खादीकी टोपी खरीदकर पहन ली। महात्माके नामकी उस टोपीको लगा लेनेसे उसे कुछ अच्छा प्रतीत हुआ। एक दूसरी दुकानपर पहुँचकर उसने मुँह देखनेके लिए एक छोटा-सा आइना मोल ले लिया। उसका मुख बदला-सा दिखाई देने लगा। वह स्वयं भी बदल गया था। वह उस कामकी घृणाको कभी न जीत सका। अपनी पत्नीकी मृत्युके पश्चात् कालूने ब्रह्मचर्य और संयमका जीवन

व्यतीत किया था। पतित स्त्रीको देखनेसे ही उसे ग्लानि होती थी। किन्तु आज वह उनके लिए दलाली करने जा रहा था। वही काल्टू अब उन्हें अपने जीवित शरीरोंको बेचनेमें सहायता पहुँचाने जा रहा था— उन जीवित शरीरोंको जो उसके द्वारा अस्थिपंजर बनानेके लिए डाक्टर-को दिए हुए शवोंसे कम मरे हुए नहीं थे।

जेलमें बी–१० ने इसका बड़े नाटकीय ढँगसे चित्रण किया था। लड़ाईके पश्चात् बंगालपर दो प्रकारकी भारी भुखमरी पड़ी थी। एक उस जनताकी भूख जो अपनी पैतृक भूमिसे विस्थापित होकर भिखमंगे हो गये थे। और दूसरी भूख थी उन धनी और सम्पन्न लोगोंकी जो उत्तरोत्तर अधिकाधिक भोग-विलासके लिए आतुर थे। यही उन दिनों-की प्रचलित व्याधि बन गई थी। उदरकी भूखसे पीड़ित विस्थापित स्त्रियोंको अपनी देहोंके द्वारा उस विलासकी भूखको शान्त करना पड़ता था।

बी–१० ने इसी प्रकार इस कठोर दिवसका वर्णन किया था। वह अकस्मात्का विसंघटन! वह सड़ांद! मानवीय सौष्ठवका वह अन्त! वह कटु दिवस जो इतिहासका एक पृष्ठ बन गया है, एक जन-श्रुति।

"गरीबी बंगालकी सुन्दर भूमिको मारे डालती है। यह सब पैसा कहाँसे आता है?" काल्टूने आश्चर्यसे पूछा था।

बी–१० ने जब समझाया, तब काल्टू समझ गया था कि किस प्रकार उसकी कमाईका चार-पंचमांश भाग लुप्त हो गया। पैसा न आकाशमें उड़ा और न धरती में गड़ा। वह उससे और अगणित दूसरों से छलकर छिन गया था, और शहरी ग्राहोंके हाथोंमें पहुँच गया था।

"एक दिन" बी–१० ने कहा था—"यह भोग-विलासका ज्वर इस महानगरीका नाश कर डालेगा।"

काल्टूको विश्वास नहीं हुआ था। ये तो केवल बातें हैं।

तब बी–१० की आँखें चमक उठी थीं और उसने फिर अपने शब्दों-

को दुहराया था, जैसे वह वेदवाक्य हो। "हम तो पृथ्वीकी धूल मात्र हैं। वे हमें वहाँ मारते हैं जहाँ वह मार बुरी तरह पड़ती है, अर्थात् पेट-पर। हमें भी इस मारका उत्तर देना पड़ेगा।"

ये भी केवल बातें थीं, ऐसा कालूका मत था। बी-१० अपने घावोंको साहस भरे शब्दोंसे ढँकना चाहता था। किन्तु आज उन सब बातोंमें जाना ठीक नहीं है। कोई पुण्य और पापकी क्या चिन्ता करे, जब कि उसकी मुखमुद्रा और देहकी गन्ध ही उसका भेद प्रकट कर रहे हैं।

कामपर जानेसे पहले उसे डाकघर जाना था। वहाँ वह उसी दिनसे रोज हाजिरी बजाता था जब कि उसने अपना पहला पत्र चन्द्रलेखा-को लिखा था। पहले दिन ही वह वहाँ खड़ा-खड़ा डाक खुलने और बँटनेकी प्रतीक्षा करता रहा था।

"एक घण्टे बाद आओ," एक क्लर्कने कहा था।

किन्तु कालूने खिड़कीके पास ही खड़ा रहना ठीक समझा। उन खाकी थैलियोंमेंसे किसी एकमें लेखाके नीली स्याहीके स्वच्छ अक्षरोंवाला पत्र अवश्य होगा। उस चिट्ठीके आगे संसारका अन्य कोई लेने लायक रत्न नहीं था। जल्दी करो, भाई पोस्टमैन! प्रत्येक पत्र पर अपनी मोहरका ठोका जल्दी-जल्दी मारो।

कालूको कुछ नहीं मिला। पत्र सब बँट गये।

"तुमको निश्चय है?". कालूने पूछा। उसकी आवाज भारी और कुछ भर्राई हुई थी। जब वह वहाँसे खाली हाथ लौटा, तब उसकी आँखोंमें आँसू भर आये थे और उसका हृदय शून्य था।

यदि वह बीमार पड़ गई हो तो उसके लिए भी यही अच्छा होगा कि वह उन मनुष्योंके साथ सड़कपर पड़कर अपना प्राणान्त कर डाले।

आज कालू फिर डाकघरकी खिड़कीपर खड़ा था। थैलीके बाद थैली खुलकर चिट्ठियाँ बटवारेसे रखी जा रहीं थीं। किन्तु उनमें उसके लिए अब भी कुछ नहीं था। उसे साँस लेनेमें कष्ट होने लगा। फिर

अकस्मात् पोस्टमैनने उसका नाम लिया और खिड़कीमेंसे उसकी ओर एक लिफाफा फेंक दिया !

उसके आँसुओंको निकलनेके लिए मार्ग मिला। पढ़ते समय आँसू झर-झरकर उसके गालोंपर बह रहे थे। हाय, बेटी ! वह वेदना, जिसके साथ लेखाने दिन प्रति दिन उसकी खबरके लिए प्रतीक्षा की थी। वे सैकड़ों आशंकाएँ जिनने उसके हृदयमें घर कर लिया था और जो उसका गला घोंट रही थीं। यह सब पीड़ा, विशेषतः जब कि उस विषयमें वह स्वयं कुछ भी कर पा नहीं रही थी। जब वह अत्यन्त निराश होकर मर जाना भला समझ रही थी, तब कहीं उसे उसका पत्र मिला था। उसे ऐसी कपकपी-लग रही थी कि वह लिफाफा खोलनेके लिए अपने हाथोंको कुछ देर पश्चात् ही सम्हाल पाई।

कालूने पत्र बार-बार पढ़ा जब तक कि उसके नीली पंक्तियोंवाले दो पृष्ठोंपरका प्रत्येक शब्द उसकी स्मृतिपर भले प्रकार अंकित नहीं हो गया। उसने हथेलीकी पीठसे अपनी आँखें पोंछी और मनमें धीरे-धीरे कहा—क्या सचमुच मैं तुझे इतना प्यारा हूँ, चन्द्रलेखा ? सचमुच ?

६

कालूके पहले पत्र मिलनेके ठीक दो ही दिन पूर्व दुर्दैवसे लेखाने अपना वह स्मारक पदक बेच डाला था। घरमें बेचने लायक और कुछ प्रायः रहा ही नहीं था। नित्य प्रति काममें आने वाली आवश्यक वस्तुएँ भी पूरी-पूरी नहीं बची थीं। बिस्तरोंके गद्दे भी चले गये थे। एक व्यापारी कुछ मुट्ठी चावल दे देकर गद्दे खरीद रहा था। वह उन पर नया भड़कीला कपड़ा चढ़ाकर शहरमें फर्नीचरकी दुकान वालोंको खूब लाभ उठाकर बेच रहा था।

बाबा होते तो वे भी इस सौदेकी अनुमति दे देते, क्योंकि वे जान लेते कि अब कुछ बचाकर रखना संभव नहीं है। किन्तु वह पदक? पदक तो धन-सम्पत्ति नहीं, वह तो तुम्हारे सम्मानकी वस्तु थी: तुम्हारा ही रूपान्तर थी। उसको बेचकर तो तुमने अपना ही एक अंश खो दिया जिसको तुम फिर कभी प्राप्त न कर सकोगी।

बाबाको पदक बेचनेका तो बड़ा दुख होता। लेखाने स्मरण किया कि कभी एक दिन भी तो ऐसा नहीं गया जब बाबाने उस पदक-पर प्यारकी एक दृष्टि न डाल ली हो। और तो क्या, उन कठिनाइयों-के घंटोंमें जब बाबा उस महानगरको जाने लगे थे, तब उन्होंने उसे उसके घेरेसे निकालकर कुछ देर तक बड़े विचारके साथ अपनी हथेली-पर रखा था। "बाबा, इसे अपने साथ क्यों नहीं ले जाते, जिससे आपको कभी अपनी बेटीकी विजय विस्मृत न हो जाय।" लेखाने जैसे यह बात विनोदमें कही हो। किन्तु उसका यह कहना सच्चे हृदय-का था। "मैं इसे ले कैसे जा सकता हूँ? यह केवल एक चाँदीकी वस्तु नहीं है, चन्द्रलेखा: यह तो तेरा पुण्य तावीज़ है।"

"तावीज़?" लेखाने आश्चर्यसे कहा था।

कालू अपनी जीभ थामे चुप रहा था। जो बात समझाई ही नहीं जा सकती, उसे वह कैसे समझावे ? तथापि उसकी ओर देखकर लेखा-ने उसके हृदयके भावको समझ लिया था।

"उसी पदकने तो तुझे तेरी कक्षाके दुखदाई बंधनोंसे मुक्त किया था, और उसीने तुझे यह पद प्रदान किया है, जो तेरी जातिके लिए निषिद्ध था।" यह कालूका अभिप्राय था। लेखा अपने पिताकी आँखों-में नहीं देख सकती थी और न उसके दृष्टिकोणको अपना पाती थी। किन्तु इससे क्या ? यह तो एक भावनाका विषय है, यही मुख्य बात थी। उसी भावनाने उस पदक जैसी छोटी वस्तुको उतना पवित्र बना दिया था और उसे बीजकका रूप दे दिया था।

एक वर्ष हो गया, तभी उसने उस पदकको महानगरके एक व्यापारीके हाथ तीन पाव चावलमें बेच दिया था जिसका मूल्य अठन्नी-से अधिक नहीं था। यदि पदककी चाँदी मात्रका ही विचार किया जाय, तो भी उतने मूल्यपर वह मुफ्त जैसा ही गया। किन्तु वह करती क्या ? उस व्यापारीको छोड़ और किसके पास उसे मोल लेनेके लिए पैसा था ? जब वह व्यापारी, उसकी दो सोने की चूड़ियाँ ले गया था, तबसे अब तक छह माह भी तो पूरे नहीं हुए थे !

लेखाने अपने तईं पूछा था क्या पदकका वह मखमली घरा रख छोड़ना ठीक होगा ? व्यापारीने अपनी चालाक आँखोंको मिचकाकर कुछ और अन्न पदकके लिए चुकाए गये अन्नकी ढेरीपर डाल दिया। "यह तुम्हारे उस घरेके लिए है; अब तो संतुष्ट हो ? तुम सौदा करने-में बड़ी चतुर हो, बाई ! यह चतुराई तुम्हारे बड़े काम आएगी। जल्दी ही तुम्हें इस चतुराईसे काम लेना पड़ेगा।" और व्यापारीकी आँखें उसके मुखपर अड़ गईं थीं, जिससे उसका हृदय काँप उठा था। "कुछ समय और ठहरो; बहुत देरी नहीं है ! जो भी हो तुम भूखों नहीं मरना। अभी भी तो तुम्हारी आँखोंके आसपास काली रेखा पड़ रही है और तुम्हारी जवानीके भरे गाल तुचक रहे हैं। अपने मुखकी सुन्दरता न

खोनेकी सावधानी रखिए।" इस विचारके आते ही व्यापारीने अपना हाथ पुनः अन्न की थैलीमें डाला और खूब भरकर एक मुट्ठी अन्न निकाल कर कहा—"लो इसे।" फिर उसने दूसरी मुट्ठी भरी और कहा "अच्छा इतना और।" फिर तीसरी बार उसका हाथ थैलीमें गया और उसने कहा—"और यह भी। अपना सौन्दर्य बनाए रखो, बाई!" लेखा क्रोधसे जलने लगी थी और वह उस अन्नको लौटा देना चाहती थी जो उसे दयाकी भावनाका ढोंग बनाकर दिया जा रहा था। किन्तु उसका साहस न हुआ और उसके हाथोंको जैसे हिम मार गया।

"मैंने कहा न, कि यदि ईश्वरकी इच्छा है तो हम फिर मिलेंगे।"

लेखा मुँह फेरकर वहाँसे चली गई थी।

उसकी बूढ़ी बुआने पीछे उससे कहा था—"अब इस महानगरके व्यापारीसे कोई संबंध नहीं रखना।"

"सभी व्यापारी बेईमान और नीच होते हैं।" लेखाने उत्तर दिया था—"हम करें, तो करें क्या?"

"उस व्यापारीके हृदयमें पाप है" बुआने रुखाईसे कहा, और कहते कहते ही उसके झुर्रियों पड़े क्षुधापीड़ित मुखपर उसका वह पुराना स्वाभाविक रोष चमक उठा।

"नुसरेके तीस झाड़ू मारती!"

"बूढ़ी बुआ!" लेखा भयसे चिल्ला उठी।

बुआ शान्त हो गई और देवीका नाम 'दुर्गा! दुर्गा! दुर्गा!' जपने लगी। कुछ देर गंभीरतासे मौन रहकर वह फिर बोल उठी—"मैंने कुछ बातें सुनी हैं। वह आदमी बड़ा गंदा और घृणित है। वह..." कहते कहते बूढ़ी बुआ अपनी जीभ दबाकर रुक गई। फिर लेखाकी ओर एक दृष्टि डालकर बोली—"उस साँपसे तुम अपनेको दूर ही रखना। यदि अब फिर कभी वह अपने घरके द्वारपर आवे तो मुझे उसकी चिकनी चमड़ीकी मरम्मत करने देना।" बुआकी क्रोधाग्नि फिर धधक उठी और उसकी आवाज काँपने लगी "झाड़ूके तीस हाथ..."

दूसरे दिन बुआने लेखाको बतलाया कि वह साँप भाग गया है और अब फिर कभी झरनामें दिखाई न देगा। किसीके झाड़ने अपना काम कर दिखाया। इस शहरमें केवल उसीका झाड़ू तो नहीं था।

उनकी भूख निराशाकी चरम सीमापर पहुँच रही थी, तभी अन्ततः बाबाका पत्र आ गया।

जो भय लेखाके मर्मस्थलको छेद रहा था, वह दूर हो गया। काले पर्दे उठते हुए प्रतीत हुए और जीवनमें फिर रंग आया। बाबा सकुशल हैं। वे जीवित हैं। अब वह कोई बुरे स्वप्नसे चौंक कर रोती हुई नहीं उठेगी।

किन्तु भूखका भूत तो अभी था ही। तथापि लेखा अपने पुराने ढंगसे हँस सकती थी। वह सुखी भी रह सकती थी। वह भूखसे भी लड़ सकती थी, क्योंकि उसका बाबा सकुशल है।

बूढ़ी बुआ तुरन्त ही उन दो रुपयोंके नोटोंको लेकर अन्न लेने दुकानपर दौड़ गई। लेकिन लेखा चुपचाप पैर-पर-पैर रखे और हाथमें उस चिट्ठीको थामे हुए जमीनपर बैठी रही। बार-बार वह उन पीले तारके फार्मोंको खोलती और धीरे-धीरे उन शब्दोंको पढ़ती जो कोरी जगह और छापेकी जगह भी आरपार लिखे हुए थे। बाबाने एक शब्द-को गलत लिखा है, किन्तु इससे उसमें प्यारकी गर्मी और अधिक आ गई है। भला यह शब्द इसी सरल रीतिसे क्यों न लिखा जाय?

ये क्षण भविष्यमें सदा स्मरणीय थे। प्रथम भावावेगके समाप्त होने तक उसे उस पत्रकी एक अन्य बातकी चिन्ता नहीं व्याप सकी। बाबा बड़ी कठिनाईके दिनोंमेंसे निकले थे। इसका अर्थ क्या हो सकता है? वे अपने पैर जमानेके संघर्षमें लगे रहे होंगे?

लेखाने अपने पिताको उस महानगरके बीच देखनेका प्रयत्न किया। वह कल्पनाके प्रवाहमें बहने लगी। कलकत्तेकी अपनी यात्रा-की स्मृतिमें उसे याद आई वहाँकी चौड़ी सीमेण्टकी सड़कें जिनके आजू-बाजू ऊँची भव्य इमारतोंकी कतारें चली गई थीं। एक-एक

घर राजमहल-सा दिखाई पड़ता था, लोगोंके झुण्डके झुण्ड उत्सवकी पोशाकोंमें उन सड़कोंपर चल-फिर रहे थे। ऊपरके तारसे बिजली लेकर चलती हुई ट्रामोंकी गड़गड़ाहट हो रही थी। दुकानोंकी पंक्तियों-से वहाँ ऐसा लग रहा था मानो संसारका सबसे बड़ा मेला लगा हो। सैकड़ोंपर सैकड़ों भोजन-शालाओंको देखकर ऐसा लगता था जैसे उस शहरमें कभी कोई अपने घर बनाकर खाता ही न हो। और प्रत्येक भोजन-शालामें आपको अपने मनकी बढ़ियासे बढ़िया रोटी, पराँठे या पूड़ी, तरकारी और तली हुई झुरझुरी प्याज मिल सकती थी।

उस भरे-पूरे शहरमें कोई मनुष्य अकाल-पीड़ित कैसे रह सकता है और क्यों किसीको अपने पैरों खड़े होनेके लिए तीन माहका संघर्ष करना पड़ेगा? जहाँ इतना लेन-देनका व्यापार होता है उस शहरमें एक कुशल हाथोंवाले सच्चे कारीगरको कैसे काम नहीं मिलेगा और क्यों उसे अच्छा वेतन प्राप्त नहीं होगा?

लेखाने अपना सिर हिलाया, बात उसकी समझमें नहीं आ रही थी।

किन्तु वह कठोर तथ्य उसके हृदयमें घर करता जा रहा था। उसके पिताको अवश्य क्लेश भोगना पड़ा है। वे अब भी क्लेशमें हैं। बात क्या हो सकती है? क्या उन्हें पेटभर खानेको अन्न नहीं मिल रहा है? क्या उस महानगरमें भी भुखमरीका प्रवेश हो गया है? या बाबा बीमार पड़ गये और वे कोई काम नहीं कर सके। कहीं सड़कपर किसी मोटर दुर्घटनामें फँसकर वे घायल होकर तो नहीं पड़ रहे?

उन्होंने उसे वे दो रुपयेके नोट क्यों भेजे? अब प्रथम बार उसका ध्यान पैसेकी बातपर गया। वह हैरानीमें पड़ गई। पैसा खतम भी हो गया। अब तक तो बूढ़ी बुआने उसके चावल भी खरीद लिये होंगे। वह अपनी बूढ़ी बुआको रोककर उन दो रुपयोंको वापिस भेज सकती तो कितना अच्छा होता? वह पत्रमें लिखती "बाबा! अपने घर-में अभी भी खानेको है। हम अपने चावलमें इधर-उधरसे कुछ शाक-भाजी बटोरकर जोड़ लेते हैं। जो कुम्हड़े अपनने बाड़ीमें लगाकर

रखा लिये थे वे खूब फल रहे हैं। इसलिए जब तक आपके खूब अच्छे दिन न आ जायँ तब तक यहाँ पैसा भेजनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

लेखा बरामदेकी भीतसे टिकी बड़ी देर तक सोचती बैठी रही। जब बाबा भूख सह रहे हैं, तब वह स्वयं कैसे खा सकेगी? उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और उसने अपनी धुँधली दृष्टिसे अपने बाबाको अपने पुराने स्थानपर गल्फुल्लेपर झुके हुए तथा वज्रघनसे आगकी चिनगारियाँ उड़ाते हुए देख लिया।

कौनसे दुर्भाग्यने उनके सुखी घरको छिन्न-भिन्न कर डाला? बूढ़ी बुआने पूजा-बन्दना द्वारा दुर्भाग्यको टालनेका प्रयत्न किया था। वह सूर्योदयसे पूर्व ही बड़े तड़के उठती। कुशकी आसनीपर पालथी मारकर बैठती और प्रार्थना करती थी। उसकी समस्त आत्मा स्वर्गके देवोंकी दयालुताकी भीख माँगती थी। उसने एक दिनके भोजनकी लागतसे कुछ अगर बत्तियाँ भी मोल ली थीं, क्योंकि जहाँ वे सुगन्धी बत्तियाँ जलाई जाती हैं, उन घरोंपर देव अवश्य ही कृपा करते हैं। किन्तु कहाँ हैं वे देव?

जब बूढ़ी बुआ चावलोंकी छोटी-सी थैली लेकर घर लौटी, तब लेखा वहीं जमीनपर बैठी हुई थी। वह प्रथम बार एक पत्रकी रचना कर रही थी। स्कूलमें अभ्यासके लिए तो उसने अनेक बार नाना प्रकारके पत्र लिखे थे, किन्तु सच्चा पत्र लिखनेका यह पहला ही अवसर था। उसकी कलम काँप रही थी। वह अपने बाबाको अपने विषयमें क्या कहे? यदि सब बात सच-सच लिख दी जाय तो वे बहुत चिन्तित होंगे। उन्हें वैसे ही तो अपना बहुता-सा क्लेश है, यहाँकी वार्तासे उनके मनकी सब शान्ति भंग हो जावेगी। तब सच बात छिपा ली जाय और सुखके समाचार बनाकर लिखे जायँ? किन्तु उसमें तो असत्यकी झनकार प्रकट होगी। और वह सत्य कहनेसे भी अधिक बुरी होगी। लेखाने पत्रके अनेक ढाँचे बना-बना कर फाड़ डाले और माथा सिकोड़कर वह सोचती हुई बैठी रही।

घण्टोंके कठोर प्रयासके पश्चात् उसका पत्र तैयार हुआ जिसे उसने दूसरे दिनकी डाकसे रवाना कर दिया। उस समय तक उसके मनका अन्धकार दूर हो गया था। अपने पैरों खड़े होनेका संघर्ष ? किन्तु इसमें सन्देह ही क्यों हो कि वे अवश्य सफल होंगे ? वह अपने बाबाको खूब अच्छी तरह जानती थी और उनकी विजयमें भरोसा रखती थी। वह जानती थी कि उनमें अपनी साधनाका कितना बल है और कैसा उनका समस्त व्यक्तित्व उसी लोहे जैसा सुदृढ़ है जिसके साथ वे जीवन भर काम करते रहे हैं। वह एक निमेषमात्रके लिए भी उनकी सफलतामें कैसे अविश्वास कर बैठी ?

इस विचारसे लेखाके हृदयमें सुखकी बाढ़ आ गई। अब बाबा उस महानगरीमें सकुशल हैं, और जीवन-संग्राममें जुटे हुए हैं। तब लेखा भी अपनी भूमिपर दृढ़तासे जमी रह सकती है। उसने अवसे अपने प्रतिदिनके एकमात्र भोजनमें भी घटी करके केवल पाँच कौरकी मर्यादा बाँधनेका निश्चय कर लिया। इससे चावलकी बचत होगी। अच्छे दिन अब बहुत दूर नहीं रहे होंगे।

कान्वेंट स्कूलकी प्रधान अध्यापिका, उस मिशनकी महिलाको, उस दुष्कालके कारण स्कूल बन्द करनेका बड़ा दुख था। किन्तु वह साहस करके महानगरको गईं और वहाँसे बच्चोंकी सहायताका एक केन्द्र स्थापित करनेके लिए कुछ चन्दा करके लाईं। यह केन्द्र स्कूलकी लड़कियों द्वारा ही चलाना था। लेखाको काम सौंपा गया कि वह बाँटने-के लिए खाना बनावे और बच्चोंको खिलानेमें भी सहायता करे। उसे इससे खुशी हुई। वह कल इस खुशीका क्रियात्मक रूप अनुभव करने जा रही थी। उन अनेक सप्ताहोंमें यह पहली ही रात्रि थी जब लेखा सुख-से सोई। वहाँ बाबा सकुशल है, और वह भी यहाँ उपयोगी काममें लग जायगी। वह बड़े प्रातः उठी और पैदल चलकर स्कूलमें पहुँची। भूखे बालक उससे भी पहले पहुँच गये थे। लेखाने वहाँ पहुँचते-पहुँचते देखा कि बालक-बालिकाओंकी कतार स्कूलके चौड़े बरामदेमें बैठी है

और उनके मुख अभिलाषासे भरे हुए हैं। महीनोंकी भूखके पश्चात् आज उन्हें प्रथम बार पूरा भोजन मिलनेवाला है। स्कूलकी उच्चतम श्रेणीमें उत्तीर्ण छात्रा लेखा एक बड़ी डोलचीपर झुकी और करछुली भर-भर कर भाफ निकलता भात केलेके पत्तोंकी पंक्तियोंपर परोसने लगी। बालकोंके दुर्बल मुखोंपर चमक आ गई। मिशनकी वह वृद्धा महिला सफेद पोशाक पहने लेखाकी ओर अपना सिर झुका रही थी और मुस्करा कर कह रही थी "हाँ, बेटी, इसी प्रकार। अपने पास पूरे सप्ताह भरके लिए पर्याप्त चावल है। अगले इतवार तक और भी आ जायगा।"

लेखाके हृदयमें आनन्दकी हिलोरें उठ रहीं थीं।

उसके मनमें एक विचित्र विचार उठा। वह वृद्ध महिला दसवीं कक्षाको निबन्ध लिखना सिखाती थी। उसने उसे पत्र लिखना भी सिखाया था। उसने पढ़ाया था 'पत्रमें प्रतिदिनके अनुभवकी बातें, घरेलू बातचीत, मानवीयता लाना चाहिए। पत्र ऐसा हो जो पढ़नेमें अच्छा लगे।' उसने यह भी सिखाया था कि पत्रमें अपने स्वभाव, अपने व्यक्तित्वकी झलक भी आनी चाहिए। लेखाके उस प्रथम बार लिखे सच्चे पत्रके विषयमें उसकी अध्यापिकाका क्या अभिमत होगा? वह उसपर कितने अङ्क देगी?

इसके पश्चात् कई दिनों तक वह बड़ी उत्सुकताके साथ पिताके उत्तरकी प्रतीक्षा करती रही। एक सप्ताहमें उत्तर आ गया और उसके साथ दस-दस रुपयोंके दो नोट भी। उन्हें तो जैसे धनका खजाना ही मिल गया हो! बूढ़ी बुआ और वह, दोनों युगों जैसे प्रतीत होनेवाले महीनोंके पश्चात् अब अपने पेट भर खायँगी। किन्तु महत्त्व केवल इतनी ही बातका नहीं था। सबसे अधिक चमत्कार तो इस बातका था कि बाबाने विजय प्राप्त कर ली और अब वे अपने पैरों खड़े हो गये। यह सचमुच बड़ा ही आश्चर्य था। किन्तु इसे आश्चर्य क्यों कहा जाय! बाबा-की योग्यतामें तो उसका विश्वास अटल था। जो होना चाहिए था,

नहीं हुआ। बस, इतना ही।

बूढ़ी बुआको इस भाग्य-चक्रके परिवर्तनमें अपना ही हाथ दिखाई दिया। उसकी वह पूजा और वह प्रार्थना! देवोंने उसकी बात सुन ली।

"तुम्हारा इसपर क्या विचार है, बेटी?" बुआने गर्वसे पूछा। "अब अन्तमें तुम्हें संतोष हो गया न? तो सुन। अपन बड़े प्रातःकाल मन्दिर चलेंगे और पूजा करेंगे। दीप, धूप, पुष्प और नैवेद्यसे।"

तदनुसार, दूसरे दिन, पूजापत्रीके लिए एक रुपया खर्च किया गया। मन्दिरसे लौटते समय बूढ़ी बुआ एक बनिएकी दुकानपर रुकी। वह ग्राहकोंकी भीड़को भेद कर भीतर घुस गई। और गर्वसे रानीके समान खड़ी होकर वहाँकी सब वस्तुओंको देखने लगी। लेखा द्वार पर खड़ी रही।

"क्या तुम्हारे पास गेहूँका आटा है, अच्छेसे अच्छा?" बूढ़ी बुआने उत्सुकी प्रतीक्षासे दुकानदारपर अपनी दृष्टि डाली।

दुकानदारने बुढ़ियाके मुँहपर दुष्कालके लक्षणोंका अन्दाज लगाते हुए रोष भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखा। किन्तु उसने उत्तर शान्तिपूर्वक दिया—"हाँ, बहुत बढ़िया आटा हमारे पास है।"

"एक सेर बस होगा। क्या चाय भी है, बेटा? चाय?"

"बुआ?" लेखाने द्वारपरसे जोरकी चीत्कार की।

बूढ़ी बुआका उस ओर ध्यान ही नहीं गया। "चाय?" उसने फिरसे जोर देकर कहा।

"हरी छापका पैकेट, दो रुपएमें।"

शेष रुपयोंका बूढ़ी काकीने चावल खरीदा। किन्तु उसने एक रुपया बचा लिया। सड़कपर चलते-चलते बूढ़ी बुआ बोली "अब अपने हाथोंमें पूरा बोझा हो गया है। आलू लेने मैं फिर आऊँगी।"

"आलू?" आवाज खोखली थी।

"अरी, अपन उत्सव मनायेंगी" बूढ़ी बुआने जोर देकर कहा—

"देखतो नहीं, भाग्य-चक्र बदल गया है।" बुढ़ियाकी धुसी हुई आँखों-में गर्वकी चमक लौट आई थी। "यही तो वह हाथ है जिसने इस भाग्यचक्रको मोड़ा है।" और फिर उसने कुछ ठहर कर विनयसे कहा—"देवोंने मेरी पूजा, प्रार्थना सुन ली; नहीं क्या ?"

बूढ़ी बुआके आनन्दने लेखाके हृदयको स्पर्श कर लिया और उसके रक्तमें तेजीका संचार कर दिया। वह भी बोल उठी—"हम उत्सव मनायँगे, क्योंकि भाग्य-चक्र फिर गया है।"

उसी दिनसे लेखा एक स्वप्न देखने लगी, उस महानगरीका एक स्वप्न।

उसके मनमें, जो मूर्तियाँ थीं, वे पर्याप्त नहीं थीं, क्योंकि उसने उस महानगरीकी यात्रा उसी प्रकार की थी जैसे कोई एक मेलेमें जावे, कौतुक-पूर्ण वस्तुएँ देखे और आवेग ढूँढ़ता फिरे। अबकी बार तो वह वहाँ नवागन्तुककी भाँति नहीं रहेगी। अब वह वहाँकी निवासिनी होकर, शहरके जीवनमें जड़ जमाकर रहेगी और वहाँकी इमारतोंके विशाल जंगलमें ही कहीं इधर-उधर उसका अपना घर होगा।

कल्पनाने उसे निर्माणकी सामग्री दे दी, और लेखाने एक स्कूल-का निर्माण किया।

एक स्कूल—यही तो उसकी एक सच्ची आवश्यकता है। शायद कोई छात्रवृत्ति पाकर वह किसी कालेजमें भरती हो जाय। कमारकी लड़की-के लिए यह एक बेतुकी अभिलाषा थी। तो क्या उसने समस्त बंगालके समस्त स्कूली लड़के-लड़कियोंको हराकर पदक नहीं जीत लिया था ? अभी वह फिर भी अपनी योग्यता बतला सकती है। केवल बाबा ही युद्ध कर सकें, सो बात नहीं है। उनकी यह पुत्री भी तो अपने पैरों खड़ी हो सकती है।

एक दुखद विचारने इस सुनहले चित्रको बिगाड़ दिया। उसका वह पदक, वह तावीज चला गया। वह शायद अब पदकके रूपमें रहा ही नहीं। गलकर उसके किसी भाग्यवतीके कानोंके लटकन या पैजन-

के दाने या किसी भले आदमीकी शर्टकी बटनें बन गई होंगी। किन्तु इससे क्या? जीतनेके लिए और भी तो पदक होंगे?

बाबाको पदकके जानेका दुख नहीं होना चाहिए। "हाँ, उस महानगरीके स्कूल कैसे होंगे?" लेखाने अपने पिताको पत्रमें लिखा। और जो उसकी अनुक्त इच्छाको भी भाँप सकता था, उसने उत्तर दिया "मैं तुम्हारे लिए स्कूल ढूँढ़ रहा हूँ। यहाँ कितने ही स्कूल हैं। अपने कान्वेंट स्कूलके समान एक-मंजिला नहीं। कल मैंने साउथ पार्क रोड-परका स्कूल देखा। अरी, वह स्कूल क्या, वह तो पूरा राजाका महल जैसा दिखाई देता है। मैं उसे देखते हुए खड़ा था कि वहाँ एक लंबी काली बस आ खड़ी हुई और उसमेंसे एक लड़कियोंका झुंड निकल पड़ा। वे सब एक-सी पोशाकमें थीं, सादी नीली ड्रेस। स्कूलकी अपनी निजी बस है, चन्द्रलेखा! वह बस घर-घर जाती है और द्वारपर-से ही लड़कियोंको बैठा लेती है। तुम्हें चलना बिलकुल नहीं पड़ता।"

चन्द्रलेखा मुस्कराई। उसकी चौड़ी-काली आँखोंमें एक चमक आ गई। 'तुम्हें चलना बिलकुल नहीं पड़ता'। मानो वह उस शहरी स्कूलमें भरती हो चुकी हो। जल्दी करो, बूढ़ी बुआ। मेरा स्कूलका बस्ता ला दो। मैंने उसे कल कहाँ रख दिया था? बस सारे दिन तो अपने घरके द्वार पर खड़ी नहीं रहेगी?

"किन्तु अब मैं वह ड्रेस कैसे पहनूँगी, बाबा? यदि वह फ्राक हुई तो? फ्राकके लिए तो अब मैं बहुत बड़ी हो गई हूँ?" उसने फिर अपने पिताको लिखा।

पिता ने उत्तर दिया, "फ्राककी ड्रेस तो केवल छोटी लड़कियाँ पहनती हैं। किन्तु तुम्हारी अवस्थाकी लड़कियाँ तो साड़ी और जाकेट पहन कर स्कूल जाती हैं—नीली साड़ी और सफेद जाकेट। यही उनकी पहचान है।"

चन्द्रलेखाको इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। नीली साड़ी और सफेद जाकेटसे सब संसार जान लेगा कि वह उस महानगरके स्कूलकी छात्रा है।

क्यों नहीं ?

फिर किसी एक दिन एक अपरिचित व्यक्ति उसके घर आया। वह एक अधेड़ आयुकी स्त्री थी, मोटी और बड़े ढाँचेकी अँगुलियों और बाहुओंपर सोना पहने और नाकमें जवाहरकी लौंग । उसने द्वारपरसे पूछा—"कमारके घरके लोग यहीं रहते हैं क्या ?"

लेखाने चौंककर उसकी ओर देखा। क्या बात है ? बूढ़ी बुआ मन्दिर गई हैं।

वह स्त्री धमसे दहलानपर बैठ गई और आरामसे इधर-उधरकी बातें पूछने लगी। तुम्हें अपने पिताके पाससे अंतिम पत्र कब मिला ? तो तुम जानती हो कि उनका काम अच्छा चल रहा है और वे कमाई कर रहे हैं ? उन्होंने इस अन्तिम पत्रमें क्या लिखा था— तुमने कहा न कि परसों मिला था ?

लेखा सतर्क हो उठी। वह स्त्री बार-बार प्रश्न कर रही थी, और लेखा थोड़ेमें उत्तर देती थी। "बात क्या हुई है, मुझे कहिए तो ?"

अन्तमें वह स्त्री चुप हो गई और देर तक नीचेकी ओर एकटक देखती रही। लेखा हाथ मलते हुए फिर बोली, "कहिए तो, मुझे बतलाइए कि…"

उस स्त्रीकी सँकरी आँखोंमें आँसू झलकने लगे। लेखा उसकी ओर एकटक देख रही थी। अब उसके हृदयको एक भयंकर आशंकाने जकड़ लिया। एक ही क्षणमें वह अब भयंकर चीत्कार कर उठती। किन्तु इसी बीच उसने स्त्रीको रुँधे गलेसे फुसफुसाते सुना।

"एक दुखद समाचारके लिए अपने हृदयको पक्का कर लो, बेटी। यह मेरा दुर्भाग्य है, जो मुझे इतनी दूर आकर तुम्हें सुनाना पड़ा कि…"

"बाबा ?" लेखाके गलेसे मर्मभेदी चीत्कार निकल पड़ी।

"नहीं, नहीं, बेटी ! इतनी बुरी बात नहीं है। मैं बड़ी मूर्ख हूँ जो तुम्हें इतना आकुल कर दिया। उन्हें एक मोटरगाड़ीने धक्का देकर गिरा दिया। उनके दाहिने हाथमें चोट आई है। किन्तु अस्पतालमें वे उनकी

अच्छी चिकित्सा करा रहे है। दो-तीन सप्ताहमे वे अच्छे हो जायँगे। कोई डरनेकी बात नहीं है। किन्तु वे तुम्हारी बहुत याद करते है, और इसलिए अस्पतालवालोने मुझे भेजा है। मै उसी अस्पतालमे काम करती हूँ—नर्सोंके स्टाफमे।" उसने हड़बड़ाते हुए अपनी जाकेटके खुले गलेकी ओर हाथ बढाया और वहाँसे एक पत्र बाहर खीचा "यह तुम्हारे लिए है।"

शून्य हाथसे लेखाने वह पत्र थामा। वह पढ़ने लगी और स्त्री बोलती गई, "देखा तुमने; हास्पिटलका नाम छपा हुआ? यह महानगरका एक बढिया अस्पताल है। गरीब हो चाहे अमीर, वहाँ तुम्हारी एक-सी सेवा की जाती है। तुम्हारे पिताके दाहिने हाथपर पट्टी बाँध दी गई है। इसलिए जो कुछ वे बोले, उसे एक नर्सने पत्रमे लिखा है। देखा तुमने?"

लेखाके कपालपर झुर्रियाँ पड़ गई।

"क्यो?" परसो ही तो मुझे स्वय उनके हाथका लिखा हुआ पत्र मिला था, पूरे चार पन्ने।"

उस स्त्रीने अपना सिर हिलाया। "इस दुर्घटनाको हुए अभी एक ही दिन तो हुआ है। अस्पतालवालोने मुझे बडी जल्दी यहाँ भेजा है, क्योकि वे तुम्हारे लिए बडे आतुर हो रहे थे। हाय, बेचारे! किन्तु यदि तुम्हे भय लगता हो तो मत चलो।"

भय लगता हो? मै यहाँ रहूँ, जब बाबा वहाँ पड़े-पड़े दुःख भोग रहे है? बाबाको मेरी आवश्यकता है। भय लगता हो?

उन्हे कितना क्लेश हुआ होगा? जिस गाडीने उन्हे धक्का देकर गिराया, उसके ड्राइवरको निर्दयतासे दड मिलना चाहिए, उसे जेल भेजना चाहिए और कतल करनेवाले कैदियोके साथ तेलकी घानीमे जोतना चाहिए। बाबाने तो अभी सग्राम पूरा करके अच्छी जीविका ही प्रारम्भ की थी।

"महानगरके लिए गाडी दो घटेमे छूटनेवाली है" उस स्त्रीने

अपनी कलाईपर बँधी घड़ीकी ओर देखते हुए कहा। वह फिर लेखा-की मुख-मुद्राका अध्ययन करने लगी।

"मेरी बूढ़ी बुआ अब एक क्षणमें आती ही होंगी। ज्यों ही वे आईं त्यों ही अपन तीनों चल पड़ेंगे!"

"बूढ़ी बुआ?" उस स्त्रीकी आवाज भारी हुई। मैं उसका रेल-भाड़ा भी चुका सकती तो अच्छा था! किन्तु अस्पतालने तो केवल दो टिकटोंका पैसा देकर भेजा है। तुम्हारे घरमें कुछ पैसा है?"

लेखाको जान पड़ा उसका हृदय बैठा जा रहा है। एक रुपया भी तो नहीं बचा था। अरे, इस बूढ़ी बुआकी फजूलखर्चीने सब चौपट कर दिया।

उस स्त्रीकी झील जैसी आँखोंमें एक चमक आ गई।

"चिन्ता मत करो। रेलगाड़ीमें मैं तुम्हारी देखरेख करूँगी। मैं अपने कर्त्तव्यको जानती हूँ। ज्यों ही मैं तुम्हें कुशलपूर्वक अस्पताल-के द्वारपर पहुँचा दूँगी, त्यों ही मेरा काम पूरा हो जायगा। तुम्हें सोने-के लिए एक कमरा मिलेगा। अपनी बेटीको देखकर पिताको अपने क्लेश सहन करनेका साहस मिल जायगा। हाय, बेचारे! मैंने उन्हें तुम्हारे लिए एक छोटे बच्चेके समान व्याकुल और आतुर होते देखा है। देखो, यदि तुम्हारे मनमें कुछ शंका हो, तो अच्छा है तुम घर ही रहो। तुम्हारे पिताको कैसे समझाना, यह भी मैं जानती हूँ। मैं उन्हें कह दूँगी कि तुम तेज बुखारसे बीमार पड़ गई हो।"

"ना!"

लेखाने अपना निश्चय कर लिया। जैसे वह उस अवस्थामें और कुछ कर सकती थी? महानगरकी उस अस्पतालकी दयालुता भी धन्य है! दुखी मनुष्यका कितना विचार किया जाता है, वहाँ। तब इसमें आश्चर्य ही क्या जो वह शहर बंगालका रत्न गिना जाय? वहाँकी सार-सम्हालसे बाबा अवश्य ही दो-तीन सप्ताहमें अच्छे हो जावेंगे। फिर लेखा कभी उनसे पृथक् न होगी, कभी भी नहीं।

वह उठकर जल्दीसे रसोईघरमें गई, और दरवाजा बंद करके

चुपचाप बैठकर रोने लगी। रोते रोते ही उठकर उसने एक मिट्टीकी हंडीमें पानी भरा और उसे चायके लिए चूल्हेपर चढ़ा दिया। उसने अपनी साड़ीसे आँखें और मुँह पोंछे और अपने कमरेमें जाकर अपनी उन थोड़ी-सी वस्तुओंको एक छोटी-सी पोटलीमें बाँध लिया।

लेखा अपने अभ्यागतको एक टीनके डब्बेमें चाय और केले-के पत्तेपर गुड़में पगे चावलके लड्डू दे रही थी कि बूढ़ी बुआ मंदिर-से लौट आई। उसने सारी कहानी ध्यानपूर्वक सुनी और साथ-साथ उस शहरी स्त्रीकी ओर घूर-घूरकर देखा। फिर वह चुपचाप बैठकर सोचने लगी। एक-दो बार उसने अपना सिर हिलाया, जैसे उसे वह बात स्वीकार न हो। किन्तु दूसरा मार्ग ही क्या था? लेखाके विदा होते समय बूढ़ी बुआने देवीको चढ़ाए हुए फूलोंमेंसे एक फूल लेकर लेखाको दिया और उसे अपने भाग्यके भरोसे छोड़ दिया।

बूढ़ी बुआने कहा "मैं अब फिर मंदिरमें जाती हूँ और खूब रात तक वहाँ पूजा-प्रार्थना करती रहूँगी।

७

काल्लू ओंठ दवाकर अपने आप मुस्करा रहा था। उसके हाथमें अपनी प्यारी बिटियाका पत्र था, उस एक ही माहमें चौथा। थोड़े ही दिन और धैर्य रख, चन्द्रलेखा! तू तो बड़ी साहसी लड़की है। अब तुझे इस महानगरमें लानेमें मुझे बहुत समय नहीं लगेगा।

इसी एक आशाने तो उसके उस भीगे हुए दुःखको दवा दिया था, अपना वर्तमान घृणित कार्य भी उसे सार्थक दिखने लगा था। क्या उसने अपनी कमाईसे चन्द्रलेखाको भुखमरीसे नहीं बचा लिया?

वह इतना पैसा कमाने लगा जितनेकी उसने कल्पना भी न की थी। बचत भी अच्छी हो रही थी। दो माहमें या शायद तीन माहमें झरना जाकर अपनी बेटीको ला सकेगा। उसे एक ही बातका दुःख था। वह इतना शायद न बचा सकेगा कि वह शहरके बाहरी मुहल्लेमें निजी लुहारी भट्टी खोल सके। तब यही ठीक है कि वह लेखाके अपने पास आनेपर कुछ माह और इसी धन्धेको करता रहे। किन्तु उससे यह छिपाया कैसे जायगा? कभी उसपर यह बात प्रकट हो गई तो कितना भयंकर होगा!

कल्पना करो, यदि लेखाने उसे अँधेरी रातमें, सोनेके समयसे भी बहुत पश्चात्, उसके पाँच वेश्या-गृहोंमेंसे इस चितपुर रोडकी गलीमें स्थित सबसे अधिक समृद्धिशाली वेश्या-गृहके पास देख लिया! उसकी पीले रंगसे पुती बाहरी दीवालपर ठीक-बीचमें चमकीले हरे अक्षरोंमें शानसे लिखा है उसका नाम—'रूपा'। उसकी भव्य इमारत उस पंक्तिके साधारण घरोंके बीच अलग ही दिख जाती है। उसके छज्जोंपर वेश्याएँ अपने थके-माँदे, किन्तु पाउडरसे खूब पुते हुए मुखों-को लेकर टोपीदार लैम्पोंके नीचे खड़ी होतीं और अपने लालसा-भरे

हास्य तथा संकेतपूर्ण हाव-भावसे निकलनेवाले लोगोंको आकर्षित करने-का प्रयत्न करती थीं। यह घर अपनी शान-शौकतका शहर भरमें एक ही था। वहाँके ग्राहक भी बंगालके नागरिकोंमें उच्चतम श्रेणीके चुने हुए लोग ही थे। वहाँके लिए लड़कियाँ बड़ी सावधानीसे, उनके यौवन और सौन्दर्यका खूब विचार करके, चुनी जाती थीं और इस कार्यके लिए वहाँके दलाल उत्तमसे उत्तम मालकी खोजमें दूर-दूर तक घूमते फिरते थे।

कालूको एक विशेष कृपाके द्वारा ही 'रूपा' पर काम दिया गया था। 'हाँ भाई, मैं तो मनुष्यको उसकी मुखमुद्रासे ही पहचान लेता हूँ' और कालूने रजनीके उस कुशल निर्णयको अमूल्य सिद्ध नहीं होने दिया था!

यदि चन्द्रलेखाने स्वप्नमें भी उसे देखा कि वह आधी रातको इस गलीमें घूम रहा है, तो वह स्वप्नको भी सहन न कर सकेगी। कालू लेखाके इसी घोर स्वप्नके विचारमें मग्न था, उसी समय उसकी दृष्टि सड़ककी उस बाजूपर एक घरके ऊपरकी ओर पहले मंजिलके छज्जे-पर पड़ गई। वहाँ सदैवकी भाँति एक प्रतिमा खड़ी थी। वह स्त्री अपनी टहुनियोंको कठघरेपर रखकर हथेलीसे अपनी ठुड्डी थामे हुए मूर्तिके समान स्थिर थी। वह रीतिके अनुसार कभी आमन्त्रण देती हुई नहीं देखी गई। यहाँ तक कि जब कभी कोई मनुष्य सड़कपर ठहरकर संकेत करता या उस घरके द्वारकी ओर मुड़ता, तब भी शायद ही कभी वह कोई सजीवता दिखलाती थी। उसका चलना-फिरना भी मूर्तिके समान ही था। कालूको उसके सम्बन्धमें अनेक बार आश्चर्य हुआ था। क्या सदाके लिए वह उसी पापके ढाँचेमें ढाल ली जावेगी?

कालूकी यह तर्क-शृंखला तब टूटी जब एक टैक्सी आकर रूपाके सामने खड़ी हो गई। यही वह अभ्यागत होगा जिसकी आज प्रतीक्षा की जा रही थी। कालूको आदेश था कि वह उसका हाथ जोड़कर स्वागत करे।

"इस ओर, हुजूर..."

उसके सफेद रेशमी कोटपर हीरेके बटन चमक उठे। उसने अपनी अभिमानपूर्ण नाक ऊपरको उठाई, और बिना कालूकी ओर दृष्टिपात किये घिसटता हुआ चला गया।

टैक्सी मोड़पर खड़ी रही और उसका मीटर टिक्-टिक् करता रहा। यह उसी उच्च श्रेणीका मनुष्य होगा जो रुपयोंकी आग जलाकर तापना पसन्द करते हैं। कालूने कुछ कदम उसके पीछे जाकर अपने मनमें सोचा। वह शायद एक बोतल ह्विस्की माँगे, या कोई शराब।

वह मनुष्य अपने आप सँकरी दालानमेंसे होकर सीढ़ियोंपर पहुँच गया। दूसरी मंज़िलपर पहुँचते ही उस अतिथिका स्वागत एक मोटी बड़ी हड्डियोंवाली, नाकमें चमकते हुए जवाहर पहने उस घरकी व्यवस्थापिकाने किया और वह आगन्तुकसे धीरे-धीरे बोलने लगी।

"आपको खुशी होगी हुजूर। क्या तेइस वर्ष बिता देनेपर भी मैं अपना काम जानती नहीं हूँ?"

बिक्रीके लिए एक अच्छी वस्तु उपस्थित करनेवाले व्यापारीकी कुशल मुस्कराहटके साथ वह मुड़ी, और अपने स्थूल नितम्ब मटकाती हुई चित्रकारीके पाषाण-खण्डोंसे पटे हुए चिकने पालिशदार बरामदेपर चल पड़ी।

यही तरीका था। वह स्त्री अतिथिको मोटे लाल अधखिंचे मखमली पर्देके पीछे अधखुले दरवाजेपर ले जाकर रुक जाती थी। यदि वहाँ पलंगपर बैठी और उत्सुकताके साथ मुस्कुराती हुई लड़कीमें उसका मन भरा, तो वह भीतर चला जाता और दरवाजा बन्द कर लेता था। नहीं तो वह पीछे लौटकर बरामदेपर आगे बढ़ता और अगले कमरेमें झाँकता।

बरामदेकी दीवालोंपर बड़ी-बड़ी और भारी चौखटेदार तसवीरें टँगी हुई थीं। वहाँ पुराणके देवता, भद्दी मुद्राओंवाली नग्न जापानी आकृतियोंसे घनिष्ठ संगति कर रहे थे। आजके विशेष अतिथिके बरामदेपर चलते समय एक दरवाजेके पीछेसे हँसनेकी ध्वनियाँ आईं।

एक कर्कश आवाजके साथ-साथ धीमा मधुर राग सुनाई दिया। दूसरे एक कमरेसे वीणाकी झंकारके साथ-साथ यह गान सुनाई दिया—

स्वागत अतिथि तुम्हारा !
पान करो जीवन का प्याला !
पान करो !
पान करो जीवनका प्याला !
भरे हृदयसे, हो मतवाला ॥

अतिथि उद्देश्यपूर्ण भावसे चल रहा था। वह इस स्थानसे खूब परिचित था। वह एक बन्द पर्देके सामने जाकर रुक गया और उसने झटकेसे पर्देको खींचा। व्यवस्थापिका उसके आगे बढ़कर कमरेमें गई और दूसरे ही क्षण उसकी कोड़ेकी चटक जैसी आवाज आई :

"चुप ! खबरदार !"

कुछ देर कमरेमें सन्नाटा रहा। फिर जल्दी-जल्दी झटकेके साथ उस स्त्रीकी वही आवाज आने लगी।

"रोना धोना बहुत हो गया ! वह यहाँ आ गया है, क्या तुझे दिखता नहीं है ? मैंने तुझे पूरे पाँच दिन छोड़ रखा था। इसी अवसरके लिए तो तुझे बचाया है। यह तेरे लिए बड़ा अच्छा मौका है, लड़की ! समझती नहीं ? वह तेरे इन जवानी भरे अङ्गोंको सोनेसे मढ़ देगा। जूटके व्यापारमें बहुत बड़ा आदमी बन गया है वह। सुनती है ?" आवाज फिर भारी हुई "जूटके व्यापारमें बहुत बड़ा आदमी।"

किन्तु वह रुदन अब भग्न हृदयकी वेदनाके करुण चीत्कारमें फूट पड़ा।

"तेरे मनको नरम बनानेके लिए मैंने तुझे जो वस्तु दी थी, वही कुछ और देना आवश्यक है।"

"ना···" मुँह फाड़ कर दुखभरी आवाजमें "ना··ना"।

उस आवाजसे कालू चौंक उठा। उसने भीतर देखनेके लिए पर्दा हटाया। उसी समय वह मोटी स्त्री तीव्रतासे कमरेके बाहर निकल पड़ी

और उसने काल्के मुँहपर दरवाजा बन्द कर दिया ।

"चलो यहाँसे", उसने रोषसे कहा, "तुम्हारे यहाँ खड़े रहनेकी जरूरत नहीं है ।" काल्रू हड़बड़ा कर वहाँसे चल पड़ा । उसी समय उस स्त्रीने पुकारा "देखो; दौड़ कर केबिनपर जाओ और शराबके साथ चलनेके लिए कुछ तला हुआ कैंकड़ेका मांस ले आओ ।"

खिन्न होकर काल्रू सीढ़ियोंसे नीचे उतरा । वह एक सीढ़ीपर पैर रखना भूल ही गया और गिरते-गिरते बचा । उसकी आँखोंमें धुँधली छा गई थी जिससे वह शाला उसे कुहरेमें झूलती-सी प्रतीत हुई । वह इस तरह काँप रहा था मानो उसे असह्य ठंढ लग रही हो । वह बड़बड़ाया, "मैं तो पागल हो गया हूँ !"

बड़े प्रयत्नसे उसने अपनी कँपकँपी रोकी । वह अन्तिम सीढ़ीपर बैठ रहा । उसने अपनी आँखोंकी धुंधको दूर करनेके लिए बार-बार अपने सिरको झटका दिया ।

"मुझे तो कुछ ऐसा लगा जैसे वह लेखाकी आवाज हो !"

अपनी इस अद्भुत कल्पनापर वह स्वयं जोरसे हँस पड़ा । अपना मन खो बैठना अच्छा नहीं होगा । इस गन्दे शहरको छोड़कर कल ही उसे अपनी लड़कीके पास जाना चाहिए । हाँ, कल ही ।

कुछ देर तक काल्रू बिलकुल चुपचाप बैठा रहा । उसके गालोंपर रक्त दौड़ने लगा था । वह मुँह खोले उठकर खड़ा हो गया और हवाके लिए घरके बाहर निकल पड़ा । उस छायामयी गलीमें उसका एक साथी मुँहमें सिगरेट दबाये हँसता हुआ बोला—"आज तो रूपामें एक बड़ी भारी मछली आ फँसी है ! देखो, उसकी टैक्सी खड़ी हुई है ।"

एक युवती स्त्री एक द्वारपर ऊपरसे लटकते हुए लैम्पके नीचे अपने शून्य शरीरको खड़ा किए उस टैक्सीकी ओर देख रही थी । वह बड़बड़ाई "ये भुखभरी छोकड़ियाँ आज फैशन हो गई हैं । ये हमारा रोजगार छीन रही हैं । तब हम क्या खाएँ ?"

काल्रू जल्दी-जल्दी आगे बढ़ा । वह अपने आपहीसे दूर भागनेका

प्रयत्न कर रहा था। पागलपन अभी भी उसपर सवार था। वह अपनी योजना बनानेमें लगा था। झरनाके लिए कितने बजेकी गाड़ी पकड़नी चाहिए ? लेखाके लिए क्या उपहार ले जाना चाहिए, आदि। जैसे-जैसे ये विचार उठते जाते थे वैसे-वैसे ही उसकी सनक दूर होती जाती थी।

"मुझे तो ऐसा लगा जैसे वहाँ चन्द्रलेखा ही बोल रही हो !"

वह रुक गया और एक लैम्पके खम्भेसे टिककर खड़ा हो गया। उसका मुँह खुला था और उसीसे वह साँस ले रहा था। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और मनकी उस विचारधाराको बहाकर दूर कर देनेका प्रयत्न किया। किन्तु वह भयंकर कल्पना बनी ही रही। केवल उसके कानोंने ही उसे छला हो सो बात नहीं। उसके मनमें एक अपूर्व भावना उठ रही थी। उसकी छातीमें फिर धड़कन होने लगी और उसके रक्तमें जैसे आगकी चिनगारी पड़ गई।

वह वापिस उसी घरकी ओर लौट पड़ा। किन्तु उसके मनके तीव्रावेगने उसके घुटनोंको शक्तिहीन बना दिया जिससे वह द्वारपर ही बैठा रहा।

"क्या तू बिलकुल ही पागल हो जायगा रे मूर्ख !" कालूने धीरेसे कहा। फिर वह अपनेको सम्हालनेका प्रयत्न करने लगा।

अकस्मात् उसने हीरोंसे जड़े मनुष्यको सीढ़ियोंपरसे उतरते देखा। कालू कूद कर खड़ा हो गया। मुश्किलसे दस मिनट हुए होंगे। वह मनुष्य अकड़ा हुआ चला गया। उसकी आवाजमें रोषकी गुर्राहट थी।

"टैक्सी !"

कालू सीढ़ियोंकी ओर मुड़ा। वह अब इस अपनी कल्पित वेदना-को सहन नहीं कर सकता था। वह निश्चय कर लेना चाहता था। वह उस कमरेमें जाकर स्वयं अपनी आँखोंसे अपनी भ्रान्तिपर हँस लेना चाहता था। वह कितना हँसेगा ! कल वह घर जा रहा है—अपनी

बेटीके पास। हाँ, वह स्वयं देखकर अपने इस भयके भूतको भगा देगा। यदि वह मोटी स्त्री उसके मार्गमें आड़े आयगी, तो वह उसका गला घोंट देगा।

पैरोंकी आहट दबाकर कालू सीढ़ियोंपर चढ़ा और छाया-मूर्तिके समान वह बरामदेसे आगे बढ़ा। ज्यों ही वह उस कमरेके सामने पहुँचा, त्यों ही उसे ऐसा लगने लगा जैसे उसके हृदयकी धड़कन बन्द हो गई हो। उसने काँपते हाथसे धीरे-धीरे खींचकर दरवाजा खोला।

लड़की जमीनपर अस्त-व्यस्त पड़ी सिसक रही थी। पहले कालूको उसका मुख दिखाई नहीं दिया। वह पास जाकर देखने लगा।

"लेखा !" कालूके मुखसे निकल पड़ा।

तीव्रतासे चौंक कर उसने मुँह उठाकर देखा और वह कुछ देरके लिए अवाक् रह गई। "बाबा !" उसने फिर धीरेसे कहा।

कालूकी आँखोंसे क्रोधाग्निकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। फिर भी वह गत आध घंटेसे अनजानमें ही इस क्षणकी तैयारी कर रहा था। उसके घुटने काँप रहे थे। तथापि उसने जोर लगाकर अपनेको सम्हाला।

"उठो, जल्दी, चलो।"

उसने झुककर लेखाको अपने पैरों खड़ा किया और वह द्वारकी ओर बढ़ा। कालीनपर वमन पड़ा हुआ था, जिसपर उसका पैर पड़ते-पड़ते बच गया।

कालूने कमरेके द्वारपर रुककर आजू-बाजू दृष्टि डाली। बरामदेके दूर कोनेपर उसे वही गृहरक्षिका दिखाई दी। उसके हाथमें एक कोड़ा था। कालूको प्रतीत हुआ कि उसकी पुत्री निश्चेष्ट और शून्य होती जा रही है। वह कुछ पीछे हट पड़ा और ठहर गया। उसे ऐसा लग रहा था जैसे अब उस स्त्रीको मार डालना उसका धर्म हो गया हो। वह स्त्री धीरे-धीरे उसीकी ओर बढ़ रही थी और क्रोधसे अपने आप बड़बड़ा रही थी।

"मेरे साथ छल करेगी ? कलकी पैदा हुई दुधमुँही छोकरी बीमार कुत्ते सरीखी कै कर रही है ! मैं तुझे ठीक करके छोड़ूँगी। भले ही इसके लिए मुझे तेरी देहकी दस-बीस हड्डियाँ तोड़नी पड़ें।" क्रोधसे काँपती और कोड़ेको घुमाती हुई वह पाखानेकी ओर मुड़ी और भीतर घुसकर उसने बड़े जोरसे दरवाजा बन्द कर लिया।

काल्रूने अपनी लड़कीकी बाँह पकड़ी और वह कमरेसे बाहर चल पड़ा। वह सीढ़ियोंसे नीचे उतरा और गलीसे होकर मुख्य सड़कपर आ गया। मोड़पर टप चढ़ाए एक रिक्शा खड़ा था और रिक्शावाला सड़कके किनारे बैठा था। काल्रूने आवाज दी।

आवेग समाप्त हो गया था और वे दोनों बिलकुल चुपचाप एक दूसरेसे हटते हुए और परस्पर आँखें बचाते हुए रिक्शामें बैठे चले जा रहे थे। शहरपर मध्य रात्रि सघनतासे छाई हुई थी। सड़कके लैम्प अपने टोपोंके नीचे मन्द प्रकाश फैला रहे थे। पाससे एक फायर इंजिन भौंकता हुआ निकल गया और अपने आस-पास शून्यता बिखेरता गया।

काल्रूका भावावेश पूर्णतः समाप्त हो गया था। उसे लेखासे कोई प्रश्न करनेका कौतुक नहीं हो रहा था। उसका मन बिलकुल शून्य था। महीनों पहले, अदालतमें उसके व्यक्तित्वका एक सच्चा अंग अपराधीके खड़े होनेके कठघरेमें ही पृथक् होकर छूट गया था। कुछ और भाग जेलखानेके फाटकके भीतर रह गया था। और आजकी रात उसके व्यक्तित्वका एक और मौलिक भाग उस वेश्यागृहके पुष्पाच्छादित कालीनपर पड़ा रह गया था।

और लेखा ? उसके हृदयमें अपने त्राणके लिए कोई स्पष्ट हर्ष नहीं था। घोर थकानके सिवाय उसमें और कोई भाव नहीं था। वह केवल इतना चाहती थी कि कहीं लेटकर सो जाय, या मर जाय। रिक्शेकी कड़ी गद्दीके कोनेमें अपनेको दबाकर टपकी लोहेकी छड़ोंसे अपनी बाँहपर रगड़ खाते हुए वह अपनी आँखें बन्द किए थी। क्या ही अच्छा हो, यदि उसे फिर कभी अपनी वे आँखें न खोलनी पड़ें।

आकाशमें कुछ नीचे उड़ते हुए एक हवाई जहाजकी भर्राहटसे उन दोनोंकी समाधि भंग हुई। कालूने ऊपरकी ओर देखा, और फिर प्रथम बार उसकी दृष्टि अपनी पुत्रीपर रुकी। किन्तु लेखाकी आँखें उसकी आँखोंसे नहीं मिलीं। उसकी दृष्टि उसी विमानके साथ-साथ आकाश-पथके ओर-छोर तक घूमती गई और वह नीचे उतरना ही नहीं चाहती थी।

लेखा कुछ अपरिचित-सी बन गई थी। उसका मुँह ऊपरको उठ रहा था और उसपर रुखाई छाई हुई थी। आँखोंके नीचे कालिखकी रेखाएँ प्रकट हो आई थीं। बाल बिखरे हुए थे। वह केवल एक नीली अत्यन्त झीनी पारदर्शी साड़ी पहने हुए थी, और कुछ नहीं। कालूकी आँखोंमें जलन हो उठी। लेखासे कस्तूरीकी गंध आ रही थी, और उसके साथ-साथ वमनकी दुर्गंध भी।

चन्द्रलेखाके व्यक्तित्वका क्या शेष बचा था?

रिक्शावालेने घंटी बजाई और वह एक गलीमें मुड़ गया। थोड़ा चलकर वह एक टीनके छप्परकी झोपड़ियोंकी एक कतारके सामने रुक गया। कालूने उसका भाड़ा चुकाया और अपनी पुत्रीको साथ लिए वह एक अँधेरे बरामदेमें पहुँचा। कुछ दरवाजोंके सामनेसे निकल कर वह अपने द्वारपर पहुँचा और पीतलके तालेमें कुंजी डाल कर उसने उसे खोला।

"आओ", कालूने दीवालके आलेमें एक पतली-सी मोमबत्तीको जला कर कहा।

लेखा, अपरिचितकी भाँति, देहरीके भीतर प्रविष्ट हुई और उस छोटे-से चौकोर कमरेमें अपनी बाँहोंसे छातीको ढँक कर सिर झुकाए चुपचाप खड़ी हो गई। किन्तु कालूने उसकी ओर नहीं देखा।

"भूख है?" कालूने पूछा।

"नहीं।" लेखाकी आवाज फूटी, और उसने आगे कहा "मुझे प्यास लगी है।"

कालू चला और माटीके घड़ेसे एक एनामिलके मग्गेको पानीसे भर कर उसने लेखाको दिया।

"तो सो जा।" कहते हुए कालूने सिर हिलाकर भीतसे सटी हुई एक संकरी खाटकी ओर संकेत किया। उस खाटसे ही आधा कमरा भर गया था। उसने स्वयं एक घासकी चटाई उठाई और बरामदेपर जाकर सीडे सिमेंट-तलपर बिछा ली। सोनेसे पूर्व उसने दरवाजा बन्द कर दिया और जोरसे भर्राती आवाजमें कहा—"सो जा।"

सचमुच सो जा! वह पशु बन गया था। उसकी सारी कोमलता विलुप्त हो गई थी।

उसकी पुत्री दूषित और पतित हो गई थी। उस वेश्यागृहकी वायुमें साँस लेनेमात्रसे भी तो स्त्री पतित गिनी जायगी। यही एक भयंकर तथ्य था जो अन्य समस्त भावनाओंको हटाकर उपस्थित हुआ था। दोष जिस किसीका भी हो, किन्तु तथ्य तो यही था। इसके विषयमें वह क्या करे? जिस सामाजिक नीतिके अनुसार उसे सदाके लिए एक धब्बा लग गया था, क्या उसके विरुद्ध कालू असहाय नहीं था? कालूका धर्म, भावना और तर्क-सरणि, ये सब जन्मसे ही निश्चित हो गये थे। यह सब तो उसे पूर्वजोंकी देन थी। किन्तु लेखा उसके लिए एक पवित्रताकी वस्तुसे कुछ अधिक थी। वह उसके प्यारकी एकमात्र आधार थी। यदि उसने उसे कम प्यार किया होता, तो जो कुछ हुआ था, उस सबको स्वीकार करके जैसी कुछ वह अब थी उसी रूपमें वह उसे अंगीकार हो जाती। सोना नहीं तो साधारण मिट्टी ही सही। किन्तु वह जो अपनी समस्त श्रद्धाकी भावनासे उसकी आराधना करता था उसके कारण वह उसका पूर्वकी पवित्रतासे च्युत होना सहन नहीं कर सकता था। अब उसका संघर्ष था उस दोष लगानेवाली पुरानी रूढ़िसे जिसने कि उसके अंतरंगका समस्त वायुमंडल तैयार किया था।

यदि यह संघर्ष कुछ घंटों या दिनोंमें निर्णयपर नहीं पहुँच सकता,

तो भी प्रत्येक दिन उस ओर एक कदम आगे तो बढ़ेगा ही। जो प्रति-क्रिया अदालतमें प्रारंभ हुई थी और जेलखानेमें पुष्ट बनी थी, वही अब हृदयके प्रेमकी प्रेरणासे अपनी पूर्णताको पहुँच रही थी। काल्‌को अब न केवल अपने जीवन-भरके बहुमूल्य गुणोंको अस्वीकार करना पड़ रहा था, किन्तु उसे उनका सर्वथा नामोनिशान मिटा डालना था। उसे अब यह अनिवार्य हो गया था कि वह अपने सामाजिक सद्‌गुणों-को जड़से उखाड़ फेंके और अपनी परंपरागत रूढ़ियोंको छोड़ दे।

जमीनपर बिछी हुई चटाईपर पड़े हुए काल्‌को दुखके तीव्र आघातोंने अपनी जड़ताका ज्ञान कराया और नवीन जीवनकी सूचना दी। वह वर्तमान्‌का सामना तो नहीं कर पा रहा था, किन्तु उसने वर्षोंकी स्मृतियोंके प्रवाहको बहने दिया। उसे अपने विगत जीवनके वे सुखी क्षण याद आने लगे, जो अब अच्छी तरह चिपके और चौखटोंमें जड़े पूर्वकालीन सुखके चित्रोंके समान थे। छोटी-सी लेखा घुटनोंको जमीनपर घसीटती हुई फिर रही है। जब वह अपने-आप पैरोंपर खड़ी होकर चली थी तब उसे उसके साथ कितना अपार हर्ष हुआ था? उसका वह प्रथम बार स्कूलको जाना, उसकी प्रगतिकी वे सूचनाएँ—क्या कभी पहले उसके जैसी कोई लड़की थी जो लगातार दस वर्षों तक स्कूलकी सभी परीक्षाओंमें सर्वोच्चसे नीचे न आई हो? स्कूल छोड़ने-की वह अन्तिम परीक्षाका थोड़ासा एक वर्ष ही शेष रहा था, और उसकी दूकानपर जब-तब आनेवाली प्रधान अध्यापिकाने विश्वासके साथ कहा था कि छात्रवृत्ति तो अब चन्द्रलेखाके हाथमें ही है—ऐसी छात्रवृत्ति जिससे वह कालेजमें भरती हो सकेगी।

यहाँ आकर काल्‌के सुखी क्षण एक अन्य ही चित्रमें परिवर्तित होने लगे। वह जन्म-समयकी गोरी लाल बच्ची, अपनी मृत माँके समीप पड़ी हुई, उसकी छोटी-छोटी मुट्ठियाँ बँधी हुईं और मुखपर रोनेकी रेखाएँ! उसी समय तो मिडवाइफकी सहायताके लिए आई हुई पड़ोसकी स्त्री-ने कहा था "चुप-चुप, माँको खानेवाली डाकिन!"

उस निर्दयताकी फटकारने उसके हृदयमें धड़कन उत्पन्न कर दी थी, और चुनौतीकी भावनाको दृढ़ कर दिया था। तभीसे उसका समस्त अस्तित्व अपनी बेटीकी सुरक्षाके लिए प्रबल ढाल बन गया था और गत समस्त वर्षोंमें वही बना रहा था।

तब क्या वह ढाल आज उसकी रक्षा नहीं करेगी, जब कि वह संसार-से अपमानित होनेके आतंकसे भयभीत पड़ी है? चुप, चुप, माँको खानेवाली डाकिन!

कालूका मुख बालकके समान चलने लगा और वह चिल्ला पड़ा। तथापि आवाज नहीं फूटी, क्योंकि उसने अपनी बाँहसे मुखको दबा लिया था। इससे पहले केवल एक बार और वह इसी प्रकारसे रो उठा था। वह उस रातकी बात है जब लेखाकी माँकी मृत्यु हुई थी। वह बहुत समय तक दुखसे व्याकुल रहा और उस बीच उसने अपने मोह और उन सुखी दिनोंकी लालसाको मनसे बाहर बहने दिया। तथापि उसके कान लेखाके कमरेकी आवाजकी ओर सचेत थे। उसने कुछ सुना। वह उठ कर बैठ गया और ध्यानपूर्वक सुनने लगा। जब उसे निश्चय हो गया, तब उसने अपनी धोतीसे मुँह पोंछा और दरवाजेसे भीतर प्रवेश किया। मोमबत्ती बुझ चुकी थी और कमरा अंधकूप बन गया था।

कालू लेखाको देख नहीं सका, किन्तु उसने उसकी धीमी और दबी सिसकियाँ सुन लीं। वह उसकी खाटके किनारेपर बैठ गया और हड़बड़ाते हुए उसने उसके मुखका स्पर्श किया। उसने अपनी कठोर उँगलियोंसे उसके आँसू पोंछे। किन्तु आँसू और अधिक तीव्रतासे आ आकर उसके हाथोंको भिगोने लगे।

अब वह क्या करे? उसे कैसे रोके? पिछले दिन होते तो वह उसे अपने पास आने देता और धीरे-धीरे थपथपा देता। प्रत्येक थपथपाहट-के साथ उसकी सिसकियाँ मन्द पड़ती जातीं और अन्तमें आँसू आकर गालोंपर बहना बन्द हो जाता। किन्तु अब?

"मैं भी तो तीन माह तक जेलमें पड़ा रहा", काल्लूके मुँहसे निकल पड़ा। फिर बड़ी तीव्रतासे वह लड़खड़ाते हुए बोला "मैंने, मैंने—चोरी की थी।" उसे अपनेको लेखाके धरातलपर लानेके लिए अपने अधःपातको प्रगट करना पड़ा। वह ओर उसकी पुत्री—अब दोनों समतलपर आ रहे थे।

लेखाकी सिसिकियाँ तो मन्द पड़ गईं, किन्तु बन्द न हुईं।

"जेलमें मुझे बैलके समान तेलके कोल्हूमें जुतना पड़ा। वहाँ मुझे एक आदमीने बतलाया था कि इस महानगरीमें कैसे-कैसे पाप किये जाते हैं। भूखी लड़कियोंको घरसे फुसलाकर···"

वह रुक गया और उसका मुख पीछेकी ओर फिर गया। वह उससे आगे नहीं कह सका। अपने अन्तिम अधःपातकी बात वह उसे अब भी बतानेका साहस नहीं कर पा रहा था, किन्तु उसे यह जाननेका कौतुक तो होगा ही कि उस समय वह रूपामें कैसे पहुँच गया? वह क्या कहे?

लेखाका हाथ अपने पिताके हाथकी ओर बढ़ा और पहलेकी भाँति दोनोंके हाथ जकड़ गये। लेखाने उसका हाथ अपनी पीठपर खींचा। काल्लूने हाथ फेरकर देखा कि उसकी पीठ सूज रही थी। वह चिल्ला उठा, "उन्होंने तुझे मारा?" और फिर बेदम होते हुए वह चिल्लाया, "उन्होंने तुझे पीटा?"

लेखाने इसके उत्तरमें फिर सिसकियाँ भरना आरम्भ किया। काल्लू उसकी पीठपर धीरे-धीरे अपनी अँगुलियाँ फेर-फेरकर कोड़ोंकी सूजन देख रहा था और उसके दुःखको बढ़ा रहा था। उसने अपने आप यह प्रश्न दुहराया "उन्होंने तुझे मारा?" और फिर वह गुर्राकर बोला, "उन्हें इसका मूल्य चुकाना पड़ेगा।"

काल्लूके मनमें अब बी–१० के जेलमें कहे गये शब्द नई सार्थकता धारण करने लगे। हम धरतीकी धूल हैं। ऊपरके लोग हमसे घृणा करते हैं। वे हमें वहाँ मारते हैं जहाँ चोट भारी लगती है। हमें भी उनपर जवाबी चोट करनी पड़ेगी।

"छः दिन हुए तब वह पहुँची थी। तुम्हें गाड़ीका धक्का लगा था और तुम अस्पतालमें थे। वह स्त्री वहीं काम करती थी और तुम्हींने उसे मुझको लाने भेजा था।"

"लेखा, मेरा पत्र? मैंने गत सप्ताहमें ही तो लिखा था गुरुवारको।"

"वह दुर्घटना केवल एक दिन पहले ही तो हुई थी। तुम्हें मेरी आवश्यकता थी। वह स्त्री तुम्हारा पत्र भी लिए थी। उसपर अस्पताल-का नाम भी छपा था। तुम्हारी बाँहमें चोट आई थी, इसलिए पत्र दूसरेके हाथसे लिखाया गया था।"

इस प्रकार ही तो वह उस जालमें फँस गई थी। और जब वे लोहे-के पंजे गड़कर······

लेखा बोलती गई। उसकी आवाजमें आवेगकी तीव्रता नहीं थी। वह धीरे-धीरे कह रही थी।

लेखाको सब घटना ऐसी दिखाई दे रही थी जैसे वह किसी और-पर बीती हो। वह रेलगाड़ीकी यात्रा। पिताके लिए उसकी आशंका। वह स्तम्भित करनेवाला भय, जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वह कहाँ लाई गई है। उसने उस स्त्रीके पाँव पकड़ कर दयाकी भिक्षा माँगी थी। किन्तु उस डाकिनने उसके मुँहपर एक लात जमाई। उसने उसका सिर पकड़ कर भूमिपर दे मारा जिससे उसके रक्त निकलने लगा।

"बस बहुत हुआ।" काल्रूने विनय की। "अब मैं···अब मैं··· और अधिक नहीं सुन सकता।"

लेखा चेतनाहीन-सी प्रतीत होती थी। उसकी आँखें सूखी और जल रही थीं। उसकी साँस ठंडी थी। दो बार वह मूर्च्छित होते-होते बची। काल्रूने हाथ पकड़ कर उससे आग्रह किया, "शान्त हो बेटी। सो जा। मैंने बड़ी क्रूरता की जो तुझसे यह बात पूछी।"

किन्तु लेखा कहती ही गई।

वेश्याघरमें उसने अपने पहले दो दिन कमरेके भीतर ही बिताए। दरवाजेपर ताला लगा था। खिड़कियाँ बन्द थीं। भोजन वह छू भी

नहीं सकी थी। रातको रेंगता हुआ भय असह्य हो उठता था। वह माँ, माँ कह कर चिल्ला उठती थी। उसकी प्रार्थनाएँ अनसुनी गईं ? "माँ ! माँ ! चलो··"

तीसरे दिन उसकी भूख असह्य हो उठी। उसने दो-चार कौर अन्न खाया। उसके अगले दिन भी उसने कुछ खाया। आज उस स्त्रीने उसके सामने खूब माल-टाल परोसे थे। उसके मनमें एक बेतुकी आशा बढ़ती जा रही थी कि किसी तरह बाबाको यह बात ज्ञात हो जायेगी और वे उसकी रक्षाके लिए आवेंगे। क्या बाबाको बराबर पता नहीं लग जाता था, जब कभी वह दुख या क्लेशमें पड़ती थी ? इतनी बात-से तो उसे सुख मिला था कि उसका बाबा अस्पतालमें नहीं था। उस स्त्रीने झूठ कहा था।

हाँ, वह उसी बेतुकी आशामें जी रही थी। फिर आज पाँचवें दिन उसे पुनः दोपहरको खूब माल-टाल खिलाए गये। उसने भी लोभसे पेट भर खाया। उस डाकिनने साँझसे ही उससे पापकी बातें करना प्रारम्भ कर दिया था। उसके राजी न होने पर उसने उसे कोड़ोंको मार लगाई। अन्तमें उसने लेखाके कपड़े छीन लिए, और उसे वह नीली, झीनी साड़ी पहना दी, और कुछ नहीं। उसने उसपर तेज इत्र भी छिड़क दिया।

वह रुक गई। उस गहरे अंधकारमें जहाँ वे एक दूसरेको देख नहीं पाते थे, पिता और पुत्री पत्थरकी मूर्तियोंके समान अचल बैठे रहे। उस असह्य निःशब्दताको उसकी अकस्मात् दुखभरी चीत्कारने तोड़ा "ना··ना··"

"चन्द्रलेखा ! कालूने जोरसे उसका हाथ पकड़ा। अपने हाथके स्पर्शसे उसने उसकी कँपकँपी देखी और कहा "बोल मत, लेट जा बेटी ! सो जा।"

"बाबा !" हृदयकी धड़कनको चीरती हुई उसकी आवाज निकली। "उस पिशाचिनीको यहाँ मत आने देना।"

"मेरी बेटी, मैं तेरी बाजूमें ही तो बैठा हूँ। तू निर्भय होकर सो। लेखा! लेट जा बेटी। अपनी आँखें बन्द कर ले और मेरी कहानी सुन। मैंने कैसे रेलगाड़ीकी पटरीपर खड़े-खड़े दो सौ मीलकी यात्रा की। क्या तू विश्वास करेगी कि तेरे बाबाने केले चुराए—वे फल जिन्हें तूने और मैंने कभी खानेके लिए पसन्द नहीं किये? तो सुन।"

अन्तमें थकान और मुक्तिके कारण लेखाको नींद आ गई। काल्ू खाटकी पाटीपर बैठा-बैठा मनकी उधेड़-बुनमें लग गया। हाँ, रजनी—और दूसरे भी उसके पीछे रहे होंगे। उसीने सारा जाल रचा होगा। अच्छा, माना यह सब पाप उन्हींने किया। किन्तु उसका भी तो उसमें हाथ है। उस वेश्याघरमें—या दूसरे वेश्याघरोंमें जिनमें वह काम करता था, चन्द्रलेखाके समान दूसरी लड़कियाँ भी होंगी। उसे तो कुछ पता ही नहीं कि उन घरोंमें भीतर ही भीतर क्या हो रहा है। उसे जाननेकी इच्छा भी नहीं हुई। उसे तो अपने कामसे मतलब था—ग्राहक ढूँढ़ लाना। और सब बातोंसे तो उसने अपनी आँखें और मन बन्द कर रक्खे थे। किन्तु यह सत्य तो है ही कि उसकी कमाईका कुछ भाग फँसाई हुई लड़कियोंकी दुर्दशा और उनके आँसुओं द्वारा आया था।

यह बड़ा भयंकर विचार था। उससे काल्ूको दम घुटनेके समान पीड़ा होने लगी।

किन्तु मैं कर ही क्या सकता था? काल्ू अपने आपपर चिल्लाया। मेरे सामने तो दूसरा कोई चारा ही नहीं था। जो कुछ मैंने किया, दूसरोंके करानेसे ही तो किया। किन्तु कैसे? क्या किसीने मेरा हाथ पकड़कर कराया था? किसने? इसके जिम्मेदार कौन हैं? वे—पर वे कौन? पुलिस? न्यायाधीश? धनवान लोग?

उसने जो कुछ पैसा बचाया था वह उसकी कमरसे बँधी बसनीमें बँधा पड़ा था। उसको अपना धन कहना, सड़े मांसको अपना कहनेके बराबर है। उसे क्या वह अपनी बेटीको खिलाने-पिलानेके काममें ला सकता है?

समाजने उसे पापी करार दिया था, जब कि उसने सचमुच कोई

पाप नहीं किया था। कालूकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। किन्तु अब जब वह सचमुच एक पापका धन्धा कर रहा है, तब लोग उसकी ओर हँसकर मुस्कराकर देखते हैं और उसे अच्छा दाम चुकाते हैं। वहीं सड़कके कोनेपर खड़ा पुलिसमैन जो उन नर-कंकालोंको देखकर आग-बबूला हो जाता था, उससे मित्रता करनेका प्रयत्न करता था। उसकी ओर आँखें मिचकाकर कहा करता था "कहो भाई! धन्धा कैसा क्या चल रहा है?"

नहीं! इस दुर्व्यवस्थाका कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ता। कालू असमंजसमें पड़ गया। चूँकि लोग उसे ईमानदारीसे नहीं रहने देते, तो क्या वे उसे सचमुच अपराधी बनाकर रखना चाहते हैं? अपराधी, जिससे उनका काम निकले?

और उसकी बेटी? उससे वे क्या अपेक्षा रखते हैं?

उसे इस प्रश्नका उत्तर ज्ञात था। उससे भी उनका काम निकलना चाहिए। उसे भी धब्बा लग चुका था।

उसके वहाँ पहुँचनेमें इतनी देर नहीं हो पाई कि वह उसे बचा न सका हो। उस दृश्यपर पहुँचते ही कालूके मुँहपर एक तनाव आ गया। उस स्त्रीने कोड़ा घुमाते हुए कहा था, "तू मेरे साथ छल करेगी, बीमार कुत्ते की नाईं वमन करनेवाली..." वेश्याघरमें कौन आदमी वमनसे मलिन हुई लड़कीको छुएगा? इसलिए तो वह मनुष्य रोषसे दरवाजा खोलकर बाहर निकल गया था। यही तो कारण है कि उस स्त्रीको उतना क्रोध आया। उसे जो अच्छा पारितोषिक मिलनेवाला था वह न मिल सका।

कालू ऐसी प्रत्येक बातको सावधानीसे पकड़ने लगा, जिससे उसका यह विश्वास दृढ़ होता हो कि, उसने लेखाको उचित समयपर बचानेमें देर नहीं की। लेखाके हृदयको बड़ा आघात पहुँचा था। किन्तु वह आघात सौगुना अधिक होता और उससे लेखा बिलकुल ही टूट गई होती, यदि उस मनुष्यने अपनी मनचाही कर ली होती। कालू अपनी पुत्रीको इतनी भली रीतिसे तो जानता ही था कि वह इस बातको समझ सके। यह तो सबसे उत्तम प्रमाण था—ऐसा प्रमाण जिसपर

उसका विश्वास भले प्रकार जम सकता था।

काल्लूने सोती हुई लेखाको निहारकर देखा और उसे आश्वासन मिला।

यह तो उसका विलक्षण भाग्य था जो वह उस पापके धन्धेमें लग गया था। नहीं तो चन्द्रलेखा भी अन्य कितनी ही लड़कियोंके समान नष्ट हो गई होती।

काल्लूने सुखकी साँस ली। भाग्यने लेखाके साथ क्रूरता करके भी अन्तिम क्षणमें उसकी रक्षा कर ली।

अब भविष्यकी बात सोचना चाहिए। आगे जीवनवृत्ति कैसे चलाई जाए? सड़कोंपर वहाँ भुखमरीका नग्न नृत्य हो रहा था। पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे, गर्भके बालक, जो अभी तक पैदा न हुए थे, सब ऐसे मर रहे थे जैसे खम्भोंसे बँधे हुए पशु। उनकी कोई याद भी नहीं करता था। उनके और लेखाके बीचमें यदि कुछ अंतर था तो केवल उन थोड़े-से रुपयोंका जो उसने बचा रखे थे। किन्तु वे रुपये तो बहुत दिन नहीं चलेंगे। और फिर उन्हींमेंसे कुछ घरपर उस बूढ़ी बुआके लिए भी भेजना पड़ेगा।

"तो अब मैं क्या करूँ?"

उसके मनमें एक विचार आया। क्या बी–१० ने एक उपाय नहीं बताया था? हाँ, है एक उपाय। केवल तुम्हें कुछ धनकी आवश्यकता होगी जिससे काम लिया जाय। अब काल्लू बी–१० की कही बातका एक-एक शब्द याद करने लगा। अपनी निस्सहाय अवस्थामें वह उपाय उसे आकर्षित करने लगा। वह चमत्कार दिखलानेकी बात उसे संभव प्रतीत होने लगी। वह अपने सिरको दोनों हाथोंके बीच थामकर बैठ गया। कुछ देर बाद उसने अपनी कमरमें बँधी हुई बसनीको टटोला।

हाँ, हाँ! एक उपाय तो है! ऐसा उपाय जिससे न केवल रोजी चल सके, किन्तु उनसे भी हिसाब चुकता किया जा सके।

वे हमें ऐसी जगह मारते हैं जहाँ चोट बुरी तरह लगती है। हमें भी बदलेकी चोट देनी पड़ेगी। हमें बदलेकी चोट देनी ही पड़ेगी।

आयोजन एक ऊँचे पूरे श्याम वर्णके ब्राह्मणने किया था। वह गेरुआ झंगा पहने था और उसके सिरपर एक टोपी और गलेमें रुद्राक्षकी माला थी। वह वट वृक्षके चितकबरे बाघम्बर पर पालथी मारे पद्मासन बैठा था और लगातार धुनसे मंत्रोच्चारण कर रहा था, "नमो शिवाय !" सुननेवाले बड़े शांत गंभीर भावसे उसीको दुहरा रहे थे, "नमो शिवाय।" ब्राह्मण फिर-फिरकर उसी मंत्र पर लहरा रहा था और बीच-बीचमें कभी-कभी अपनी पीतलकी गंगाजलीसे लेकर थोड़ा-सा जल भूमिपर डाल देता था। उसीके पास दूसरे बाघम्बरपर एक लड़की बैठी थी। वह भी पीले वस्त्र धारण किए थी। उसके लम्बे सघन बाल उसकी पीठ और बाँहोंपर लटक रहे थे। उसके गोरे कपालपर सिन्दूर पुता था। किन्तु उस धुनमेंसे जो उसकी आवाज सुनाई देती थी उसमें कुछ खोखलेपनका आभास मिलता था। उसकी मुखमुद्रा विलक्षण और कठोर थी। उस पीतलकी गंगाजलीपर चलनेवाले उसके हाथ ऐसे लगते थे मानों कोई पुतलीके हाथोंको धागोंसे बाँधकर नचा रहा हो।

इसके पूर्व प्रातःकाल ही वहाँकी सड़कपरसे जानेवाले एक साइकिल-वालेने उस ब्राह्मण और लड़कीको उस वट वृक्षके नीचे अपनी विलक्षण पूजा अर्चामें मगन देखा था। उसने साइकिल रोककर पूछताछ की थी, "यहाँ क्या हो रहा है ?"

इसका उसे कहींसे कोई उत्तर नहीं मिला। इससे वह उनकी हँसी उड़ाने लगा—"उस जगह कौन-सा खजाना छिपा हुआ है ? या तुम वहाँ वह आमका जादू कर रहे हो ?"

ब्राह्मणको ऐसी छछोरी बातें सुननेकी फुरसत नहीं थी। किन्तु उस युवती लड़कीने अपनी उदास आँखों और लटकते बालों सहित मुखको उठाकर कहा था—

"कोई खजाना नहीं है, और न कोई जादू-टोना है। केवल यहाँ भगवान् शिव प्रकट हो रहे हैं।"

साइकिलवाला उसकी ओर अविश्वासकी आँखोंसे घूर-घूरकर

देखने लगा ।

"शिव !" उसने चिल्लाकर कहा "यहाँ धरतीमेंसे शिव प्रकट होंगे ?

"स्वप्न तो ऐसा ही हुआ है ।" लड़कीने उत्तर दिया ।

"स्वप्न ?" रहस्य गहन-सा प्रतीत हुआ ।

लड़कीकी आवाजमें धीमापन और भावहीनता थी, मानों उसके ओठोंसे वे शब्द विवशतावश निकल रहे हों ।

"मेरे पिताको स्वप्न आया है । सोतेमें शिवजीने उन्हें दर्शन दिये और कहा—"मैं वेहुला रोडपरके उस खाली पड़े हुए बड़े प्लाटमें पुराने वटवृक्षके नीचे धरतीमें गड़ा हुआ हूँ—उस जगह जहाँ बमीठा है । बमीठेको हटाओ, उस जगह जल चढ़ाओ और वहाँ प्रकट होनेपर मेरा दर्शन करो ।"

इतना कहकर लड़कीने नवागन्तुककी ओरसे अपनी दृष्टि फेर ली और वह उसी साधनामें तल्लीन हो गई । यन्त्रचालितके समान उसकी आवाज अपने पिताकी आवाजमें मिलने लगी—"नमो शिवाय !"

उस मनुष्यको चेतना आ गई । वह मुड़ा और साइकिल उठाकर आवेगपूर्वक जोर-जोरसे पैडल मारता हुआ घरकी ओर दौड़ा । वह वहाँसे एक मील दूर घरके एक हिस्सेमें रहता था । साँस भी न समा पाई थी कि उसने अपनी पत्नी और बूढ़ी माँको उस नये चमत्कारकी खबर सुना दी ।

"चमत्कार !" बूढ़ी माँने चिल्लाकर कहा । फिर उसने सिरसे हाथ जोड़कर जाप किया "नमो शिवाय !" युवती स्त्रीने भी उसका अनुकरण करते हुए अपने हाथ जोड़े और मंत्रोच्चारण किया "नमो शिवाय !"

"मैं तो तुम्हें बतलानेके लिए बेदम दौड़ता आया हूँ, माँ ! क्या तुमने कभी ऐसा चमत्कार देखा है ?"

"केवल एक बार", माँने स्वीकार किया । "वह बात आजसे चालीस वर्ष पूर्वकी है । तब तुम बहुत छोटे थे, बेटा ! मैं अपने गाँवके घरमें रहती थी । दूर घासके खेतमें एक बड़े वट वृक्षके नीचे शिव भगवान् प्रकट हुए थे । पटेलने बहुत-सा दान दिया और वहाँ मन्दिर बन गया ।

आसपासके सात गाँवोंसे आकर लोग मन्दिरमें पूजा करते हैं। उस मंदिरसे अपने गाँवका खूब नाम हो गया और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई।"

"कोई स्वप्न भी आया था, माँ?"

बूढ़ी माँ अपनी भूरी भौंहें सिकोड़कर याद करनेका प्रयत्न करने लगी।

"हाँ, हाँ, बेटा! स्वप्न भी आया था। बात इस प्रकार प्रारम्भ हुई थी। अपने यहाँके चटर्जी बाबू उन दिनों बहुत दुर्बल अवस्थामें थे—जाति भरमें सबसे गरीब ब्राह्मण। महादेवजीको उनपर दया आ गई और उन्होंने रातको उन्हें स्वप्न दिया। जैसे-जैसे मन्दिरकी बढ़ती हुई, तैसे-तैसे चटर्जी बाबूकी अवस्था भी सुधरती गई। अब वे वैसे झुककर नहीं चलते थे। उनकी आँखोंमें भी चमक आ गई थी। अरे और तो और, वे जो कुछ हकलाकर बोलते थे—मुझे अभीतक याद है, लोग उनकी हकलाहटपर कैसे हँसते थे—उनकी वह हकलाहट भी मिट गई थी। वे मंदिरके पुजारी बनकर लोगोंके सिरपर चढ़ गये। उन्होंने जमीन भी खरीद ली और उनके जेटे लड़के कालीचरणका विवाह भी गंगोली बाबूकी दूसरी लड़कीके साथ हो गया। गंगोली बाबू उस जिलेके मजिस्ट्रेट थे। मैंने उस दिन सुना है कि··"

"माँ, अपनेको देर हो रही है। पता नहीं शिवजी कब प्रकट हो जायँ। किसी भी क्षण प्रकट हो सकते हैं। मैं जरा दौड़कर सब जनोंसे कह तो दूँ।"

"ठीक है, ठीक, बेटा!" बूढ़ी माँने स्वीकार किया। "तो दौड़ जा, पड़ौसमें सबको पता हो जाय कि शिव भगवान् प्रकट हो रहे हैं। महादेवजीने दया करके अपने इतने समीप दर्शन देना स्वीकार किया है। अरे, रिक्शासे वहाँ मंदिरतक पहुँचनेमें पाँच मिनट ही तो लगेंगे। सचमुच हमारा भाग्य फिर गया।"

"तो क्या वहाँ मन्दिर बनेगा?" पुत्रको शंका हुई। "छोटी-सी

मढ़िया बनी तब तो बात दूसरी है। किन्तु मन्दिर बनानेमें तो बहुत पैसा खर्च होगा। कौन देगा पैसा माँ?"

माँने जोर देते हुए उत्तर दिया।

"मेरी बात ध्यानसे सुन ले, बेटा! वहाँ कलकत्ता शहर भरसे भव्य और विशाल मन्दिर बनेगा। नहीं तो शिव भगवान् शहरके उस किनारेपर प्रकट होनेकी इच्छा ही क्यों करते! अरे, पैसा तो आसमान-से पानीकी तरह बरसेगा। अब देख, क्या-क्या होता है।"

इस प्रकार खबर चारों ओर दौड़ गई और उस सड़कके किनारे वटवृक्षके आसपास उत्सुक लोगोंकी भीड़ लग गई। भगवान्के प्रकट होनेमें विलम्ब हो रहा था। इससे और अधिक लोग वहाँ आ-आकर इकट्ठे होने लगे और तनाव बढ़ गया। मोटर गाड़ियाँ भी आ-आकर खड़ी हो गईं—कोई बीससे भी अधिक हो गई होगीं। फेरीवाले नाना प्रकारके खाद्य-पदार्थोंको लिए घूमने लगे। एक मनुष्यने टेबिल-सी बनाकर जमा ली और वह उसपर सोड़ा लेमनकी रंगीन बोतलें जमाकर बैठ गया।

भूखसे पीड़ित लोगोंका एक दल भी वहाँ आ पहुँचा। वे बंगालके किसी दूरवर्ती गाँवसे चलकर आए थे। वे रुककर उत्सुकतासे देखने-सुनने लगे। उनकी आँखोंमें आशाकी एक चमक दौड़ गई। क्या इस भगवान्के अवतारसे उनके दुखका निवारण न होगा? सम्भव तो यही जान पड़ता है कि देशके दुखका नाश करनेके लिए ही वहाँ महादेवजी धरती फाड़कर प्रकट हो रहे हैं।

भूख-पीड़ितोंका वह दल सड़कसे हटकर खेतमें बैठ गया और धैर्यपूर्वक बाट जोहने लगा।

× × ×

कालूकी पीठकी रीढ़ दुखने लगी। किन्तु उसका हृदय सन्तोषसे फूल रहा था। जिस चित्रकी उसने कल्पना की थी वह अब उसके सन्मुख अपनी ठीक-ठीक रूप-रेखा और रंगमें फैला हुआ था। वहाँ सैकड़ोंकी

आसपासके सात गाँवोंसे आकर लोग मन्दिरमें पूजा करते हैं। उस मंदिरसे अपने गाँवका खूब नाम हो गया और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई।"

"कोई स्वप्न भी आया था, माँ?"

बूढ़ी माँ अपनी भूरी भौंहें सिकोड़कर याद करनेका प्रयत्न करने लगी।

"हाँ, हाँ, बेटा! स्वप्न भी आया था। बात इस प्रकार प्रारम्भ हुई थी। अपने यहाँके चटर्जी बाबू उन दिनों बहुत दुर्बल अवस्थामें थे—जाति भरमें सबसे गरीब ब्राह्मण। महादेवजीको उनपर दया आ गई और उन्होंने रातको उन्हें स्वप्न दिया। जैसे-जैसे मन्दिरकी बढ़ती हुई, तैसे-तैसे चटर्जी बाबूकी अवस्था भी सुधरती गई। अब वे वैसे झुककर नहीं चलते थे। उनकी आँखोंमें भी चमक आ गई थी। अरे और तो और, वे जो कुछ हकलाकर बोलते थे—मुझे अभीतक याद है, लोग उनकी हकलाहटपर कैसे हँसते थे—उनकी वह हकलाहट भी मिट गई थी। वे मंदिरके पुजारी बनकर लोगोंके सिरपर चढ़ गये। उन्होंने जमीन भी खरीद ली और उनके जेठे लड़के कालीचरणका विवाह भी गंगोली बाबूकी दूसरी लड़कीके साथ हो गया। गंगोली बाबू उस जिलेके मजिस्ट्रेट थे। मैंने उस दिन सुना है कि…"

"माँ, अपनेको देर हो रही है। पता नहीं शिवजी कब प्रकट हो जायँ। किसी भी क्षण प्रकट हो सकते हैं। मैं जरा दौड़कर सब जनोंसे कह तो दूँ।"

"ठीक है, ठीक, बेटा!" बूढ़ी माँने स्वीकार किया। "तो दौड़ जा, पड़ौसमें सबको पता हो जाय कि शिव भगवान् प्रकट हो रहे हैं। महादेवजीने दया करके अपने इतने समीप दर्शन देना स्वीकार किया है। अरे, रिक्शासे वहाँ मंदिरतक पहुँचनेमें पाँच मिनट ही तो लगेंगे। सचमुच हमारा भाग्य फिर गया।"

"तो क्या वहाँ मन्दिर बनेगा?" पुत्रको शंका हुई। "छोटी-सी

मढ़िया बनी तब तो बात दूसरी है। किन्तु मन्दिर बनानेमें तो बहुत पैसा खर्च होगा। कौन देगा पैसा माँ ?"

माँने जोर देते हुए उत्तर दिया।

"मेरी बात ध्यानसे सुन ले, बेटा! वहाँ कलकत्ता शहर भरमें भव्य और विशाल मन्दिर बनेगा। नहीं तो शिव भगवान् शहरके उस किनारेपर प्रकट होनेकी इच्छा ही क्यों करते! अरे, पैसा तो आसमान-से पानीकी तरह बरसेगा। अब देख, क्या-क्या होता है।"

इस प्रकार खबर चारों ओर दौड़ गई और उस सड़कके किनारे वटवृक्षके आसपास उत्सुक लोगोंकी भीड़ लग गई। भगवान्के प्रकट होनेमें विलम्ब हो रहा था। इससे और अधिक लोग वहाँ आ-आकर इकट्ठे होने लगे और तनाव बढ़ गया। मोटर गाड़ियाँ भी आ-आकर खड़ी हो गईं—कोई बीससे भी अधिक हो गई होंगी। फेरीवाले नाना प्रकारके खाद्य-पदार्थोंको लिए घूमने लगे। एक मनुष्यने टेबिल-सी बनाकर जमा ली और वह उसपर सोड़ा लेमनकी रंगीन बोतलें जमाकर बैठ गया।

भूखसे पीड़ित लोगोंका एक दल भी वहाँ आ पहुँचा। वे बंगालके किसी दूरवर्ती गाँवसे चलकर आए थे। वे रुककर उत्सुकतासे देखने-सुनने लगे। उनकी आँखोंमें आशाकी एक चमक दौड़ गई। क्या इस भगवान्के अवतारसे उनके दुखका निवारण न होगा ? सम्भव तो यही जान पड़ता है कि देशके दुखका नाश करनेके लिए ही वहाँ महादेवजी धरती फाड़कर प्रकट हो रहे हैं।

भूख-पीड़ितोंका वह दल सड़कसे हटकर खेतमें बैठ गया और धैर्यपूर्वक बाट जोहने लगा।

× × ×

कालूकी पीठकी रीढ़ दुखने लगी। किन्तु उसका हृदय सन्तोषसे फूल रहा था। जिस चित्रकी उसने कल्पना की थी वह अब उसके सन्मुख अपनी ठीक-ठीक रूप-रेखा और रंगमें फैला हुआ था। वहाँ सैकड़ोंकी

भीड़ थी। जितने घण्टोंसे वे वहाँ रुके हुए थे, वे ही उनके श्रद्धाके प्रमाण थे। कुछ लोग अधीर होकर चले गये। श्रद्धाहीनोंसे पिंड छूटे, यही अच्छा। काल्लू अपनी आँखोंके कोनोंसे भीड़पर बराबर दृष्टि रख रहा था।

काल्लूका चित्त शान्त हो, सो बात नहीं थी। यदि देव प्रकट न हुआ तो क्या होगा? काल्लू इस काले भयको अपने मनसे दूर करनेका बराबर प्रयत्न कर रहा था। किन्तु वह बार-बार बढ़कर उसे अपने वशीभूत कर रहा था। धीरे-धीरे उसका भय इतना बढ़ गया कि उसे अपना यह पागलपन छोड़कर वहाँसे भाग जानेकी इच्छा होने लगी।

लेखाके मुँहपर पिलाई छा गई थी और वह थकानसे सुस्त पड़ गई थी। वह वहाँ प्रातःकालसे निर्जल उपवास किए पद्मासन जमाए बैठी थी। काल्लूका जी चाह रहा था कि उठकर अपने हाथसे उसके सिरको थपथपा दे। क्या उसे कोई सन्देह हो रहा था? उसने कोई प्रश्न नहीं किया था। केवल उसकी आज्ञाका पालन किया था। किन्तु उसकी जो दृष्टि बार-बार उसपर पड़ती थी उससे भयका भाव टपक रहा था।

धीरज रखो, बेटी, अब देर नहीं है। प्रत्येक आनेवाला क्षण अब उस महान् घटनाको निकट ला रहा है। यह काम धीरजसे ही करनेका है। नहीं तो सारा नाटक ही बिगड़ जाय; उसका महत्त्व ही घट जाय। धैर्य रख, चन्द्रलेखा!

ज्यों ही सूर्य पश्चिमकी ओर झुका, सन्देहके साथ-साथ भीड़के लोगोंका अधैर्य भी बढ़ा, तब काल्लूके हृदयका खटका भी शूल जैसा चुभने लगा।

यदि देव प्रकट न हुए तो क्या होगा?

काल्लूने अपना जनेऊ ब्राह्मण प्रथाके अनुसार अपने अँगूठेपर लपेटा। इससे उसका ब्राह्म बल बढ़ेगा। फिर उसने अपने काँपते हुए हाथको पेटपर रखा।

काल्लूका जनेऊ मोटा और नये धागेका था और उसमें नौ सूत भँजे हुए थे। वह मामूली धागा नहीं था। वह था ब्राह्मणोंका पवित्र

यज्ञोपवीत। उसको पहिननेमें काल्को बड़ा नैतिक संघर्ष करना पड़ा था। उच्च जाति प्रकट करनेके भयंकर छलका भी कोई पार था? कहाँ ब्राह्मणकी सर्वश्रेष्ठ जाति और कहाँ उसकी अपनी अत्यन्त नीच शूद्र जाति? ऐसा दुस्साहस तो बंगाल भरमें किसीने न किया होगा। काल्के मनमें सन्देहका संचार हुआ कि इसका अन्त कहाँ होगा? क्या जो कुछ बी-१० ने कहा था वह सब उसे ठीक-ठीक याद रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि बी-१० कोई आवश्यक बात बतलाना भूल गया हो। वह कुछ समयतक अपने काँपते हाथोंमें जनेऊका डोरा लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ चुपचाप बैठा रहा। क्या बी-१० ने इस विचारसे कि इस क्रियाको कोई कभी करने तो बैठेगा नहीं, कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण बात बतलानेसे छोड़ तो नहीं दी, जो शिवको प्रकट करानेमें अनिवार्य हो? अच्छा होता यदि वह इस बातका कुछ और अधिक विस्तारसे चित्रण कर देता कि इस छलको सफल कैसे किया जाय। किन्तु काल्ने उसकी अद्‍भुत बातोंको सुनते समय तो उसे केवल एक विनोद ही समझा था। उसे उन बातोंपर कोई भरोसा नहीं था। उन दिनों काल्के हृदयकी आशा मरी नहीं थी—यह आशा कि वह महानगर पहुँचकर अपने पसीनेकी रोटी कमाकर खाएगा। अब जीवनके इस चौराहेपर पहुँचकर काल् बड़े सोच-विचारमें पड़ा बैठा था। उस भयंकर चालको बिना फिसले, बिना खुले, अन्ततक कैसे निबाहा जाय?

अब और उपाय ही क्या है? बंगालके पेटसे निकलते हुए निराशाके दुस्साहससे काल्के अंतरंगमें बल्वेकी आवाज गंभीर हो उठी।

काल्ने अपनी आँखें मींच ली थीं। उसने अपनी साँस भी रोक ली थी। जनेऊके सूत्रको हाथोंमें पकड़कर उसने उसे बाँए कन्धेपरसे खुली छातीके आरपार कमरकी दाईं बाजूतक धारण कर लिया था। उस चिह्नको धारण करनेके पीछे उसका जो साहस था उससे वह काँप उठा। उस चिह्नसे उसने अपने भूतकालके भारी बोझको सिरसे उतारकर फेंक दिया था और तीन हजार वर्षोंकी कलतककी समस्त परम्पराका उपहास

किया था। यज्ञोपवीत धारण करके उसने अपनी समस्त जड़ोंको खोद फेंका था।

इस कार्यकी भयंकरताके पश्चात् कालूके हृदयमें मुक्तिके सुखकी-सी भावना आई। वह अपने जन्म और रक्तसे प्राप्त जीवन-स्तरसे ऊँचा उठ गया था। उत्साह और साहससे उसका हृदय भर गया था।

उसने जो शिवके प्रकट होनेका जाल रचा था उसे वह बड़ी अधार्मिक क्रिया समझता था। उसका जो पितृ-परम्परागत धर्म था उसका भी उसे ध्यान था। जब कभी वह किसी देवालय या धर्मायतनके पाससे निकलता तो उसके हाथ अनायास ही उठकर जुड़ जाते, और मस्तकपर पहुँच जाते थे। जब कभी लेखा बीमार हुई थी, या उसने अपने गाँवके पुजारीको पूजाके लिए फल, मिठाई या पैसे भेजे थे, तब ईशकी प्रार्थना उसके हृदयसे निकलती थी। ऐसा मनुष्य देवकी मूर्तिके विषयमें कपट जाल रचेगा, इसकी क्या कोई कल्पना भी कर सकता था? अब वही मनुष्य देवका पुजारी भी बनने जा रहा था। किन्तु उसके हृदयमें जो क्रान्ति उठ खड़ी हुई थी वह दबाई नहीं जा सकती थी। विरोधी था विवेक और न्याय; और इन्हींने कालूका कायापलट किया था। ब्राह्मणका रूप धारण करना उसके मौलिक परिवर्तनकी ओर केवल एक कदम था।

और जिस स्वप्नका लेखाने अपनी धीमी और बेबसीकी आवाजमें उस रहस्यमय रीतिसे वर्णन किया था, वह सचमुच ही कालूका स्वप्न था। हाँ, शिवका नहीं, किन्तु भयका।

कालूके भयका भूत फिर उसका पीछा करने लगा था। भय व्यावहारिक बातोंका था, जिसका कोई व्यावहारिक उत्तर नहीं था। यदि किसी दिन कोई झरनासे वहाँ आ गया और उसने उस लुहारका सुपरिचित मुख देख लिया? वह खबर चिनगारीकी तरह फैल जायगी और एक बड़ी आग उत्पन्न कर देगी। लोग क्रोधसे आगबबूला होकर उसपर टूट पड़ेंगे और मार-मारकर उसके प्राण ले लेंगे। यह सहज ही

हो सकता है।

उसी रात काल्रूने स्वप्नमें देखा कि वह मन्दिरके चौकके पास कुएँपर स्नान कर रहा है। उसी समय वहाँसे जेलखानेका एक सिपाही आ निकला। उसका नाम गंगूसिंह था। उसने वहाँ ठहरकर अपनी आँख मिचकाई। "अरे यह तो वही मनुष्य-सा दिखाई देता है जो अपने यहाँसे कोई तीन-चार माह पूर्व गया था। हाँ, उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें गायब हैं...। किन्तु वैसी सफाचट खोपड़ीवाला और कोई नहीं हो सकता।"

फिर गंगूसिंहने काल्रूकी छातीपर जनेऊ देखा और वह दंग रह गया।

यह भयंकर समाचार तुरन्त ही फैल उठेगा। तब उसे उस सिपाहीका स्वागत करना चाहिए और उसे अपने समीप आकर्षित कर उस कुएँमें ढकेल देना चाहिए। कोई देखनेवाला नहीं है। किन्तु काल्रू कर कुछ न पाया, और वह सिपाही जालीमें बँधी हुई अपनी घनी काली डाढ़ीको हिलाता हुआ वहाँसे चला गया। वह कहता जाता था—"हूँ! चींटीके पंख लग जाते हैं और फिर? चोर पुजारीका वेष बना लेता है—और फिर?"

बस, यहाँतक पहुँचकर स्वप्न समाप्त हो गया था और काल्रू जाग उठा था। उसका मुख और छाती पसीनेसे तर-बतर हो गये थे। तब उसने विचार किया—"मैं तो अब एक पत्थरकी चट्टान बन गया हूँ। मैंने अपने पूर्वके सब जन्म-जन्मान्तर नष्ट कर डाले हैं और यह नया साहसी जीवन प्रारम्भ किया है। जो मनुष्य मेरे भूतकालके अन्धकारमेंसे आया था उसे मैंने मार क्यों नहीं डाला? वह निश्चय ही मेरा सब भेद खोल देगा।"

किन्तु वह तो एक स्वप्नमात्र था।

अब जब सूर्य डूब गया और संध्याकी अँधेरी सघन होने लगी तब जिस भदरंगी भूमिको काल्रूने घंटोंतक जल चढ़ा-चढ़ाकर गीली कर डाली थी वह फट पड़ी और छोटे-से पाषाणका एक भाग अर्थात् शिवजी क्रमशः

ऊपर उठकर सबको दर्शन देने लगे। केवल वे ही थोड़े-से लोग इस महान् आश्चर्यको देख पाये जो वहाँ बहुत ही समीप बैठे हुए थे। वे एक क्षण-भर स्तब्ध होकर उस चमत्कारको देखते रहे। फिर विजयकी घोषणारूप उनकी मिलकर आवाज उठी "नमो शिवाय! भगवान्ने दर्शन दे दिए! स्वयं भगवान् शिव प्रकट हो गये!"

पूजा करनेवालोंके अंग-अंगमें बिजली दौड़ गई। वे पूर्णताको प्राप्त हो गये थे। उस चमत्कारसे उन्होंने नया जीवन धारण कर लिया था। उन्होंने जोर लगाकर आकाशतक अपनी आवाज उड़ाई ताकि सारा संसार उनकी आवाज सुन ले। चिल्ला-चिल्लाकर उनके गले फट गये।

लोग धक्कम-धक्का करने लगे और एक दूसरेको ढकेलकर आगे आने और भगवान्के दर्शन करनेका प्रयत्न करने लगे। उन धक्कोंसे बच्चे भूमिपर जा गिरे, स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं। दुर्बल लोग बेदम होकर निकल भागनेका प्रयत्न करने लगे। किन्तु वे भीड़में फँस गये थे और निकल नहीं पा रहे थे। अधिक साहसी लोग उस वट वृक्षपर चढ़ गये और जो शाखाएँ खाली मिलीं उनसे सरक-सरककर नीचे उतरने लगे। वृद्ध मनुष्य विवश होकर निराशासे रोने और अपने भाग्यको कोसने लगे, "अरे! सारे दिन तो हम इसी घड़ीके लिए यहाँ बैठकर तपस्या करते रहे, और जब वह घड़ी आई तब हमें भगवान्के दर्शनतक नहीं हो पाये। हम कितने अभागे हैं! क्या जीवनका यह महान् अवसर खाली चला जायगा?"

स्वप्नके समान अपनी इस सफलतासे कालू चकित हो गया। किन्तु वह अपनी गम्भीर मुद्रा और आसन जमाये रहा। फिर वह उठा और उसने चारों ओर देखकर आदेश दिया :—

"भगवान्का दर्शन सबको होगा। धक्का मत दो, भाई! जब शिव भगवान् प्रकट हो ही गये हैं तब वे लोप नहीं होंगे। धैर्य रखो। दर्शन करो और आगे बढ़ जाओ। अभी एक ही दर्शन बहुत हैं।"

इससे वह धक्का-धूमी बन्द हो गई। लोग व्यवस्थासे कतार बाँधकर वहाँ पहुँचने लगे जहाँ शिवजी धरती फाड़कर प्रकट हुए थे। देवतापर

रुपये-पैसे बरसने लगे। सैकड़ों रुपया जमा हो गये। स्त्रियोंने अपनी बाँहोंसे चूड़ियाँ उतार-उतारकर चढ़ा दीं। एक स्त्री पालकीमें बैठकर आई थी। उसने अपना हीरों-पन्नोंका जड़ाऊ हार ही चढ़ा दिया।

श्रद्धालुओंके साथ-साथ कुछ हँसी उड़ानेवाले भी थे। एकने पूछा "क्या भगवान् चैक स्वीकार करेंगे ?" काल्लू जान गया था कि चैक क्या होता है। वह कहना ही चाहता था "क्यों नहीं ?" किन्तु वह कहते-कहते रुक गया। उसने उस अपरिचित मनुष्यकी ओर केवल एक तीक्ष्ण दृष्टिसे देखा। सावधानी और संयमकी बड़ी आवश्यकता थी।

रुपया-पैसा सोना-चाँदी आदिकी चढ़ोत्तरी बढ़ती गई। काल्लू व्याघ्र दृष्टिसे देखता जाता था कि कहीं कोई उसमेंसे चुरा तो नहीं ले जाता। लोभी मनुष्यके लोभसे देव-द्रव्य भी तो सुरक्षित नहीं है। काल्लू मन-ही-मन- अन्दाज भी लगाने लगा कि कितना धन जमा हो गया होगा। तथापि उसे अधीर भी तो नहीं होना चाहिए। लोगोंके चले जानेपर ही रुपया-पैसा गिनना ठीक होगा। किन्तु लोग तो जोंकोंके समान चिपक रहे थे। काल्लूने पहले तो सन्देहभरे हृदयसे प्रार्थना की थी कि भगवान् करे वहाँ उसका चमत्कार देखनेके लिए खूब भीड़ इकट्ठी हो। किन्तु अब उसे उन लोगोंका रुका रहना असह्य हो उठा। गधे कहींके ! कैसे उल्लू बने ! काल्लू उनपर मन-ही-मन हँस रहा था। उसने भगवान्की सृष्टि की थी। उसने एक माहात्म्यकी कथाका सृजन किया था। यह माहात्म्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलेगा।

और भोजनके पदार्थ भी आ गये थे। 'खा लेखा, खा !' काल्लू ने धीरेसे कहा। काल्लूने जिन लोगोंको अमर पुण्यसे सम्पन्न बना दिया था वे कृतज्ञतापूर्वक भोजनके नाना पदार्थ अर्पण करनेका आग्रह कर रहे थे। किन्तु लेखा उस अन्नसे खेल मात्र कर रही थी। इन दिनों उसे भूख लगती जैसी प्रतीत ही नहीं होती थी। काल्लूने अपनी थोड़ी-सी बचतमेंसे उसके लिए बाघ बजार स्ट्रीटके प्रसिद्ध 'संदेश' खरीदे थे। वे दिन भी थे, कुछ दिन पूर्व ही, जब दूध-मिठाईके स्वादकी कल्पनासे ही उस लड़की-

के मुँहमें पानी आ जाता था। किन्तु अब उसे उसकी बिलकुल चाह नहीं रही थी। उसके भीतरका जीवन-रस सूख गया था। किन्तु इससे तो काम नहीं चलेगा। जो मन्दिर बनना अब प्रारम्भ हो रहा था उसके तो उसे बहुत समीप रहना है। उसे उस नाटकमें एक यथार्थ भूमिकामें उतरना है।

जिस लेखाको वेश्यागृहकी दूषित वायुका स्पर्श हो गया था उसे अब पवित्रताकी गन्ध धारण करनी थी। यह तो प्रारम्भ मात्र था। ज्यों-ज्यों मन्दिर ऊँचा उठेगा—और उठेगा अवश्य ही—त्यों-त्यों उसके शिखर-पर बैठी हुई लेखाका ऊँचा उठना अवश्यम्भावी था। आखिर उसीके लिए ही न कालूने इस साहसके मार्गका अवलम्बन किया था? जहाँतक उसकी अपनी इच्छाका प्रश्न है—कालू तो अपने छोटे-से गाँवमें लुहारीका दुकान करता तथा एक मुट्ठी चावल लेखाके लिए और एक मुट्ठी अपने लिए कमानेके निमित्त दिन उगनेसे आधी राततक परिश्रम करना ही अधिक पसन्द करता। किन्तु यह नहीं हो सका और बीचका कोई मार्ग मिल नहीं रहा था। कालूने अब असत्यपर सवारी की थी जो एक व्याघ्र-के समान थी। उसपरसे उतरकर भागनेकी सुविधा नहीं। ज्यों ही उतरे कि व्याघ्रने आक्रमण करके भक्षण कर डाला। वह चकरा देनेवाला असत्य, जो उसके मन्दिरकी आधारशिला था। पश्चात् उसी रात्रिको, जब उन लोगोंमेंसे अन्तिम भी वहाँसे हट गया और उसे केवल लेखाके साथ अकेले रहनेका अवसर मिला, तब कालूने बड़े धीमे स्वरमें उससे बात-चीत की। जीर्ण वटवृक्षके भी पैने कान होते हैं जिन्हें वह खोले रहता है।

"तूने मुझसे यह नहीं पूछा कि यह हुआ कैसे?"

"क्या बाबा?"

"अरी, यह भगवान्‌का प्रगट होना।"

लेखाने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। और उसने उसके विपरीत अन्धकारमें अपना मुँह छिपा लिया। कालू एक क्षण उसके उत्तरकी

प्रतीक्षा करता रहा, और फिर बोला—

"तूने वे सूखे चने देखे थे—वे दाने जो मैंने दो सेर खरीदे थे? वह तो मूल मन्त्र है। पहले तो मुझे एक ठीक-ठीक शिवकी पिण्डी ढूँढ़ना पड़ी। मैंने उस पत्थरको कुछ गढ़ा भी। उसे भीतरसे खोखला करके कुछ हल्का बनाया। फिर उसे धीमी अग्निमें जलाया, जिससे वह प्राचीन दिखने लगे। फिर मैंने उस चुने हुए स्थलपर गहरा सकरा गड्ढा खोदा। उस गड्ढेमें मैंने एक टीनका खाली डब्बा, ठीक-ठीक आकार और प्रमाणका बैठाया। उसमें मैंने वे चने भर दिये। डब्बा तीन चौथाई भर गया। उन चनोंके ढेरपर उस शिवकी पिण्डीको स्थापित कर दिया। पिण्डीके पत्थरका सिर गड्ढेकी किनारसे एक अँगुल नीचे रखा। इस एक अँगुल भूमि-भागको ऊखल मिट्टीसे भर दिया जिससे ऊपरकी भूमि समतल दिखने लगी।"

काल्लू अपनी इस गुप्त कलाको अपनी पुत्रीपर प्रकट करते-करते खूब उत्तेजित हो रहा था। लेखा बीच-बीचमें लापरवाहीसे 'हूँ' कह देती थी। काल्लू आगे बढ़ता गया।

"प्रातःकाल होते ही मैंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। मैंने उस खोखली भूमिपर पानी डालना प्रारम्भ किया—एक बारमें केवल एक चुल्लू। पानीने चनोंको फुला दिया। जैसे-जैसे चने फूलते गये वैसे-वैसे उनके ऊपरका पत्थर उठने लगा। यह कार्य धीरे-धीरे, घण्टे-घण्टेमें थोड़ा-थोड़ा हुआ जिससे अन्तमें वह चमत्कार दिखाई दे गया। धरतीका तल फूट गया और पत्थरका शिरा ऊपर दिखाई देने लगा। यह सब कुछ समयपर अवलम्बित था। मैंने बहुत दिनोंतक इस प्रयोगको करके देखा था। बड़ी उत्सुकताके दिन थे वे। कैसी बढ़िया बात है! है न, चन्द्रलेखा! तू क्या सोचती है?"

काल्लूने उस अन्धकारके परदेको छेदते हुए लेखाकी ओर देखा और उसके उत्तरकी प्रतीक्षा की।

"बढ़िया, बाबा!" लेखाने निर्मम भावसे कह दिया।

किन्तु काल्लूने लेखाकी आवाजमें दूर अतीतकी ध्वनि नहीं सुन पाई—वह ध्वनि जिसे वह कभी पूर्णतः नहीं भूल पाई थी और जो उसके हृदयमें बराबर गूँजती रही थी।

"लुहारकी लड़की! कह देना अपने बापसे कि वह ग्राहकोंको धोखा न दिया करे। उसने हमारी एक बालटी सुधारी थी, किन्तु वह फिर चूने लगी···"

आज वह ध्वनि उसके लड़कपनको चीरकर प्रबलतासे नये रूपमें प्रतिध्वनित हो रही थी।

काल्लूको लेखाके मनमें लहरानेवाले विचारोंका कोई पता नहीं था। कभी वह अपने आप ही लेखाके हृदयकी बात जान लेता था। वह अपने जीवनके ताने-बानेको परिवर्तन करनेवाले उस साहसी कार्यकी लेखापर उज्ज्वल प्रतिक्रिया देखनेके लिए उत्सुक था। इसे न देखकर उसे दुःख हुआ। लेखाको उसकी चालका कोई मूल्य नहीं दिखाई दिया। किन्तु उसके चमत्कारको वह अस्वीकार कैसे कर सकती? फिर वह चाल उसकी निजकी भी न थी। जेलमें बी–१० ने ही उसे बतलाया था कि कैसे क्या करना, कितने चने लेना, वे कैसे फूलेंगे, कितना समय लगेगा, इत्यादि। जरा भी गलती हो जाती तो सब चौपट था। इस विजयकी घड़ीमें कृतज्ञतापूर्वक बी–१० की याद आई। उसे यह अभिलाषा हुई कि वह भी उसका कुछ प्रत्युपकार करे।

"हम सब तो धरतीकी धूल हैं। ऊपरके लोग हमसे घृणा करते हैं क्योंकि वे हमसे डरते हैं······"

ज्यों ही काल्लूको ये सुपरिचित और विश्वासोत्पादक शब्द याद आए, त्योंही वह अपने आपपर मुस्कुराने लगा। अब तो वह धरतीकी धूल नहीं रहा। वह अब समाजका एक स्तम्भ बनने जा रहा है—वह स्तम्भ जिसका निर्माण दो सेर चनोंसे हुआ था। हाँ, यही तो बदला लेनेका मार्ग है। लुहारका पुनर्जन्म ब्राह्मणके रूपमें हो गया। एक सजा पाया अपराधी, वेश्यागृहका कर्मचारी, अब एक महन्त बन गया था। वह अब

धर्मवान् लोगोंके झुके मस्तकोंपर अपना आशीर्वादका हाथ रखेगा। इस प्रकार कर्म-चक्र घूम गया।

और उसकी पुत्री, उसकी लेखा, जिसे उन्होंने लांछित किया था? कालूका हर्ष छूट गया। क्या लेखा उसकी भावनाओंमें भाग लेगी, और उसकी सच्ची साथिन बनेगी? वह उससे भी अधिक सत्यार्थमें समाजकी धूल थी। उसकी पीड़ा उससे कहीं बहुत अधिक थी। उसे भी तो बदले-की चोट करनी चाहिए। क्या वह करेगी? क्या वह करेगी? वह बार-बार संकल्प-विकल्प करने लगा।

कालू इन दिनों अपनी लड़कीको बहुत कम समझ पाता था। क्या उसकी रक्षासम्बन्धी घटनाकी कहानीपर उसको विश्वास नहीं हुआ था? जेलमें उसने जो कुछ सुना था वह भी उसने लेखाको बतला दिया था। कुछ पापी लोग स्त्रियोंका व्यापार करते हैं और वे उनके लिए अपने जाल देशभरमें फैलाए रहते हैं। कुछ वेश्यागृहोंका नाम भी लिया गया था। उसकी जेलकी अवधि समाप्त होनेपर उसने उन वेश्यागृहोंपर अपनी दृष्टि रखी थी कि वह शायद किसी संकटमें पड़ी हुई स्त्रीकी कुछ सहायता कर सके। किन्तु उसने एक मूर्खता क्यों की? क्यों नहीं उसने लेखाको सचेत किया, जब कि वह जानता था कि समय बड़ा खराब है?

लेखाने बिना कुछ टीका-टिप्पणी किये ही चुपचाप अपना सिर झुका लिया था। किन्तु कालूने उसकी आँखोंमें एक विचित्र दृष्टि देखी थी। मानो वह उससे डरने लगी हो। उसके मुखपर खुले भावकी छाया नहीं थी। वह भीतर ही भीतर अपने हृदयमें कुछ छिपाए हुए थी जिसे कालू नहीं देख पा रहा था।

कालूने दुखकी ठंडी साँस ली, और वह अपरिचित-सी चुपचाप बैठी अपनी पुत्रीकी ओर उस अन्धकारके पर्देमेंसे एकटक देखता रहा।

९

"हम अधर्मियोंपर यदि यह देवताकी कृपा नहीं है तो और क्या है ? समीप-से-समीप जो देवालय था वह भी बहुत दूर है । अब तो हमारे द्वारपर ही मन्दिर बन गया ।"

लोगोंकी इस भावनासे धन बरसने लगा। किन्तु मन्दिरवाली जमीन जिन महाशयकी थी उनके साथ तो अभी निपटना ही था। वे महाशय कालूकी जातिके ही थे और उनकी लोहेकी दूकान क्लाइव स्ट्रीटपर थी। वे बहुत धनी थे और इसलिए कालू-जैसे अपनी ही जातिके निर्धन मनुष्यपर थूक देते थे। इसी बातके ज्ञानने कालूको निष्ठुर बना दिया था। कालूका संग्राम ठीक रीतिसे प्रारम्भ हुआ।

व्यापारी दौड़ता हुआ उस स्थलपर आया। वह कालूके व्यक्तित्वका मूल्यांकन करना चाहता था। अन्तमें वह जब बोला, तब क्रोधने उसकी आवाजको तीक्ष्ण बना दिया था।

"यह मेरी जमीन है। यहाँ यह क्या जादू-टोना हो रहा है ? कलकत्ता शहरमें कानून मर तो नहीं गया है !"

कालू चुपचाप सीधा उस व्यापारीकी आँखोंमें आँख मिलाए रहा। वह कुछ बोला नहीं। अन्तमें व्यापारी अधीर होकर चिल्ला उठा। "बोलते क्यों नहीं ?"

जब कालू बोला तब उसके शब्द छल-भरे किन्तु सौम्य थे।

"आप किस जातिके हैं ?" कालूने पूछा।

इस अनपेक्षित प्रश्नसे उस मनुष्यके पेटपर लात पड़ी। किन्तु वह जल्दी सम्हल गया।

"मैं यहाँ अपनी वंशावली बखानने नहीं आया हूँ। मैं यहाँ काम-

धन्धेसे आया हूँ। समझे ?"

"नीच जातिके लोगोंका बेटा, नाती और पोता" काल्ू मानों अपने आप कह रहा था। "वह यह भी नहीं जानता कि ब्राह्मण शिवके पुजारीके सम्मुख कैसे खड़ा होना चाहिए।"

फिर काल्ूका स्वर कठोर हुआ "नीचे झुककर प्रणाम कर।" "क्या ?" व्यापारीने हार नहीं मानी, यद्यपि वह कुछ घबड़ा अवश्य गया था। उसने ऐसी कठोर बातचीत की कल्पना नहीं की थी। "तो मतलबकी बातपर क्यों न आया जाय ?" व्यापारीके स्वरमें नर्मी आ गई थी।

"जब तक तुम नीचे झुककर प्रणाम न कर लोगे, तब तक तुम्हारे साथ कोई बात-चीत नहीं की जा सकती।"

कहकर काल्ू उन लोगोंकी टोलीकी ओर मुड़ा जो यह विचार कर रहे थे कि वहाँ अच्छेसे अच्छा मन्दिर बनवाया जाय। "सुनिए भाइयो..."

व्यापारी घबराया। अब उसने अपना अभिमान छोड़ा और खूब झुककर ब्राह्मणके चरणोंका स्पर्श किया।

"क्यों, महाराज, मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता।" व्यापारीकी दृष्टि छिपकर चारों ओर दौड़ गई।

"तो अब मैं तुझे अपने विचारोंकी रूपरेखा बतलाता हूँ।" काल्ूने फिर अपनी पैनी दृष्टि उसपर गड़ा दी। "इस भूमिपर एक मन्दिर बनना है। तुमने सब कुछ सुन ही लिया होगा, इसलिए उसे दुहरानेकी जरूरत नहीं है। लोगोंके पूजा-पाठके लिए एक देवालयकी आवश्यकता है। यदि तुम्हें इस बातमें आड़े आना है तो आओ, लोग तुमसे निपटेंगे। एक कानून उस कानूनसे भी ऊपर है जिसकी बात तुमने कही। यह तुम्हारे ही हितमें भला होगा कि तुम अच्छे मनसे धर्मके काममें इस भूमिको दे दो। अब तुम्हारे लिए और कोई मार्ग नहीं है।"

"किन्तु कीमत !" व्यापारी रोता-सा बोला। "इन दो वर्षोंमें जमीनकी कीमत दुगुनी हो गई है। जैसे-जैसे युद्ध चालू है और पैसा

पानीकी तरह बह रहा है, तैसे-तैसे इस जमीनकी कीमत भी बढ़ते-बढ़ते पहलेसे छहगुनी हो जायगी । मुझे तो ठहरना भर है । आप कैसे...”

“जरा जीभ बन्द कर । तेरा यह सब गणित अपनी दुकानके लोहे-लक्कड़के लिए ही बचा कर रख । यहाँ एक मन्दिर बनेगा; देवकी प्रतिष्ठाके लिए एक छप्पर । क्या तू शिवजीके लिए एक छप्पर भर भूमि देना अस्वीकार करेगा ? क्या तू मुझे रोक सकता है ? तो कर अपना उपाय ! बस मुझे इतना ही कहना है ।”

व्यापारी व्याकुल दिखाई देने लगा । उसने कुछ देर सोचा और फिर एक समझौता प्रस्तुत किया ।

“तो अब मैं अपना कर्त्तव्य निभाता हूँ । आगे जो मूल्य-वृद्धि होनेवाली है, उसे मैं छोड़ देता हूँ । मैं आजकी दरपर ही अपनी जमीन आपको बेचे देता हूँ । एक बीघा जमीन है...”

कालूकी जोरकी हँसीने व्यापारीकी बात रोक दी । यह सचमुच कल्जुग है । जब अकाल पड़ा है और हजारों लाखों मनुष्य भूखसे मर रहे हैं, तब भी मनुष्य मनुष्यके लिए दयापूर्वक कुछ नहीं देना चाहता । तब आश्चर्य ही क्या है कि मनुष्य देवोंको भी भक्तिपूर्वक कुछ नहीं देगा । क्या तुझे कोई भय नहीं है ? क्या तुझे शिवजीके वज्र-क्रोधकी कल्पनासे कँपकँपी नहीं उठती ?

कालू शिव, शिव, शिव, का जाप करते हुए अपने अँगूठेपर जनेऊ उमेठने लगा ।

व्यापारीके मुखपर आतंक छा गया । क्या पुजारी उसको शाप दे रहा है ? लड़खड़ाती जीभसे वह कहने लगा । “मेरा कोई अपराध नहीं है महाराज ! केवल मेरी स्थितिपर विचार कीजिए । मेरे ऊपर एक बड़े कुटुम्बके पालन-पोषणका भार है । यदि मेरा सामर्थ्य होता तो क्या मैं अपनी भूमि शिवजीको अर्पण करके पुण्य नहीं कमाता ? फिर भी मुझे अपना कर्त्तव्य तो करना ही चाहिए । मैं बाजार-भावसे आधा मूल्य छोड़

देता हूँ । मैं अपनी भूमिकी केवल आधी कीमत लूँगा ।"

कालू कठोर बना रहा । किन्तु वह स्थितिसे प्रसन्न हो रहा था । वह अपनी इस शक्तिसे चकरा गया । हाँ, ठीक । संग्राम सचमुच बहुत अच्छा चल रहा है ।

"तू समाजकी धूल है !" कालूने जोरसे कहा । वह उन सुपरिचित शब्दोंका एक नये प्रसंगमें प्रयोग कर रहा था । उसने फिर अपनी तर्जनी अँगुली उठाकर हिलाते हुए और व्यापारीको अपराध लगाते हुए कहा, "तू बंगालको उसके नाशकी ओर ले जा रहा है, तू और तेरी जाति । अरे, कौन सोच सकता था कि शिवजीको अपनी भूमिपर प्रतिष्ठित करानेमें तेरी छाती गर्वसे फूल नहीं जावेगी ? और तू यहाँ आकर शिवजीसे मोल-भाव कर रहा है !"

कालू ठहर गया । व्यापारीके अधार्मिक चारित्र्यसे मानों वह स्तब्ध रह गया हो । फिर उसके मुखपर कड़ाई आई ।

"नहीं, एक पैसा भी नहीं ।" कालूने चिल्लाकर कहा । व्यापारी मुँह बाये भौंचक्का-सा रह गया । आँखोंसे वह उल्लू जैसा दिखाई दे रहा था ।

"एक पैसा भी नहीं !" व्यापारीने एक कोरी प्रतिध्वनि की ।

अब विजयी कालूने कुछ नरमाई धारण की । वह अब कुछ उदारता दिखलानेमें समर्थ था ।

"तुम्हें इसका सुफल मिलेगा । इसकी मैं चिन्ता रखूँगा । मन्दिरके चौकमें हमारे खर्चसे एक संगमर्मरका पत्थर जड़वाया जायगा, जिसपर तुम्हारा नाम इस भूमिको दान करनेवालेके रूपमें लिखा जायगा । इस थोड़ेसे दानसे तुम सदा-सर्वदाके लिए अमर हो जाओगे, भाई ।" कालू देखता रहा और उसकी मोटी अँगुली हवामें नाचने लगी । "समझे ?"

मन्दिरके लिए भूमिके दान-पात्रकी रजिस्ट्री हो गई । किन्तु अब कालूके सम्मुख दूसरी समस्या उपस्थित हुई—अपना नाम । अभीतक वह केवल पुजारी नामसे प्रसिद्ध हुआ था । किन्तु सच्चा पुजारी तो वह

सफेद दाढ़ीवाला वृद्ध पुरुष था जिसे कालूने रख लिया था, क्योंकि वह स्वयं तो न कुछ पूजाका विधि-विधान जानता था और न कोई मन्त्रादि। यह सब जानकारी तो केवल ब्राह्मणोंकी वस्तु थी। अब आवश्यक था कि वह कोई उपयुक्त ब्राह्मण नाम धारण कर ले, जिससे उसके ब्राह्मण रूपकी पूर्णता हो जाय।

क्या इस काममें लेखा उसकी कुछ सहायता करेगी? वह छज्जेपर खड़ी थी और उसकी दृष्टि सड़कपर लगी हुई थी, जहाँसे एक मोटरगाड़ी धीरे-धीरे निकलती हुई विज्ञापन-पत्र बाँटती जाती थी। एक मनुष्य लाउड स्पीकरसे बोल उठा—'हरा साँप' कलसे विजय थियेटरमें चालू होगा। याद रखिए 'विजय थियेटर' जो अपने शहरका सबसे बढ़िया नाटकघर है। भूपाल अधिकारी और शिप्रादेवीका प्रधान पार्ट देखने लायक है। नाटक, नृत्य, मन बुझाऊ गाने...साथ-साथ खूब हँसी-मजाक और दिल दहलानेवाली दुर्घटना—सब कुछ है, जरूर आइए और देखिए।

लेखाने पिताकी बात सुनी और एक क्षण विचार किया। फिर वह सहसा मन्द-मन्द हँस पड़ी। कालू अचम्भेसे चौंक पड़ा। लेखाको हँसते देखकर उसको कितना आनन्द हुआ! वह मानो उसके विस्मृत पूर्व-कालकी एक चमक थी। किस बातने उसका ऐसा मनोरंजन किया होगा?

"वहाँ" लेखाने अपनी अँगुलीसे दिखाया।

"क्या?"

"भूपाल अधिकारी।"

कालू भौंचक्का-सा देखने लगा।

"अधिकारी ब्राह्मण उपनाम है। भूपाल बदलना पड़ेगा।" लेखाने फिर एक क्षण विचार किया। "नेपाल? कृपाल?" उसने अपना मस्तक हिलाया। "मंगल? मंगल अधिकारी?"

कालूने उसका अभिप्राय समझ लिया। "मंगल अधिकारी" उसने अपने आप कहा। एक क्षण पश्चात् फिर उसने उसी नामको दुहराया। अब वह संतुष्ट हो गया।

बात निश्चित हो गई। अगले तीन-चार दिन तक कालू चलते-फिरते उसी नामको जपता रहा "मंगल अधिकारी···मंगल अधिकारी···।"

दिन बीतते गये और मन्दिर ऊपर उठने लगा—एक छोटा-सा भवन, उसी वट-वृक्षके समीप। एक दिन मोतीचन्द नामका एक धनाढ्य दलाल वहाँसे अपनी मोटर-गाड़ीमें सवार हुआ निकला। वह लायन्स रेंजके स्टाक मार्केटको जा रहा था।

"जहाँ वह मन्दिर बना है, वहीं शिवजी प्रगट हुए थे।" मोतीचन्दके ड्राइवरने मन्दिरकी ओर इशारा करते हुए कहा।

"सच!"

ड्राइवरने विस्तारसे बतलाया।

मोतीचन्दको कौतुक हुआ। उसने अपनी गाड़ी रुकवाई और वह उस पुण्य-भूमितक पैदल गया। प्रातःकालकी पूजा हो रही थी। बूढ़ा पुजारी पूजा कर रहा था, तथा पास ही कालू और लेखा पालथी मारे और सिर झुकाए बैठे थे।

मोतीचन्दने उनकी ओर हिसाब लगाती आँखोंसे देखा। ये ही वे दोनों भाग्यशाली व्यक्ति हैं जिन्हें शिवजीका वरदान मिला है, क्यों? यह युवती तो महादेवजीकी अर्द्धाङ्गिनी गौरीकी मूर्ति ही है।

पूजा हो गई। मोतीचन्दने वेदीपर एक रुपया चढ़ाया और भगवान्‌की आराधनामें अपना मस्तक जमीनपर टेक दिया। फिर अकस्मात मुड़कर वह लेखासे बातचीत करने लगा।

"मेरा धन्धा शेयरोंका लेन देन करनेका है। आज मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही, क्योंकि बाजारमें बड़ा उतार है। बतलाइए, मैं खरीदूँ या बेचूँ?"

कालूने उस दुबले-पतले मनुष्यकी ओर घूर कर देखा। उसका मुख लम्बा बकरे-जैसा था और उसकी लम्बी नाक उसकी बड़ी-बड़ी घनी मूछोंपर जमाई-सी दिखाई देती थी। उसका प्रश्न एक चाल हो सकती थी। इससे उसने चुपचाप आँखोंके इशारेसे अपनी पुत्रीको सतर्क क

दिया। किन्तु लेखा उस इशारेको कुछ न समझ पाई। उसने मोतीचन्दकी बातका सहज उत्तर दे दिया।

"खरीदो··वेचो··खरीदो··बेचो।" उसके मुँहपर सदाकी भाँति शान्ति थी।

मोतीचन्दने अपनी आँखें घुमाईं। फिर उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अपनी गाड़ीकी ओर लौट पड़ा। वह अपने आप फुसफुसाता जाता था "खरीदो··बेचो··खरीदो··बेचो।"

खरीदो, पहले। क्या ऐसा किया जाय? यह तो बाजारके रुखसे विपरीत जाना होगा। बाजार बहुत मन्दा होता जाता है। यह तो वेचनेका मौका है, साफ करनेका?

"खरीदो··वेचो··खरीदो··बेचो।" मोतीचन्दने उन्हीं मन्त्राक्षरोंको दुहराया, जब कि उसकी मोटर गाड़ीने तेज गति पकड़ी।

सहसा उसने निश्चय कर लिया। मोतीचन्द शीघ्र निश्चय करनेवाला व्यक्ति था। "गाड़ी जल्दी चलाओ," उसने एक बड़ी जोखम उठानेका निश्चय कर लिया था।

फौलादके शेअर दो दिनमें छह आँक नीचे उतर गये थे। तेजीवालोंके लिए यह बड़ा घातक था। कौन कह सकता था कि मन्दी कहाँ जाकर रुकेगी? लोग कहते थे युद्ध शीघ्र समाप्त होनेवाला है। बाजारको शान्तिसे भय था, क्योंकि शान्ति होते ही उद्योगोंकी उत्पत्ति बन्द हो जायगी। बाजारमें हल्ला था "बेचो।" शीघ्र ही आर्डरोंका भुगतान करना कठिन हो जायगा।

मोतीचन्दने कार्यालयमें पहुँचते ही अपने मैनेजरको बुलाया और उसे एक सूची दिखलाई।

"खरीदो" मोतीचन्दने आदेश दिया।

मैनेजर मुँह बा कर रह गया।

"मैं तो समय रहते आपके वेचनेके आदेशकी प्रतीक्षा कर रहा था। मैं कमसे कम आधा घंटे पहलेसे आपके आनेकी वाट देख रहा था। गत

आध घण्टेमें प्रायः प्रत्येक स्टाक दोसे तीन रुपये तक नीचे गिर गया है। किन्तु अभी भी हम बिना भारी नुकसानके जोखम साफ कर सकते हैं।"

"खरीदो" मोतीचन्दने शान्त भावसे दुहराया।

मैनेजर आँखें फाड़े देखता रहा। मालिक अपने होशमें नहीं हैं। किन्तु मैनेजर उनसे तर्क-वितर्क तो नहीं कर सकता।

"कितने शेअर खरीदे जायँ?" अन्तमें मैनेजरने पूछा।

"पाँच हजार तक" कहते हुए मोतीचन्दकी आवाजमें एक क्षणके लिए कुछ कँपकँपी आ गई थी। किन्तु वह फिर स्थिर हो गया। "चालू दरके आसपास दस हजार भी खरीद सकते हो।"

तत्पश्चात् थोड़ी-सी घड़ियोंमें ही बड़ी मात्रामें शेअर, इस हाथसे उस हाथमें पहुँच गये। बाजार स्थिर हो गया।

बेचनेवाले और अधिक आये, किन्तु उनकी संख्या उत्तरोत्तर कम होती जाती थी। बात क्या हुई है? मोतीचन्द खरीद क्यों रहा है? अवश्य ही बोर्डने डिवीडेण्टके विषयमें अपना विचार बदल दिया होगा, और मोतीचन्द इस गुप्त बातको जान गया है। उसके आदमी सब तरफ लगे हुए हैं। वह कभी अन्धा बनकर जोखम नहीं उठाता। उसका एजेण्ट बाजारमें खड़ा मुस्कुरा रहा है, और बेचनेवालोंकी प्रतीक्षा कर रहा है।

धीरे-धीरे लहर पलटने लगी। बेचनेवाले रुक गये। तेजीवाले आगे बढ़ने लगे। मन्दीवाले अपनी भारी बेचानकी जोखमका सन्तुलन बनानेके लिए जोर लगाने लगे। उस घड़ी टेलीप्रिण्टरने उस माहके फौलादकी उपजका आँकड़ा छापकर दिखा दिया। उपजमें बहुत बढ़ती हुई थी। खरीदनेवालोंकी होड़ा-होड़ी लग गई। भावना प्रबल हो उठी। स्टील स्टाक्सका मूल्य बढ़ने लगा।

"खरीदो...बेचो...खरीदो...बेचो।" मोतीचन्दने इस जादूके मन्त्रको दुहराया, और वह अवसर देखने लगा। बाजार बन्द होनेमें केवल एक घंटेकी देरी थी।

तब धीरे-धीरे कहींसे बाजारमें बेचानके आदेश पहुँचने लगे। कौन बेच रहा है यह बात गुप्त थी। मोतीचन्द बड़ी चतुराईसे अपना हाथ खेल रहा था।

उस दिन बाजार बन्द होते समय फौलादके भाव खुलनेकी दरपर लौट आये थे। मोतीचन्दने अपने स्टाक उस दिनके ऊँचेसे ऊँचे दरके आसपास खलास कर दिये थे। उसके हिसाबमें उस दिन छह आँकोंका मुनाफा दिखाई दिया। यदि फौलादका भाव मन्दीकी ओर ही बढ़ता रहता तो मोतीचन्दका दिवाला निकल गया होता। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता था। शिवजीके मन्दिरकी उस सुन्दर बालिकाको अवश्य ही एक दिव्य दृष्टिका वरद्वान प्राप्त है।

दूसरे दिन मोतीचन्द फिर मन्दिरमें पहुँचा। उसने बातचीत करना प्रारम्भ किया। कालूकी दृष्टिमें कुछ तनाव आ गया। किन्तु थोड़ेसे वार्तालापके पश्चात् ही कालू आनन्दके आवेगसे चमक उठा। उसके और मोतीचन्दके बीच कोई एक घंटेतक बातचीत होती रही।

मोतीचन्दने मन्दिरका काम पूरा करा देना स्वीकार कर लिया। मन्दिरका भवन सुन्दर होगा। चिल्लर जोड़ते फिरनेकी आवश्यकता नहीं। जिन शिव भगवानने मोतीचन्दके निवासस्थानके समीप प्रकट होनेकी कृपा की है, उनकी एक भव्य और विशाल देवालयमें प्रतिष्ठा की जाएगी।

"मैं तो मनुष्यको उसके मुँहसे पहचान लेता हूँ।" मोतीचन्दने मित्रताके भावसे मुस्कुराते हुए कहा। उसे इसका लेशमात्र भी पता नहीं चला कि उसका सुननेवाला उन शब्दोंसे किस प्रकार चौंक उठा था। मोतीचन्द कहता गया, "मैं समझ गया कि इतने लोगोंमेंसे शिव भगवान्ने तुम्हें ही क्यों पात्र बनाया। हमारे इस महानगरके सैकड़ों और हजारों मनुष्य भक्ति और श्रद्धासे आपके चरणोंकी वन्दना करेंगे।"

पश्चात् कालूने बड़े हर्षसे चन्द्रलेखासे कहा "चक्र घूम गया और हमारा भाग्य आशासे अधिक खुल गया। कैसी-कैसी अद्‌भुत् बातें होने लगीं हैं?" उसकी आँखोंमें बल आया। "वे दान दे रहे हैं। वे अपनेसे

नीच जातिके पैरों पड़ते हैं। वे उस देवकी प्रार्थना करते हैं जो देव है ही नहीं। कौन-सा प्रायश्चित्त कभी उनकी आत्माको धोकर साफ कर सकता है? वे दूषित हैं, पतित हैं। वे जन्म जन्मान्तरके लिए डूब चुके हैं।" कालू रुक गया। उसके मुखपर विनोदका भाव झलक उठा था। उसका स्वर बदल गया। "कल एक आदमी आया और उसने बड़ी विनयसे मेरे पैर छुए। लेखा, वह अन्य कोई नहीं, वही मजिस्ट्रेट था जिसने मुझे जेलका दण्ड दिया था, वही दण्डाधिकारी जिसने मुझसे पूछा था "तुम क्यों जीना चाहते हो? तुम्हारी पुत्रीको क्यों जीती रहना चाहिए?"

लेखाने उसके सन्तोष अथवा विजयकी भावनाको नहीं बढ़ाया। उसने सरल भावसे पूछ लिया: "इसका अन्त कहाँ होगा?"

"कौन-सा अन्त अपने प्रारम्भसे अधिक बुरा हो सकता है, लेखा? क्या इतना पर्याप्त नहीं है कि दो बातोंमें हमारी जीत हो चुकी है? एक तो अब हम कभी भूखों नहीं मरेंगे और दूसरे अपना बदला भी चुका रहे हैं।"

"यह असत्यका बोझ मेरी छातीपर भारी प्रतीत हो रहा है, बाबा।" चन्द्रलेखाने कहा।

कालू उसकी ओर घूरकर देखने और उसकी बेचैनीको समझनेका प्रयत्न करने लगा। "सुन" कालूने उसे शांत करनेका प्रयत्न किया। किन्तु वह आगे कुछ भी न बोल सका। उसका मुँह जम गया। वह अपना मुँह फेरकर वहाँसे चला गया।

किन्तु कालूको किसी शिकायतका कारण उत्पन्न नहीं हुआ था। लेखाने कभी कोई विरोध भी नहीं किया था, न शब्दोंमें और न कार्योंमें। वह जैसे आधी नींदमें हो। वह अपने पितापर अवलम्बित थी, और घरकी सब छोटी-छोटी बातोंमें भी उसकी सलाह लेती रहती थी।

कालूने सड़कके उस पार मन्दिरके सामने एक घर किरायेपर ले लिया था। वह अपनी पुत्रीके साथ उस घरकी ऊपरी मञ्जिलमें रहता था। नीचेकी जगह उसने बूढ़े पुजारी और उसकी स्त्रीके लिए छोड़ रखी थी।

जब उसकी झगड़ालू स्त्री उसकी हँसी उड़ाती थी, तब वह कहता, "अच्छा ऐसा ही सही। किन्तु गाँवके लोगोंसे तुम और अधिक क्या आशा करती हो? वह गाँवके मंदिरका छोटा-सा पुजारी था। भूखसे भागकर वह यहाँ अपने कलकत्ता शहरमें आ गया। किसानों और मजदूरोंके बीच रहे हुए पुजारीको अपने ज्ञान और पांडित्यका शतांश भी कैसे हो सकता है? किन्तु उसकी अन्तरात्मा सत्य है। वह अपनी अभ्यस्त पूजाके लिए बड़ा आतुर रहता था। देवताने उसकी भक्ति और आराधनासे प्रसन्न होकर उसपर दया की और नया मंदिर बनानेका मार्ग बतला दिया। जब भगवान् शिवने स्वयं वरदान दिया है, तब निश्चित है कि उसने अपने पूर्व जन्मोंमें खूब पुण्य कमाया होगा।"

फिर पुजारीका स्वर नीचेकी ओर उतरा और उसने कहा—"इसके अतिरिक्त, वह मुझे अच्छा वेतन देता है और मेरे साथ भाई जैसा बर्ताव करता है। अब तुम्हें और क्या चाहिए?"

उसकी स्त्रीने दूसरी दिशा पकड़ी। "उस छोकरीको तो देखो। उसकी पुस्तकोंका ढेर। ऐसा लगता है जैसे उसे नित्य नई पुस्तक चाहिए। उसके पेटमें तुमसे अधिक ज्ञान भरा है। एक-न-एक दिन वह मंदिरमें तुम्हारा स्थान छीन बैठेगी।"

पुजारी हँस पड़ा और उसका हाथ दाढ़ीपर फिरने लगा। "वह लड़की उदास रहती है।" इतना ही पुजारीका उत्तर था।

उसकी पत्नी आँखें गड़ाकर देखने लगी। "तुम्हें लाज नहीं आती? पुजारिनने अपना दुबला हाथ उसके मुँहपर घुमाते हुए कहा। क्या तुम्हारी दृष्टि उसपर पड़ चुकी है?"

"क्या मूर्खताकी बातें करती है?" बुड्ढेने विरोध भावसे उत्तर दिया। "वह तो···"

"क्या तुम्हारी सूखी और खोखली हड्डियोंमें जोरदार नया रस आ गया है? तुम समझते हो मैंने तुम्हें उस छोकरीपर नजर डालते नहीं देखा? मैं अभीतक मरी नहीं हूँ। मैं इन दो हाथोंसे उसका गला घोंट सकती हूँ।"

"शिव ! शिव !" पुजारी विवशताके साथ चिल्ला उठा, "उसने तेरा क्या बिगाड़ा है ?"

"तुम उसका पक्ष लेने चले हो ? तुमने सब लाज-शरम खो दी । तुम ऐसे मैले हृदयको लेकर अपनेको पुजारी कहते हो ? तुम्हारे रोमोंके पसीनेसे तुम्हारा जनेऊ काला पड़ रहा है । तुम्हारी साँससे मंदिरकी वायुमें दुर्गंध आने लगी है ..."

पुजारीने जल्दीसे अपने हाथ उठाये और अपने कानोंकी लौंडी पकड़ ली, जिससे उसे इन अधर्मकी बातोंको अपने पवित्र कानोंके द्वारा सुननेका पाप न लग जाय । जब उसे अपनी स्त्रीकी बकझक अधिक सहन न हुई, तब वह उठा और ग्लानिसे अपना सिर हिलाता और कुछ गुनगुनाता हुआ घरसे बाहर खिसक गया ।

पुजारीने लेखामें जो उदासपन देखा था, उसकी उसके पिताको रात-दिन चिन्ता रहती थी और वह सदैव उसके मन बहलानेका उपाय खोजा करता था । किन्तु लाभ क्या ? लेखाके हृदयपर कोई ठंढा हाथ पड़ा हुआ था; जीवन-सुखके विपरीत कोई बरफकी दीवाल उठ खड़ी हुई थी । इससे उसकी मुक्ति कैसे कराई जाय ? किसी आवाजसे वह चौंक पड़ती थी । एक विनोदकी बातसे उसका मुख पीला पड़ जाता था, और आँखोंमें एकदम आँसू भर आते थे । उसकी आयुकी सहेलियोंसे सम्भवतः उसे उसके दुःखोंसे छुड़ाया जा सके । किन्तु काल्लू तो स्वयं ही असहाय और अकेला था, जैसा वह पहले कभी नहीं रहा था । उसने जाति-पाँतिके अड़ंगोंको तो पार कर लिया था, किन्तु उनके स्थानपर दूसरे उत्पन्न हो गये थे । वह केवल उच्च वर्णके लोगोंमें ही चल सकता था, जिनके साथ उसके हृदयमें कोई सहानुभूति नहीं थी । उनसे तो दूर ही रहनेमें भलाई थी, क्योंकि, सम्भव है उसके ब्राह्मण-वेशमेंसे कमारकी झाँकी दिखाई दे जाय !

संभवतः लेखाकी समस्याका सबसे अच्छा हल यह हो सकता है कि वह स्कूल जाने लगे । काल्लूको उसके उन उत्सुकता-पूर्ण पत्रोंकी याद

आई जिसमें उसने उस महानगरके स्कूलोंके विषयमें पूछताछ की थी। तब उसने उसे एक गलत चित्रण दिया था, केवल इस अभिप्रायसे कि उससे वह प्रसन्न होगी। मानो उन दिनों वह स्कूलमें ली जा सकती हो जब कि वहाँ लड़कियोंको एक विशेष पोशाक पहिनना पड़ती थी। अब आजकी बात और है। लेखाका चाहे जहाँ स्वागत हो सकता है। तो अब उसे लेखाके स्कूल जानेकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। इस निश्चयसे काल्को एक बड़ी चिन्तासे मुक्ति मिली।

"स्कूल, बाबा!"

एक क्षण ऐसा प्रतीत हुआ मानो हर्षकी उज्ज्वलता लेखाके मुखपर लौट आई हो। किन्तु वह इतने जल्दी विलीन हो गई कि जैसे मानो वह कोई भ्रम हुआ हो।

"इन थोड़ेसे सप्ताहोंमें मैं अपनी आयुसे बीस वर्ष अधिक जेठी हो गई हूँ। अब मेरे स्कूल जानेका समय नहीं रहा, बाबा! उसने सिर हिलाया और फिर कहा, "मैं स्कूल जानेके लिए बहुत बड़ी हो गई हूँ, बाबा!"

काल्‌ू चकरा गया, जब लेखाने कहा "मैं अपनी आयुसे बीस वर्ष अधिक जेठी हो गई हूँ।" क्या ये वे ही शब्द नहीं हैं जिन्हें उसने बी-१० के मुखसे सुना था। आश्चर्य है कि लेखा और बी-१० दोनों वही अनुभव करें और उसे उन्हीं शब्दोंमें व्यक्त करें।

एक दिन काल्‌ू एक कार्ड-बोर्डका बड़ा-सा बाक्स लेकर आया और और उसे अपनी पुत्रीके सन्मुख बड़े तपाकसे रखते हुए बोला—

"मैं तेरे लिए कुछ लाया हूँ। अन्दाज लगा, क्या होगा?"

लेखाने बिना किसी कौतुकके बाक्सकी ओर देखा, फिर उसने पिताकी ओर देखकर अपना सिर हिलाया। वह अब अपनी आवश्यकताओंसे विचलित नहीं होती थी और अभिलाषाओंके तो परे थी।

"अरी रेडियो सेट!" काल्‌ूने प्रसन्न मुखसे कहा। "बस, तू केवल मूठ घुमाना—सीखना बिलकुल सरल है—और यन्त्रमें गाना निकलने लगेगा। इसमें फोनोग्राफके समान चाबी नहीं भरनी पड़ती। झरनामें

उस वकीलके पास—उसका नाम सतीश घोष था—ऐसा ही रेडियो था। जब कभी मैं उसके घरके पाससे निकलता था और रेडियोका गाना सुनता था, तभी मेरी इच्छा होती थी कि मैं तेरे लिए भी एक रेडियो ले दूँ। किन्तु यह बात तो उस समय चन्द्र माँगनेके समान थी।"

काल्लू अपने हृदयमें आशा बाँध रहा था। किन्तु क्या वह संसार जो चन्द्रलेखाके लिए मरकर साफ हो चुका है, किसी प्रकार फिर जी उठेगा और रेडियो सेट द्वारा अपने कंठसे झनझनाने लगेगा?

उसने लेखाके कमरेमें ऐरिअल लगाया, जैसा कि रेडियोवालेने बतलाया था। फिर उसने लेखाको उसकी मुट्ठियों और डायलका चलाना सिखाया। "सुईको तब तक घुमाते चलना चाहिए, जब तक कि कोई गाना न फूट निकले। हो सकता है, तुम्हें वह गाना पसन्द न हो। तब फिर मुट्ठी घुमाओ और देखो कि सुई सरकती हुई ऐसी जगह पहुँचती है जहाँसे तुम्हारे मनकी चीज आ रही हो—गाना, बजाना, कोई घरेलू वार्तालाप या बच्चोंको कैसे पालना इसका व्याख्यान।"

घरेलू वार्तालाप! बच्चे! काल्लू रुक गया। उसके मनमें एक नया विचार उठ खड़ा हुआ। अब समय आ गया है कि लेखाका विवाह हो जाय। किन्तु ब्याह तो वह किसी ब्राह्मण युवकसे ही कर सकती है। इस बातपर पहले लेखा राजी तो हो। जब तक वह अपनेको बदल नहीं लेती, कुछ मेल नहीं बैठा लेती, तब तक वह अपने वैवाहिक जीवनमें इस बनावटी ढोंगका निर्वाह कैसे कर पावेगी?

रेडियोमें वायुमण्डलकी घरघराहट हो उठी और उससे काल्लूकी विचारधारा टूट गई। उसने स्विच घुमाकर रेडियो बन्द कर दिया। लेखा दीवालसे टिकी बैठी थी, उसका सिर पीछेको झुका था। मुखपर जीवनकी शून्यता छाई थी। रेडियोके गाने और घरघराने और बन्द होनेका उसपर कोई प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं देता था। काल्लूने अपनी आँखें मोड़ लीं। वह अपनी इस समस्यासे हैरान और विवश था। यद्यपि उसकी प्रख्यातिका चित्र, उसका मन्दिर, उसकी दृष्टिमें सदैव रहता था।

किन्तु वह उसे कार्डबोर्डके चित्र समान क्षणभंगुर-सा लगता था और उसकी पुरानी कथाका स्रोत पुनः पुनः प्रवाहित हो उठता था। उसे कोई सचाईका धन्धा मिल जाता तो कितनी अच्छी बात थी !

अकस्मात् अपने लम्बे हाथके घुमावके साथ कालूने अपनी दुर्बलता-को दूर हटा दिया। बात केवल जीवन-वृत्तिकी ही नहीं थी। बदला लेनेका भी तो प्रश्न था ! "हमें बदलेकी चोट करना है।" तो यह काम मन्दिरके सिवाय और किस साधन द्वारा अधिक अच्छी रीतिसे हो सकता है ? उन्हें झूठे देवकी प्रार्थना करने दो, और उनकी मोती और जवाहरोंसे लदी सती और अहंकारी स्त्रियोंको एक ऐसी लड़कीके पैर पूजने दो जो अधःपतन तक पहुँच गई थी।

कालूके हृदयमें जो कटु हास्यकी लहर उठी उसे उसने दबा लिया। कहीं लेखा ऐसा न सोचने लगे कि उसका बाप पागल हो गया है।

वह फिर रेडियोकी ओर मुड़ा।

"सो अब देख लिया बेटी, यह कैसा चलता है ?"

"हाँ, बाबा !" लेखाने स्वीकृतिसे कुछ सिर हिलाया। तथापि कालू जानता था कि उसका हृदय भाव-शून्य है।

"क्यों, एक दिन···।" कालूने अपने स्वरमें सजीवता लानेका प्रयत्न किया। "एक दिन अपना—अपना निजका घोड़ा खरीद लेंगे और बग्घी भी बनवा लेंगे। तब लोग तुम्हें देखेंगे और आश्चर्यसे चिल्लाएँगे, "यह कौन होगी ?"

लड़कीके मुखपर एक क्षण प्रकाशकी रेखा दौड़ गई।

"हजारों स्त्रियाँ गाड़ियोंमें बैठकर सड़कपरसे निकलती हैं। कौन उन्हें देखनेके लिए रुकता है, बाबा !"

"अरी तू उनसे बहुत ऊँचेपर है। तू लाख-करोड़में एक है।" लेखाके प्रत्युत्तरसे कालूको प्रसन्नता हुई थी। "क्या तू यह नहीं जानती ?"

लेखाने उसकी ओर शान्त-भावसे देखकर कहा—"आप ही ऐसा समझते हैं !"

लेखा जल्दी-जल्दी सीढ़ियोंपर चढ़ी। बन्द दरवाजेसे धुँआ बाहर आ रहा था। लेखाने दरवाजा खटखटाया और अन्तमें उसे धक्का देकर खोल लिया। भीतरसे कुण्डी नहीं चढ़ी थी। वह भीतर घुस पड़ी और एक दृष्टिमें सब कुछ समझकर ब्राह्मणीके देखते न देखते उसने तुरन्त दरवाजा बन्द कर लिया।

काल्लू जमीन पर बैठा-बैठा नली फूँक रहा था और मरम्मतके लिए आई हुई अपनी ही एक बाल्टीपर थेगड़ा चढ़ानेमें व्यस्त था। उसके मुख और गलेपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। उसने आँखें उठाकर अपनी बेटीकी ओर देखा और आँखें मींचकर रह गया।

लेखा खुलकर हँस पड़ी और उसने अपने मुँहको हाथोंसे ढँक लिया।

"यह कैसा योग है? हम साँस रोककर बन्द दरवाजेकी ओर देखते थे, यह समझकर कि आप यहाँ कैवल्य प्राप्त कर रहे हैं।"

किन्तु काल्लूने श्रद्धाभरी आँखोंसे अपनी पुत्रीको देखते हुए कहा "मेरा योग पूरा हो गया। मैंने अपनी चन्द्रलेखाको पहले जैसा हँसते हुए देख लिया। यही मेरा कैवल्य है।"

किन्तु वह लुहारी काम-काज तुरन्त छोड़ देना पड़ा, क्योंकि वह धुएँकी बात सब ओर फैल गई थी। उसी रात्रिको काल्लूने अपने वे सब हथियार मन्दिरके कुएँमें डाल दिये। पानीमें उनके डूबनेकी ध्वनि सुनकर उसने लम्बी साँस ली। अब फिर खाली हाथों समय कठिनाईसे कटेगा।

रेशनकी वस्तुएँ—सिमेण्ट, लोहा, पीतलके पेंच आदि और बहुत-सा सामान—युद्धके कारण दुर्लभ था। किन्तु वे काले बाजारसे धारा-प्रवाह आ रही थीं। पूरे चार माह भी न होने पाए थे कि देवालय प्रायः पूरा बन गया। मन्दिरकी ऊँचाई मध्यम प्रमाणकी थी। उसकी बनावट वही थी जो गत एक हजार वर्षोंकी परम्परामें चली आई है। ऊपर लम्बा गोल नोकदार शिखर था जिसके ऊपर भगवान शिवका चिह्न त्रिशूल स्थापित किया गया था। वह पीतलका पालिश किया हुआ त्रिशूल सूर्यके प्रकाशमें अग्निके समान चमकता था। वटवृक्षकी सघन पृष्ठ-भूमिसहित सफेद सीमेण्टके प्लास्टरसे वह मन्दिर हिमाच्छादित कैलास पर्वत-सा प्रतीत होता था।

पंचांगकी सहायतासे शोधकर निश्चित किये गये मंगल दिवसपर मन्दिरका उद्‌घाटन-समारोह मनाया गया। खूब बाजे बजे, खूब पूजा-पाठ हुआ। मोतीचन्दने अपने व्यवस्थात्मक स्वभावानुसार प्रत्येक छोटी-छोटी बातका ऐसे सुन्दर ढंगसे प्रबन्ध किया था कि शहरके लोगोंमें उसकी स्मृति आजतक बनी हुई है। कोई सौ बड़े-बड़े आदमी विशेष रूपसे आमंत्रित किये गये थे। उनमें सन्त लोग भी थे और राजनीतिज्ञ भी; उद्योगपति और वकील एवं कुछ संख्यामें सरकारी कर्मचारी। मन्दिरकी आसपासकी भूमि मोटर गाड़ियोंसे खचाखच भर गई थी। निमन्त्रितोंसे अनिमन्त्रित अतिथियोंकी संख्या दसगुनी थी। शहरके मध्य भागोंसे और उसकी दसों दिशाओंसे एवं दूर-दूरसे भक्तोंकी बसोंपर बसें भर-भरकर चली आती थीं। उस स्थलपर एक मेला-सा ही लग गया।

वह कालूका दिन था और वह इस बातको जानता था। वह अपने सर्वोत्कृष्ट रूपमें था। चिकने चमकीले सिरमें विलीन होता हुआ उसका

विशाल और पांडित्यपूर्ण कपाल लाल चन्दनके त्रिशूलाकार तिलकसे सुशोभित था। उसका रेशमी कुर्ता और लहराती हुई धोती मनोहर मलाई रंगके छायाके थे। उसका रूप ऐसा दिखलाई देता था जैसे वह किसी प्रकाशसे देदीप्यमान हो रहा हो। वह जब मन्दिरके प्रवेशद्वारपर सफेद खम्भोंपर बनाये गये तोरणके समीप खड़ा होकर अपनी छातीपर हाथ जोड़े और मुँहपर मुस्कानकी मैत्रीपूर्ण झुर्रियाँ पाड़े आगन्तुकोंका स्वागत कर रहा था, तब वह प्रतिष्ठा और विश्वासकी मूर्ति ही दिखाई देता था। उसके देखते ही आने-जानेवाले लोग समझ जाते थे कि भगवानने उसी अज्ञात और गरीब ब्राह्मणको ही क्यों अपना वरदानका पात्र बनाया—जब कि वह सम्मान किसी अच्छे विख्यात साधु-सन्त या विद्वान्‌को दिया जा सकता था। उस ऊँचे पूरे कठोरकाय मनुष्यको व्यक्तित्वकी असाधारण देन प्राप्त है। उसमें शक्ति भी है और सन्तुलन भी। वह मन्दिर और उसकी समस्त विभूतिकी भली-भाँति रक्षा कर सकता है। उसकी वे बड़ी-बड़ी हथेलियाँ, जो अभी विनयभावसे जुड़ी हुई हैं, आवश्यकता पड़नेपर मुट्ठियाँ बाँधकर मार भी कर सकती हैं और रक्षा भी। यही तो मनुष्य है जो धर्ममें सन्देह और अविश्वासके सर्वत्र बढ़ते हुए प्रवाहको रोकनेमें सहायता कर सकता है। ईश्वरने बड़े विचारसे इसे अपना पुजारी चुना है।

काल्लू अपनी इस अद्‌भुत प्रतिष्ठाको देखकर भी खिन्न था। यहाँ ये महानगरके चुने हुए धनी प्रभावशाली और प्रतिष्ठावान् नागरिक उपस्थित हैं, और उसे अपना मित्रताका हाथ देनेको उत्सुक हैं। जब तक उसने उन्हें दूरसे ही देखा था, तब तक वे दानवसे प्रतीत होते थे। समीपसे वे मानव और प्रिय दिखाई देते हैं। वह उनमेंसे किसीके भी कन्धेपर मित्र-भावसे अपना हाथ रख सकता है और अपने सगे सम्बन्धीके समान पूछ सकता है, "कहिए, आपको आज कैसा लग रहा है?"

सत्कारने उसके हृदयको फुला दिया। वह किसी दूसरे ही लोकमें पहुँच गया था, और परिवर्तित हो गया था। किन्तु उत्कर्षकी घड़ी तो आगे आनेवाली थी—सूर्यास्तसे एक घण्टे पश्चात्। पाँच ज्योतिकी

आरती स्तुतिके साथ उतारी जा चुकी थी, और नौ बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वान् और धर्मज्ञ ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रोच्चारण किया जा चुका था। निमन्त्रित अतिथि जमीनपर बिछी हुई सुन्दर मोटी कालीनोंपर पालथी मारे बैठे थे। शेष लोग अच्छी तरह कटी हुई हरी दूबपर खड़े या बैठे थे। सम्पत्ति और भक्तिका अच्छा जमाव था।

मोतीचन्द व्याख्यान देनेके लिए खड़ा हुआ। उसने उस मन्दिरका इतिहास वर्णन किया। उसने अपने कर्त्तव्यको कुशलतासे गौण दिखलाया और मंगल अधिकारीका प्रधान रूपसे गुण-गान किया। कालू अपने आप पूछ रहा था, "क्या वह सचमुच मेरे विषयमें कह रहा है?"

फिर मोतीचन्दने उससे कुछ शब्द बोलनेकी प्रार्थना की। किन्तु उससे पूर्व मोतीचन्दने नाटकीय ढंगसे अपनी सुरीली आवाजको उसकी चरम सीमापर चढ़ाते हुए जोड़ा—"मैं, महाराज, आपको उपस्थित समस्त सज्जनोंकी ओरसे उनकी प्रशंसा और स्नेहका यह प्रत्यक्ष प्रतीक अर्पण करता हूँ।"

मोतीचन्दने चमेलीके पुष्पोंका बड़ा और मोटा हार अपने हाथोंमें लिया। और ज्यों ही उसने उसे मंगल अधिकारीके गलेमें पहनाया, त्यों ही सहस्रों हाथोंसे तालियाँ बज उठीं। समस्त उपस्थित जनसमुदाय भावनाकी कल्लोलोंमें लहराने लगा।

कालू खड़ा हुआ। उसके हाथ विनयसे छातीपर जुड़े हुए थे। कुछ देरके लिए उसकी शान्ति भंग हो गई। मुँह सूख गया। दो बार उसने अपनी जीभको ओठोंपर फेरा। अन्ततः जब मुँहसे आवाज निकली तो शब्द रुक-रुककर आते थे।

"मैं शिव भगवान्‌का एक साधन मात्र हूँ। मैं भगवान् महादेवकी इच्छाका साधन हूँ। इससे न कुछ अधिक और न कुछ कम। मेरे मित्र, हमारे व्यापारी वर्गके महान् प्रमुख श्री मोतीचन्दजीने अपने उच्च और उदार हृदयसे निकले हुए उदात्त शब्दों द्वारा जिस धर्मकी मूर्तिका निर्माण किया है, वह मूर्ति मैं नहीं हूँ। वह मंगल अधिकारी नहीं है, कुछ और

ही वस्तु है। वह मूर्ति तो श्री मोतीचन्दजीके हृदयके सद्भावसे उत्पन्न हुई उनकी अपनी सदिच्छाके द्वारा बनी है। इसलिए उसे सत्य अवश्य होना चाहिए। सुनिए, भाइयो और मित्रो, मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं अपनेको उस मूर्तिके योग्य बनाऊँ जो आज मेरे सम्मुख उपस्थित की गई है।"

यह आत्मनिवेदन समाप्त होनेकी देर थी कि घनघोर तालियाँ बजनी प्रारम्भ हो गईं। काल्रकी फिर जीत हुई।

"ये सब बड़े भले आदमी हैं," काल्रने अपने मनमें कहा। श्रोताओंकी करतल ध्वनिसे प्रभावित होकर उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। "कितनी सहानुभूति! कितनी समझदारी!"

छोटेसे नगरका सीधा और सरल कारीगर अपनी इस सफलता और सम्मानसे चकचौंध गया। उसने अपने जीवनभरकी आशासे भी बहुत अधिक प्राप्ति कर ली थी। आज उसके युद्धके अस्त्र-शस्त्र मोथले पड़ गए थे। उसके हाथ लूले हो गये थे।

एक नई ध्वनिने पुरानीका स्थान ले लिया। क्या तुम्हारा प्रयोजन अभी भी सिद्ध नहीं हुआ? क्या तुम्हें पर्याप्त नहीं मिल पाया? अच्छा हो यदि तुम अब अपने मुँहकी कड़ुवाहटको धोकर साफ कर लो, अपने रक्तकी उग्रताको शमन कर लो, जिससे तुम, जो अपनी इच्छासे ब्राह्मण बन गये हो, इस नई जीवन-धारामें अपना स्थान ग्रहण कर सको—वह स्थान जो ये लोग तुम्हें अब दे रहे हैं।

मोतीचन्द फिर उठकर खड़ा हुआ। उसका स्वर साफ तथ्यात्मक था, मानो वह एक व्यापारी बोर्डकी बैठकमें बोल रहा हो। अब वह समाजसे चन्देकी अपील कर रहा था। कुछ धन रहननामेके द्वारा लिया गया है। उसे चुकाना है। कुछ और भूमि खरीदनेके लिए, मन्दिरके विस्तारके लिए तथा मन्दिरकी जीविकाके लिए भी धनकी आवश्यकता है। इस मन्दिरको शहरकी एक आदर्श वस्तु बनाना है। जो भाई यहाँ उपस्थित हैं वे इन बातोंपर विचार करें और अपने हृदय तथा अपनी थैलियोंके मुँह खोल दें। व्यापारी वर्गपर विशेष रूपसे इसका उत्तरदायित्व

है। यह उनके नाम, उनके सम्मान, और उनकी उदारताका प्रश्न है। यहाँ अनेक धनपति, लखपति बैठे दिखाई दे रहे हैं। उन्हें इस विषयमें आगे बढ़कर मार्ग दिखाना चाहिए।

अब जल्दी-जल्दी चन्दा लिखा जाने लगा। अच्छी रकमोंके आँकड़े पड़ रहे थे। मन्दिरपर धन बरस रहा था—वह धन जो काले बाजारसे, राज्यकरोंकी चोरीसे, दुष्कालमें चावलके व्यापारके मुनाफेसे संचित किया गया था!

काल्लू सिर झुकाए खड़ा था, मानों वह दानका बोझ उसे नीचे दबा रहा हो। उसे चन्द्रलेखाकी चाह हो रही थी; जो चन्द्रलेखा उसकी बायीं ओर महिलाओंके साथ बैठी थी। वह चाहता था कि वह लेखाका मस्तक छातीसे चिपका ले और कहे "क्या हम आवश्यकतासे अधिक कटुता धारण नहीं कर बैठे? देखा तूने! वे मेरा कितना आदर करते हैं? सुना तूने, उन्होंने क्या क्या कहा? ऐसा लगता है जैसे मैं उनका हूँ और वे मेरे हैं। यह जो सब सम्मान, सत्कार आदि आ रहा है, सब तेरे लिए ही तो है! अब चिन्ता छोड़, बेटी! हमारे सम्मुख बहुत-सी भलाइयाँ हैं।"

किन्तु चन्द्रलेखा अभी उसकी पहुँचके बाहर थी। उसकी ओर देखना भी तो अनुचित होगा, क्योंकि वहाँ और दूसरी स्त्रियाँ भी तो बैठी हैं।

इस प्रकार शिव-मंदिरमें उत्सवके घंटे बजे। काल्लूको प्रतीत हुआ कि अब वेदीपर सच्चे देवकी प्रतिष्ठा हो गई। जिस छलसे उसने देवको प्रकट किया था वह सब असत्य था, जिसे भूल जाना ही अच्छा है। काल्लूने मंगल अधिकारीके रूपमें सचमुच ही नया जन्म धारण कर लिया।

जब अतिथि लोग जाने लगे तब मोतीचन्द अपने एक मित्रको लेकर मंचके समीप खड़े हुए मंगल अधिकारीके पास आया।

"आप अभीतक हमारे जोगेशजीसे नहीं मिले हैं। ये जोगेश मित्रा जूटके व्यापारमें बहुत बड़े आदमी हैं।"

काल्लूने चुपचाप उस मनुष्यकी ओर घूरकर देखा और कहा "कौन?"

उसकी आवाज आगे नहीं निकली।

"जोगेश मित्रा! वे अपना चैक आपको हाथों हाथ देंगे। वे इस पैसेसे यहाँ एक मंडप बनवाना चाहते हैं।"

काल्लू अभी भी मुँह बाये देखता रहा।

जोगेश मित्रा बोले, "मेरे मनमें है कि एक सफेद सीमेंटका बना हुआ नवदल कमलके आकारका भवन। कमल सबसे अधिक पवित्र पुष्प है। धरती तो संगमरमरकी ही होगी।"

"आपका विचार बहुत अच्छा है।" मोतीचन्दने अपना सिर हिलाते हुए कहा।

"जूटके व्यापारमें बहुत बड़ा आदमी।" इन शब्दोंसे अक-चकाकर काल्लूने अपने सम्मुख उपस्थित मुखको पहिचाननेका प्रयत्न किया। वह पागल-सा हुआ जा रहा था।

"यदि इतनी पर्याप्त न हो, तो मैं पीछे और दूँगा: जैसा-जैसा काम बढ़ता जायगा।" जोगेशने अपनी चैक बुक निकालते हुए कहा। मैं एक भवन-चित्रकारको जानता हूँ जो···" उसकी आवाज थम गई। मंगल अधिकारीके मुखपर ऐसी मुद्रा छा गई थी मानो उसपर किसीने एक चपत जमा दी हो।

मोतीचन्दने उसके कंधेपर हाथ रखा।

"बहुत गर्मी है और दिन भरका यह भारी परिश्रम। एक गिलास पानी पी लीजिए।"

काल्लूके मस्तकमें रक्त जोरसे दौड़ने लगा था। वह मुड़ा और लड़-खड़ाता हुआ चौकके उस पार चला गया।

"कुछ देर लेट जाइए।" मोतीचन्दने पीछेसे आवाज लगाई, "मैं सब बात तय कर लूँगा।"

मोतीचन्द और जोगेश परस्पर प्रश्न-भरी आँखोंसे देखने लगे।

"जान पड़ता है वे मेरे चेहरेसे डर गये।" जोगेशने हैरानीके स्वरमें कहा। "क्या बात हो सकती है?"

"तुमने पहले उन्हें कहीं नहीं देखा ?"

"कभी नहीं।"

"आश्चर्य ?"

"है, न ?" जोगेश सोच-विचारमें पड़ गया। "मंगल अधिकारी" वह गुनगुनाता हुआ अपनी स्मृति जगानेका प्रयत्न करने लगा।

चन्द्रलेखा उनकी ओर बढ़ रही थी। जब वह पास आकर विनयसे खड़ी हो गई, तब मोतीचन्दने उससे कहा "आपके पिताजीने बहुत परिश्रम करके अपनेको थका डाला है। मैंने उन्हें कुछ देर लेट रहनेको कहा है। उन्हें एक कटोरा गरम दूध पिला दीजिए।"

मोतीचन्दकी आँखें मोहित होकर उसके मुखपर गड़ गईं। लेखाका मुँह बदलती हुई कान्तिसे अति सुन्दर हो रहा था। वह मोतीचन्दकी बात सुनते-सुनते पहले कुछ पीला पड़ा और फिर तुरन्त चिन्तामुक्तिसे खिल उठा।

"कोई चिन्ताकी बात नहीं है।" मोतीचन्दने अकस्मात् अपनी आवाज बन्द होनेकी बातको छिपानेके लिए गला साफ किया। "मैं यहाँ उपस्थित हूँ।" उसने आगे कहा।

"आपकी बड़ी दया है।" लड़कीने उत्तर दिया। वह उसकी ओर नहीं देख रही थी और वहाँसे चले जानेके लिए उत्सुक थी।

"मेरा दुर्भाग्य है कि अपना चैक आपके पिताजीको उनके हाथमें न दे पाया।" जोगेश बोला। "क्या उनके बदले आप कृपाकर उसे ले लेंगी।"

लेखाने चैक ले लिया और दाताके मुखकी ओर देखा। मुखपर कोई विशेषता नहीं थी। छोटा, चौड़ी नाक, धनी लोगों जैसी बड़ेपनकी मुस्कुराहट। प्रतिदिन दिखनेवाले अनेकों जैसा।

"आपकी कृपा हमारे लिए वरदान है।" लेखाने औपचारिक शब्दोंमें उत्तर दिया। फिर वह मुड़ी और चली गई। मोतीचन्द उसीके पीछे-पीछे चल पड़ा। उसकी आँखें उसके पृष्ठभागकी रेखाओं और गतिकी तुकका रसास्वाद ले रहीं थीं।

कालू एक चटाईपर बैठ गया था। उसका सिर झुका हुआ और शरीर शून्य, अस्थिहीन-सा था। वह फिर प्रतिरोधकी भावनासे आहत था। यह घटना इसी प्रतिष्ठाके दिन होनेवाली थी, जिससे उसके मान-सत्कारकी असत्यता प्रकट हो जाय और उसकी चकाचौंध भरी आँखें उन तथ्योंको पहचान लें जिनसे उसने भागनेका प्रयत्न किया था। यही तो वह मनुष्य था जो चन्द्रलेखाका सर्वनाश करने, उसे जीते हुए मरा बनानेपर उतारू था। और वही अब यहाँ धर्ममें उतना ही मग्न है, जितना धनमें। कालू उसके मुखको बिलकुल भूल गया था, क्योंकि उसने उसे बहुत कम देख पाया था। किन्तु जो शब्द उस वेश्यागृहकी स्त्रीने कहे थे वे उसके कानोंमें गूँज रहे थे। वह अन्तमें अब उस मनुष्यके सन्मुख था। किन्तु वह जो कुछ कर सकता था वह मात्र इतना ही कि उसके दिए दानको हाथ जोड़कर कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर ले। वह अपने ही फन्देमें फँस गया।

वे उसे पलक मारते पीस सकते थे, क्योंकि मन्दिर केवल उसका अपना नहीं था। यह ठीक है कि मन्दिरकी आमदनीका वह उपयोग कर सकता था। किन्तु उसपर पाँच सदस्योंकी समितिका सर्वोपरि अधिकार था। ये सदस्य उन लोगोंमेंसे चुने गये थे, जिन्होंने मन्दिर बनवानेमें अपना पैसा लगाया था। उसने अपने कपट-जाल द्वारा ही उनकी मित्रताका लाभ उठाया था। और उससे ही उसे मित्र-विहीन न रहनेका सुख मिला था। उसने अपने निर्माण किये हुए असत्यकी ओरसे अपनी आँखें मींच ली थीं—उस वेदीका वह देव और उसका वह स्वयं पुजारी।

वह फिर नीचका नीच बन गया। दानवोंके मुखोंपरसे मानवोंके चेहरे हट गये थे। लेखाको फिर एक ढालकी आवश्यकता है।

यह इसलिए कि वह शत्रुके हाथमें था, और उसे सतर्क रहनेकी आवश्यकता थी। और भी होंगे जिन्हें उसने वेश्यागृहके द्वार तक स्वागत-पूर्वक पहुँचाया था। किन्तु वे क्या उसे उससे अधिक निश्चयपूर्वक पहिचान सकेंगे, जितना उसने जोगेश मित्रको पहिचाना था? इसकी सम्भावना तो नहीं है। उन गरीबी और गाँधी टोपीके दिनोंसे बदलकर

अब वह दूसरा ही मनुष्य बन गया है। वे कभी भी एक ब्राह्मण पुजारीको एक नीच जातिके वेश्याओंके दूतसे नहीं जोड़ेंगे। कुछ भी हो, व्यावहारिक बुद्धि उसे जतला रही थी कि रास्ता केवल एक ही है। जब तुम शेरपर सवार हो गये हो तो फिर तुम्हें उसकी पीठपरसे फिसलना नहीं चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो शेर रुक जायगा और तुम्हें खा डालेगा। तुम सवारी किये चले चलो; चले चलो,...

वह मनुष्य फिर यहाँ आएगा और लेखा उसे देख लेगी। कालू इस भयसे काँप उठा।

"बाबा!" उसका स्वर धीमा था, क्योंकि वह भयभीत थी, "क्या आपका जी अच्छा नहीं है?"

वह बैठ गई और उसकी गर्मीका अन्दाज लगानेके लिए उसने उसके कपालपर हाथ रखा। उसके मुखपर पसीना दिख रहा था, और उसे कुछ दर्द भी था।

"मुझे कुछ चक्कर-सा आ रहा है, बूढ़ा हो रहा हूँ। चलो, घर चलें।"

"आपका आज कैसा दिन था!" लेखाके स्वरमें नई चेतना आ गई थी। "आपने कितना प्रभाव डाला, बाबा!" स्त्रियोंके तो आँसू झरने लगे थे। बूढ़ी स्त्रियोंने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा था "इस कलियुगमें भी अभी इतनी सत्यता!"

कालूने जल्दीसे उसकी ओर आँख उठाकर देखा। वह व्यंग्य नहीं कर रही थी! किन्तु उसके मुखपर कोमलता थी, कुछ सुखकी छाया भी, मानो वह फिर अपने पितापर विश्वास करने लगी हो।

"और यह पैसा है।"

कालूने उस लाल कागजके टुकड़ेको झटसे ले लिया। वह उसे फाड़कर फेंक देना चाहता था। किन्तु कुछ सोच समझकर रुक गया।

"यह तुझे किसने दिया?" उसका मुख आशंकासे कठोर हो गया था।

"दानदाताने स्वयं।"

अत्यन्त हैरान होकर वह उसकी ओर घूरता खड़ा हो गया। लेखाने उसे देख लिया और पहिचाना नहीं? हो सकता है कि उस रातको उसने उसका मुख देखा ही न हो? किन्तु वे शब्द? उसे वे शब्द तो भूलना नहीं चाहिए? वे उसे स्मरण हो आयेंगे। तब फिर?

वह उस असमंजसताको सहन नहीं कर सका। उसने आँखें झुकाकर उस चैककी ओर देखा और फिर आँखें उठाकर पुत्रीकी ओर तीव्रतासे दृष्टि डाली।

"जूटके व्यापारमें बहुत बड़ा आदमी" उसने दबी जीभसे कहा।

"ऐसा क्या? कुछ हजार रुपए तो इन लोगोंके लिए कोई चीज ही नहीं हैं।"

कालूके हृदयका भार उतर गया। उसने आँखें बन्द कर लीं। उसका सिर छातीपर झुक गया।

फिर वह उठ खड़ा हुआ और उसने लेखाकी बाँह पकड़ी: "चल, घर चलें। यह प्रदर्शन बहुत हो गया। कल फिर आगे चला जाएगा।"

"चला जाएगा, बाबा?" वह आश्चर्यसे चिल्ला उठी "कहाँ?"

"अपने कर्मकी ओर, अपने भाग्यकी दिशामें।"

लेखाकी आँखें उसके मुँहपर गड़ गईं। उन्हें उत्तेजित करना ठीक नहीं, वे अस्वस्थ दिखाई देते हैं।

वे फिर चुपचाप घरकी ओर चल पड़े। कालू एक सम्भावनाका अन्दाज लगा रहा था। क्या उस मनुष्यने लेखाको पहिचान लिया होगा? यह हो तो नहीं सकता। उन भयके दिनोंमें लेखा कुछ और ही दिखाई देती थी। यदि उसे कुछ समानता दिखलाई भी पड़ी होगी तो वह उसे आकस्मिक ही समझ कर टाल देगा।

अब ऐसा दिखाई देने लगा कि उसका युद्ध सरल हो गया है। यहाँ तक तो वह हवाके समान अरूपी वस्तुपर ही आघात कर रहा था, किन्तु अब उसे चोट करनेके लिए निशाना दिखने लगा। उसके अस्त्र निशानेपर पहुँचेंगे—वे अस्त्र जिनमें अब तेजी आ गई है। और जिन हाथोंमें वे हैं,

वे सबल हैं और प्रतिशोधकी भावनासे भरे हैं।

किन्तु यह आश्चर्य ही है कि उसे उस मुखका बिल्कुल स्मरण नहीं रह सका। वह उस रात दूसरी बातोंमें इतना व्यस्त था कि वह उसका मुँह सावधानीसे नहीं देख पाया। "जूटके व्यापारमें बहुत बड़ा आदमी" बस, इतनी ही उसके पास निशानी है। किन्तु यह तो बिल्कुल पर्याप्त नहीं। और भी तो बहुतसे बड़े मनुष्य उस व्यापारमें होंगे? गंगाके तटपर तो बीसों जूटके कारखानोंकी कतारें लगी हैं। तब सम्भवतः यह वह मनुष्य नहीं है? शायद उसने पहिचाननेमें गलती की?

उसकी चाल धीमी पड़ गई। जिस धुँधली आकृतिको वह स्मरण कर सका, वह बनावटमें कुछ अधिक विशाल थी। वह इतनी ऊँची भी नहीं थी। मुख इससे बहुत कुछ गहरा काला था, नहीं क्या?

उसे सच्ची बातका पता कैसे लगे?

११

"ये झूठी बातें मेरी छातीपर बोझ-सी लगती हैं।" लेखाने एक दिन कहा था। उसकी इस भावनापर समयका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। उसका पिता सोचता था कि वह अपना और उसका बदला ले रहा है। किन्तु वह स्वयं अपने पिताके इस कठोर दृष्टिपूर्ण उत्तेजनमें किसी प्रकार भी भागीदार नहीं बन पाती थी।

वह कहता, यह मेरा युद्ध है। लेखा उसकी बातको समझनेका प्रयत्न करती। वह उस घड़ीपर पहुँचती जब उसके पिताने झरना नगर छोड़ा था। उसके कन्धेपर एक पोटली लटकी थी, और उसके पैर सड़कके मोड़पर पहुँचे थे। वह कई मील चला, अकेला, अपने घरको प्यार करनेवाला। फिर उसने रातको रेलगाड़ीकी पटरीपर खड़े-खड़े यात्रा की। इस प्रकार उसके संग्रामकी पहली मंजिल प्रारम्भ हुई। संग्राम था महानगर पहुँचनेके लिए, जीविका कमानेके हेतु। वह भूखा हुआ, क्योंकि उस सिपाहीने उसके चावलके लड्डुओंको धूलमें बिखेर दिया था। उसी भूखसे विवश होकर उसने उस भले आदमीके फल चुराए और जिसे भूखका कुछ अर्थ ही ज्ञात नहीं था, ऐसे एक मैजिस्ट्रेटने उसे मामूली चोरके समान जेलमें भेज दिया।

लेखाको अपने उस आघातकी याद आई जब उसने प्रथम बार सुना था कि उसका पिता तीन माह जेलमें रहा। उस समय वह पागलके समान रोती और चिल्लाती थी। तब क्या उसने इसीलिए अपनी इस गुप्त बातको बतलानेका वह अवसर चुना था कि जिससे वह मेरे दुःखको कुछ हल्का कर सके?

बाबा चोरोंके झुण्डमें रखे गये—उसी नामका बिल्ला लगाकर, जिससे उसे अत्यन्त घृणा और भय था।

लेखाके मनमें चोरकी प्रतिमा स्पष्ट थी। चोर अँधेरी रातमें तुम्हारे घरमें घुसा। जब तुम जागे और उसका पता तुम्हें चला कि कमरेमें एक छायाके समान आकृति विद्यमान है, तो तुम्हारा रक्त जम गया। तुम्हारे कण्ठसे कोई आवाज नहीं निकल रही, और यही अधिक भला है। जब चोर तुम्हारे कमरेमें हो, तुम्हें निश्चयसे अपनी आँखें और कान बन्द करके चुपचाप सो जाना चाहिए। या सोनेका बहाना करके चुपचाप पड़े रहना चाहिए, जब तक कि वह अपनी इच्छानुसार सब कुछ ले-लिवाकर वहाँसे विदा न हो जाय।

और वह वरदान कि पुलिसके सिपाही सड़कोंपर पहरा दिया करते हैं, अपराधीको रंगे-हाथों पकड़ लेते हैं, और उसे जेलखानेमें बन्द कर देते हैं, जहाँ वह गिट्टी फोड़ा करे, बढ़ईगीरी सीखे, चटाई बुने, जिससे वह अपने पसीनेसे जीविका चलाने योग्य बन जाए।

लेखाने चोरोंके विषयमें अपनी धारणा इस प्रकार बना रखी थी। किन्तु अब यह कल्पना उसके सामने आई कि उसके जिस बाबाने एक-एक ताँबेका पैसा कमानेके लिए कठोर परिश्रम किया था, वही उसका बाबा अपराधियोंके झुण्डमें सम्मिलित किया जाय, उन्हींका साथी बनकर जेलकी कोठरीमें सोए, उन्हींके साथ खाये-पिये और उन्हींकी बातचीत सुने।

हाँ, उसने चोरी की थी। वह अपने उन जेली साथियोंसे कुछ भिन्न नहीं था। वे सभी भले आदमियोंके शत्रु थे, जिन्हें शिक्षा देनेकी आवश्यकता थी। किन्तु क्या उसने स्वयं भी कभी चोरी नहीं की थी?

एक दिन वह अपनी बूढ़ी बुआके साथ नगरकी सीमापर, रेल्वे लाइनके उस पार गई थी और वहाँ जमीनमें खोद-खादकर कुछ खाने योग्य कन्द-मूल तथा पानीकी कमोद भरी तलैयोंमें कुछ फलफूल खोज रही थी। बूढ़ी बुआ तो तलैयामें खोज-बीन करती रही, और वह स्वयं चलते-फिरते अस्पृश्योंकी माटीकी झोपड़ियोंके पाससे निकली। उसे प्रतीत हुआ कि वहाँके सब चमार लोग भाग गए हैं और उनकी वे टूटी-फूटी झोपड़ियाँ ढेर हुई ऊजड़ होकर रो रहीं हैं। वह जल्दी-जल्दी उसी

ओर बढ़ी। फिर अकस्मात् वह रुकी और साँस लेने लगी।

एक कुम्हड़ेकी बेलने एक रसोई-घरके छप्परपर अपने घने पत्ते फैला रखे थे। उसकी कोंपलें नरम और दृढ़ थीं। वह उस बेलकी ओर घूर-घूर कर देखने लगी। उसके बड़े-बड़े सुनहली पीले फूलोंने उसकी आँखोंको मोह लिया। एक स्थानपर घने पत्तोंमें छुपा हुआ एक कुम्हड़ा लगा हुआ था।

उसने अपने चारों तरफ आँखें घुमाकर देखा। आसपास कोई नहीं था। उसका हृदय जोरसे धड़कने लगा। वह किसी दुर्निवार शक्तिसे आकर्षित होती हुई एक-एक कदम आगे बढ़ी। एक स्थानपर उसके पैर फिसल गये और वह कीचड़-पानी भरे गड्ढेमें गिरते-गिरते बची।

वह उस नीचे रसोई-घरके छप्परपर चढ़ भी न पाई थी कि एक शान्तिपूर्ण स्वर सुनाई, दिया "ठहर!"

वह उस फूसके छप्परपर ही सिमटकर बैठ रही और काँपने लगी।

एक दुबली झुकी-कमर बुढ़िया, जो अभी तक कहीं दिखाई नहीं पड़ी थी, लाठी टेकती, लँगड़ाती सामने आई। अपनी सफेद भौंहोंमें धुसी आँखों द्वारा उसने आगन्तुककी ओर कुछ देर तक भावपूर्ण दृष्टिसे देखा।

"यह भूख है, माँ!" लेखा धीरेसे बोली। मानो वह उससे क्षमा माँग रही हो।

बूढ़ी स्त्रीने सिर हिलाया, "हाँ, हाँ भूख है, बेटी।" उसकी आँखें फिर भावुकतासे घूरने लगीं।

"कौन है, बेटी!"

लेखा उत्तर देनेसे पूर्व छप्परसे नीचे उतरी। उसके मनमें आया, क्या मैं भाग चलूँ!

"सब चले गये—कुटुम्ब, परिवार सब गया।" कहते कहते बूढ़ीने अपना हाथ कपालपर मारा। "बेटे, बहुएँ, छोटे-छोटे नाती, पोते। मैं इसी टूटी झोपड़ीमें पड़ी हूँ। साँझको दीपक जला लेती हूँ। बेटाने कहा था, "माँ तुम भी हमारे साथ चलो। झरनामें तो अब कुछ खानेको नहीं

बचा।" मैंने कहा "इन बूढ़े हाड़ोंको कहाँ ढोती फिरूँगी। उनमें अब जिन्दगी ही कितनी बची है। मुझे यहीं चुपचाप मरने दो, बेटा।"

"मैं जाऊँ?" लेखाने प्रार्थना की।

"सुन, बेटी। वह कुम्हड़ा अभी अधकच्चा है। उसे दस दिन तक और अपनी डालसे लगा रहने दे। तभी वह फल तेरे खाने लायक होगा। मेरी बातपर ध्यान दे, बेटी! वह कुम्हड़ा बढ़कर दुगुना बड़ा हो जायगा।" बूढ़ीकी आँखें चमक रहीं थीं। "मैं तुझे दूसरी चीज बताऊँगी।" कहती हुई बूढ़ी एक ओरको टेकती चली। "देख! वो है; दिखा तुझे?"

लेखा उसी ओर देखने लगी। वहाँ एक और कुम्हड़ा था जो अण्डेके आकारसे बड़ा नहीं था और पत्तोंके झुण्डमें छिपा था।

"याद रख ले" बूढ़ी बोलती गई। "और कभी अपनी अँगुली इन कटउवोंकी ओर मत दिखलाना।"

बढ़ती हुई चीजें, फल-फूलोंकी बौंड़ियाँ आदि मुरझाकर सूख जाती हैं, यदि उनकी ओर अँगुली दिखा दी जाय। इस बातको लेखा जानती थी।

"इस कुम्हड़ेको पूरा बढ़कर बड़ा होनेमें एक माह और लगेगा। तब तू उसे तोड़ लेना, सुन।" उसकी आवाजका स्वर कुछ धीमा हुआ। मैं तुझे कुछ सेमें देती हूँ। पीछेकी बाड़ीमें तीन बेलें लगी हैं…।

"ना!" लेखाने कहा।

"बेटी, मुझे क्यों दुःख देती है? मुझपर गुस्सा तो नहीं हो गई?"

"तुमपर गुस्सा, माँ?"

मन्द मुस्कानसे बूढ़ीके दाँत-विहीन मसूढ़े दिखने लगे। "आ, थोड़ी-सी सेमें अपने आँचलमें बाँध ले। बेटी, अब मुझे बहुत दिन जीना नहीं है। मैं अपने बेटोंके लिए भार बनना नहीं चाहती। बिना इस माँके भी तो उनपर न जाने कितनी झंझटें हैं।

बूढ़ी अपनी लाठीपर झुककर लँगड़ाती चलने लगी। लेखाने सहारा

देनेके लिए उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया।

बूढ़ी हड़बड़ाकर पीछेको हट गई। "बेटी मैं तो चमारिन हूँ, अस्पृश्य !"

"अस्पृश्य ?" लेखा चाहती थी कि वह घुटने टेककर उस चमारिनके पैरोंपर अपना सिर रख दे।

इस प्रकार मौकेकी बात थी कि वह चोरी करनेके पहले ही पकड़ ली गई। किन्तु थी तो वह चोरी ही। मजिस्ट्रेट उसे भी तो जेल भेज सकता था। वह यह तो नहीं जानता कि भूख किसे कहते हैं ?

जब लेखाके हाथमें वे बाबाके प्रथम बार भेजे हुए दो रुपया आए थे तब वह चावलोंकी छोटी-सी पोटली बाँधकर उस चमार मुहल्लेमें दौड़ी गई थी कि वह उस बुढ़ियाका ऋण चुका दे। किन्तु तब उस बूढ़ीका कहीं कोई पता नहीं लगा। उस झोपड़ीमें तथा उसके अड़ौस पड़ौसकी झोपड़ियोंमें कोई था ही नहीं। सब सूना पड़ा था। वह कुम्हड़ेकी बेल सूखकर लकड़ी हो गई थी। उसके पत्ते आदि सब सूख गए थे।

बूढ़ी माँ मर गई होगी ? लेखाने भाँप लिया। देर हो गई। उसका ऋण चुकाया नहीं जा सका।

जिसका कुम्हड़ा चुरानेका उसने प्रयत्न किया था, वह बूढ़ी स्त्री भूखसे मरी होगी। इस भावनासे लेखाकी दृष्टिमें अपना पाप सौगुना बढ़ गया।

"जेलमें बड़ी कठिनाई थी क्या, बाबा ?" लेखाने एक दिन पूछ लिया।

"पृथ्वीपर नरक। एक बात मैं नहीं समझ पाया, चन्द्रलेखा ! प्रयोजन तो यह है कि अपराधीका सुधार किया जाय, उसे अच्छा मनुष्य बनाया जाय। है कि नहीं ? किन्तु वे तो अपनी शक्तिभर ऐसा व्यवहार करते हैं जिससे अपराधीको प्रतीत हो कि वह मनुष्य है ही नहीं।"

"ऐसा कैसे ?"

"वे कई प्रकारसे ऐसा करते हैं। वे बिना कारण ही उसे गालियाँ

देने लगते हैं, और उसे कहते हैं···" कालू सम्हल गया। "वे उसे बड़े गन्दे नामोंसे पुकारते हैं, जितने गन्दे वे सोच सकते हों। यदि उसने कुछ आपत्ति की तो वे उसे चपतें लगाएँगे, लात-घूँसा मारेंगे, और वे ही गालियाँ फिर बकेंगे। उसका मानवी स्वाभिमान चक्कीके पाटोंके बीच रखकर पीस दिया जाता है, और वह हवामें उड़ जाता है।"

"हो सकता है कि वे उसे जेलसे भयभीत बनाना चाहते हों, जिससे वह फिर कभी न्याय भंग न करे।"

"हाँ, ध्येय तो यही है। किन्तु होता है इसके विपरीत। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, तैसे-तैसे कैदीका भय छूटता जाता है। प्रतिदिन उसके मनमें घृणाका भाव बढ़ता जाता है और यही भाव उसमें ओत-प्रोत हो जाता है। घृणा केवल उन जेलके दरवानों और सिपाहियोंके प्रति ही नहीं, किन्तु उस समस्त व्यवस्थाके ऊपर जो ऐसे सिपाही उत्पन्न करती है। सब बातोंसे घृणा। घृणा ही मनका रोग हो जाता है।"

लेखाने देखा, बाबाके मुखपर वही परिचित कठोरताकी छाया आ रही है।

"बाबा! बस और नहीं।"

"क्या तू कैदियोंके उस गानेके भावको जानना चाहती है, जिसे गाते हुए वे बैलोंके समान जुतते हैं? वे अपने मुखपरके पसीनेको पोंछकर हाथकी चुल्लूमें लेते हैं और मिलकर गाते हैं—"खा लो इसे, हमारे हाड़ोंके तेलको, खा लो! इसे लो तरकारी छोंकने···इसे स्वादिष्ट कढ़ी बनाने···और इसे अपने शरीरकी मालिश करनेके लिए···खा लो इसे, हमारे हाड़ों-के तेलको खा लो।"

लेखाने समझते हुए अपना सिर हिलाया। इस जेलके गीतने उसके हृदयको तीव्रतासे हिला दिया। वह कभी-कभी उसी गीतको गुनगुनाने लगती थी। उसका मुख लाल पड़ जाता और नकुए फूल जाते। खा लो इसे, हमारे हाड़ोंके तेलको, खा लो।

इसी गीतमेंसे उस मन्दिरका आविष्कार हुआ था। उसीसे संग्रामने

नया रूप धारण किया था। संग्राम आत्मरक्षाके लिए नहीं, किन्तु आक्रमणके लिए, कड़ी चोट करनेके लिए।

क्या यह ठीक उपाय है? लेखा अपने पिताके विरोधकी भावनाको स्वीकार करके भी उनके इस उपायके विषयमें अपनेको भ्रान्त पाती थी। क्या वे सत्यके मार्गसे प्रत्याक्रमण कर रहे हैं?

काल्लू अपनी नीची श्रेणीके कारण तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता था। अब प्रथम बार धन-सम्पत्तिका शस्त्र उसके हाथमें आया था। वह अब एक धनवान व्यक्ति था। उसके पास भौतिक सम्पत्तिसे भी कुछ अधिक था। उसके पास साक्षात् भगवान् शिव थे। इसमें उसे उच्च श्रेणीके लोगोंमें आध्यात्मिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त थी। कुछ लोग तुच्छताकी भावनासे उससे अपनेको पृथक् रखते थे। किन्तु अधिकांश तो श्रद्धालु थे और अपने प्राचीन परम्परागत धर्मसे बँधे थे। उनकी यही धार्मिकता उनके सत्यानाशका कारण बने। अपने इस अन्धविश्वाससे कि वे अपनी भक्ति द्वारा पुण्य कमा रहे हैं, वे और-और गहरे अधर्ममें डूबते जाते हैं। एक जड़ पाषाण-खण्डको साक्षात् शिव समझकर पूजनेके पापसे उनका कैसे कभी उद्धार हो सकेगा?

किन्तु काल्लू अपने और अपनी बेटीके प्रतिकूल किए गये दुर्व्यवहारका बदला ले रहा था। इस कार्यमें वह जिस गूढ़ भावनासे अभिभूत था उसे लेखा नहीं समझ सकती थी। पुराने दिनोंमें जब वे झरनामें थे और जीवन अधिक सरल प्रवाहमें बह रहा था, तब वह उसके लिए खाना पकाती, कपड़ोंकी मरम्मत करती और कभी-कभी मौजमें कारीगर बनकर घनकी मारसे आगकी चिनगारियाँ उड़ाने लगती तथा काल्लू पंडित बनकर उसकी पुस्तकोंको उलट-पुलट कर देखने बैठ जाता था। उसे अपने धंधेमें सन्तोष था, और वह उसका गर्व भी रखता था। जब वह भट्टीपर बैठा-बैठा कोई विशेष कारीगरीका काम करता, तब वह अपनी बेटीको अपने पास बुलाता और कहता "देख इसे! अब तू अपने बाबाके विषयमें क्या सोचती है!" एक बार उसके स्कूलके प्रगतिपत्रमें और सब

तो बहुत श्रेष्ठ था, किन्तु आचरणके खानेमें लिखा था "बातूनी बहुत है।" बाबा उसपर खूब हँसे और उनकी आँखें चमकने लगीं।

क्यों, यदि तेरी जगह मैं होता, तो मुझे अवश्य ही इस खानेमें और उस खानेमें और सभी खानोंमें 'बातूनी' मिलता। कैसे कोई पूरे एक घंटे तक अपनी जीभ दबाए बैठा रह सकता है?

ऐसा वात्सल्य काल्लूके हृदयमें अपनी बेटीके लिए था। वह ठीक है या गलत, इसका विवेचन न करके काल्लू उसीका पक्षकार था। किन्तु आज उस परसे उसका भरोसा उठ गया था और अवलम्बन भी। अब उसकी माँग थी कि वह उसके आदेशकी प्रतीक्षा करे और मंत्रके समान उसीका पालन करे। काल्लूमें अपनी पुत्रीके प्रति अब एक नई कठोरता आ गई थी।

काल्लूको अब अपना धन-पैसा भी प्यारा लगने लगा था, पहलेसे बहुत अधिक प्यारा जब वह उसे कठोर परिश्रमसे कमाना पड़ता था। वह अपनी रोजकी आमदनीको गिनता तथा पुर्जों और रसीदोंकी पीठोंपर अनगिनती जोड़ बाकी लगाया करता था।

"तेरी स्कूलकी पुस्तकोंमेंसे मैंने जो गणित सीख लिया था वह व्यर्थ नहीं गया।" काल्लूने एक दिन आत्म-संतोषकी भावनासे कहा।

किन्तु इसलिए तो उसने वह गणित नहीं सीखा था। लेखा जानती थी कि उस समय उसके गणित सीखनेका सच्चा कारण क्या था!

काल्लू अपनी ब्राह्मणकी भूमिका सच्चे द्विजकी कलाके साथ खेलता गया। ऊँच नीच वर्ण-व्यवस्थाकी कहानी छिन्न-भिन्न होकर उसकी मुट्ठीमें आ गई थी। फिर भी वह उसी कहानीको उठाये हुए था, और उसे ही अपनी शक्तिका स्रोत बनाए था। क्या यह उसकी अपने ही विरुद्ध ढाल थी? या जिस पवित्र जनेऊके डोरेको उसने अपनी छातीके आर-पार पहिन रखा था उससे उसकी आत्मा भी बँध गई थी?

एक दिन दोपहरके पश्चात् काल्लू मंदिरके सामने घूम रहा था। एक भिखारी उसके पास आया और पुकार करने लगा, "मुझे दो दिनसे कुछ

भी खानेको नहीं मिला। मालिक ! क्या आप अपने भंडारमेंसे दो-चार कौर इस बूढ़ेको भी देंगे ?"

भिखारीका आशासे भरा हाथ बढ़कर ब्राह्मणकी बाँहसे लग गया। बाबा तुरन्त पीछेकी ओर हट पड़े।

"बदमाश !" गुस्सेमें आकर ब्राह्मण बोला "तूने मुझे छूनेका साहस कैसे किया ? मुझे अब शुद्ध होनेके लिए इसी समय स्नान करना पड़ेगा ?"

लेखा फाटकके पास खड़ी थी। उसने बाबाके मुँहकी बात सुन ली, और उसे ऐसा लगा मानो उसके पिताके वेषमें कोई अपरिचित मनुष्य उसके सन्मुख खड़ा हो।

"बाबा ?" लेखा प्रतिरोधकी भावनासे दुखभरी आवाजमें चिल्ला उठी।

वह उसकी ओर मुड़ा। क्या वह लेखाके हृदयकी बातको जान गया ? उसे एक नीच जातिके मनुष्यके हाथका स्पर्श हो जानेसे रोष आ गया था और शुद्धिके लिए स्नान करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी। क्या मंगल अधिकारी अपने जीवनके प्रतिक्षण ही एक लुहारके स्पर्शसे दूषित नहीं हो रहा था ? या वह लुहार मनुष्य सर्वथा विनष्ट हो चुका था और उसकी लेशमात्र भी छाया उस ब्राह्मण आत्मापर नहीं पड़ रही थी ?

उसके मुख और हाव-भावमें तुरन्त एक परिवर्तन-सा दिखाई दिया। मानो उसे अपने आपपर लज्जा हुई हो।

भिखारी सड़कपर आगे जा रहा था। कालूने उसे पुकारा और वह वहीं रुक गया।

कालू चलकर उसके पास गया।

"भाई, एक क्षणके रोषका बुरा मत मानना। तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"सब मेरा ही दोष है। मैंने सोचा ही नहीं।" बूढ़ा भिखारी रोने लगा।

कालूने ज़ान-बूझकर अपना हाथ उसके खुले कंधेपर रख दिया।

"सभी मनुष्य समान ही उत्पन्न होते हैं।" कालूके स्वरमें तीव्रता थी;

मानो वह अपना ही लेखा-जोखा लगा रहा हो।

"तुम क्या करते हो?" उसने पूछा।

"फुकनी और हथौड़ा···" उस बूढ़े आदमीके मुखसे निकला। वह शान्त था और शब्द धीरे-धीरे ही मुँहसे निकलते थे।

कालू स्तब्ध रह गया। फिर धीमे स्वरमें बोला "तुम लुहार हो?"

"हाँ, हाँ। मैं कमार हूँ। मैं पूरब बंगालका रहनेवाला हूँ। मधुमती नदी मेरे गाँव परसे गई है।" उसने धीरेसे अपना सिर हिलाया और कहा "कोरा कमार।"

"अपनेको इतना गिराकर बतलानेकी क्या आवश्यकता है? अपने लोहे और अग्नि द्वारा सचाईसे काम करनेवाला कारीगर उतना ही अच्छा है जितने बड़े-बड़े आदमी। वह अपना मस्तक इसीलिए ऊँचा रख सकता है क्योंकि उसके हाथमें एक कला है, उसे एक विशेष ज्ञान प्राप्त है।" कालूकी आवाजमें लुहार जातिका स्वाभिमान गूँज उठा। "उस कारीगरसे अच्छा कोई नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, कोई भी नहीं।"

वह भिखारी आँखें फाड़कर देखने लगा। कालू हँस पड़ा।

"तुम्हें अन्नकी आवश्यकता है, और मैं तुम्हें उपदेश देने लग गया! सुनो, भाई! तुम मन्दिरमें क्यों नहीं रहने लगते? हम तुम्हारे लिए काम खोज देंगे। वह काम नहीं जो तुम करते रहे हो, किन्तु कुछ और प्रकारका काम। तुम शाक-भाजी उगा सकते हो। मन्दिरके आसपास अच्छी जमीन है। शाक-भाजी! इस विचारसे उसे कुछ हँसी आई और उसने अपनी आँखें मिचकाई। "एक सच्चे कारीगरके हाथ भूमि खोदें और घास छीलें!"

बूढ़े अतिथिकी आँखोंमें कृतज्ञताके आँसू आ गए। उसका हृदय भर उठा। उसने बोलनेका प्रयत्न किया, किन्तु मुँहसे शब्द नहीं निकल सके। बाबाने तुरन्त उसकी सहायता की।

"यह मेरी पुत्री है।" और वह लेखाकी ओर मुड़ गया और बोला "भगवान्‌के भेजे हुए अपने काकाको प्रणाम कर, चन्द्रलेखा। यह

बंगालके पूर्वी जिलेका कमार है। इसके गाँवके पाससे मधुमती नदी बहती है।"

उस क्षण लेखाको अपने पिताके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने बाबाकी ओर गहरी दृष्टिसे देखा और फिर उस गरीबके चरण छूनेके लिए झुक पड़ी।

"नहीं, नहीं, माता! तुम ब्राह्मण-कन्या हो! यह सब क्या है? क्या यह मैं सब स्वप्न देख रहा हूँ?"

"छोटोंको बड़ोंका आदर करना ही चाहिए!" बाबाने गम्भीरता-से कहा।

"आओ काका!" लेखाने बूढ़ेका हाथ पकड़ लिया। "हम सड़कके पार ही रहते हैं।"

बूढ़ा भोजनके लिए बैठ गया। लेखाने स्वच्छ पीतलकी थालीमें दूधकी खीर, मलाई, फल आदि परोस दिए। कान्नूने उससे प्रश्न करना आरम्भ किया।

"तुम्हारे गाँवमें कोयला क्या भाव मिलता है? क्या तुम ऐसा घोड़ेका नाल बना सकते हो जो पूरे बारह महीनों चले? उसकी भी एक कला होती है! जोड़ लगानेके लिए धातुएँ किस अनुपातसे मिलाकर बनाते हो?"

"आश्चर्य इस बातका है कि आपको हमारे धंधेकी इतनी गहरी जानकारी है।" बूढ़ा चिल्ला उठा। उसकी भूरी मूँछोंके लटकते बाल पीतलके फूलदार कटोरेमेंसे दूध पीनेके कारण दूधमें डूबकर सफेद हो रहे थे।

"यदि आपको मैं अपनी कारीगरीकी कुछ कलाएँ बता सकूँ?" उसने बड़ी तत्परतासे कहा। वह उस समय अपने आपको भूल गया था।

कालूने कुछ अधमिची आँखोंसे बूढ़ेकी ओर देखा। लेखा भाँप गई कि बाबाके मनमें क्या है जो वे प्रकट नहीं कर सकते। यही न कि—"मैं भी चाहता हूँ तुझे बता देता कि मेरे ये हाथ क्या-क्या कर सकते हैं?"

वह बूढ़ा गरीब विश्वनाथ उस शिवमंदिरके बगीचेका माली बन

गया। किन्तु जिस स्नेहकी गर्मीसे बाबाने पहले दिन उसका स्वागत किया वह अधिक कालतक नहीं टिकी। जैसी अकस्मात् वह उत्पन्न हुई थी, वैसी ही अल्प कालमें विलीन हो गई। दो-तीन दिन पश्चात् कालूने अपनी पुत्रीको सतर्क किया :

"देखो, उस मालीसे अपनेको दूर रखनेकी सावधानी रखो। उसे अपने योग्य स्थानपर ही रहना चाहिए।"

लेखाके उत्तरमें एक डंक था।

"आपने मुझसे उसके चरण छुवाए। मैंने उसे काका कहकर पुकारा। अब मैं कपट कैसे कर सकती हूँ?"

कालूने आँखें मींच ली और फिर वह दूसरी ओर देखने लगा।

"हम लोग पहाड़ीकी ढालपर खड़े हैं। सैकड़ों आँखें हमारे ऊपर लगी हुई हैं। वे यह देखनेकी प्रतीक्षा कर रही हैं कि हम कब फिसलते और नीचे गिरते हैं। हमें सतर्क रहनेकी आवश्यकता है। हमारी इस कठिन परिस्थितिमें हमारा एक नौकरके साथ अधिक अपनत्व बढ़ाना उचित नहीं। समझी?"

"मैं समझ गई बाबा!"

लेखाके मनमें फिर वही शंका जाग उठी। क्या बाबाके भीतर ब्राह्मण-पन गहरा प्रवेशकर रहा है? माना कि विश्वनाथसे कुछ दूर रहना चाहिए, किन्तु फिर भी वे उसके प्रति दयालु क्यों नहीं हो सकते? कभी-कभी वे उस बेचारे बूढ़ेकी नमस्कारकी ओर भी ध्यान नहीं देते, यह उसने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है। ऐसे दुर्व्यवहारसे तो उनकी प्रतिष्ठामें कोई वृद्धि नहीं हो सकती। वह तो प्रतिदिन कितने ही ब्राह्मणोंसे मिलती थी जो अपने बर्तावमें बड़े नम्र और दयालु थे। तब क्या यही बात है कि सच्चेकी अपेक्षा झूठे सिक्केमें अधिक चमचमाहटकी आवश्यकता है?

१२

जूटके व्यापारमें बीसों बड़े आदमी थे। काल्नने अपने पहले आवेगके धक्केके पश्चात् अपने प्रश्नोंका यह एक उत्तर निकाल लिया। व्यापारी और दलाल खेत और कारखानेके बीच जूटके रेशोंका लेन देन किया करते थे। दर्जनों कारखाने उन रेशोंकी सुतली बटते और बोरे बनाया करते थे। जहाजी लोग इस मालको समुद्र पार विदेशोंको ले जाते और सट्टेबाज इस समस्त धाराके किनारे खड़े-खड़े वायदेपर हजारों टनोंकी खरीद फरोख्त किया करते थे।

अपने सामान्य तर्कसे काल्नने धीरे-धीरे अनुभव किया कि जिस जूटके व्यापारी बड़े आदमीने उस काली रात्रिको रूपामें प्रवेश किया था वह अनेकोंमेंसे कोई भी एक हो सकता है। लेखा भी कोई एक लड़की हो सकती है।

तब जोगेश मित्र जो भी हों, कोई भेद नहीं पड़ता। काल्नका संग्राम किसी एक व्यक्तिके विरुद्ध नहीं था। वह तो समाजकी उस समस्त व्यवस्थाके विरुद्ध लड़ रहा था जिसके द्वारा ऐसे व्यक्तियोंका पनपना संभव होता है। उसके बदला लेनेका तरीका यह था कि वह उक्त प्रकारकी जीवनधारामें पले मनुष्योंके लिए नरक तैयार करे—ऐसा नरक जहाँसे उनका कभी कोई उद्धार न हो सके। उस महानगरमें केवल यही एक झूठा शिवमंदिर बनना पर्याप्त नहीं। ऐसे और अनेकों बनने चाहिए, और इन झूठे मंदिरोंकी आक्रामक चमक-दमकके द्वारा सच्चे मंदिरोंको अँधेरेमें ढकेल देना चाहिए।

इस चमक-दमकका विशेष आधार था क्रियाकांडका आडम्बर। काल्नने उस समयकी एक अद्भुत विषमतापर ध्यान दिया था। एक ओर मनुष्य भूखों मर रहे थे, और दूसरी ओर धन बढ़ रहा था। जहाँ

दयालुताकी धारा सूख रही थी, वहीं धर्मकी माँग बढ़ रही थी। किन्तु जिसकी माँग बढ़ रही थी, वह था केवल धर्मका ऊपरी रूप, विधि-विधानकी वह नरेटी जो भीतर खोखली थी। काल्ूके प्रयोजनके लिए यह परिस्थिति उपयुक्त थी।

काल्ूके मंदिरमें शिव-संहिताके श्लोकोंकी ध्वनि गूँजती रहती थी। पाँच वृद्ध पुरोहित इसी कामपर भाड़ेसे लगा दिये गये थे और वे दिन भर पाठकी रट लगाए रहते थे। वेदीपर सुगन्धी धूपका धुँआ लगातार उड़ा करता था। सुबह और शामको ऐसे जोरके घंटे बजते थे कि उनकी ध्वनि आधे मील दूर अलीपुरकी सड़कपर मोटरगाड़ियोंमें सवार होकर आने जानेवालोंके कानोंमें भी सुनाई देती थी। जिन धनी लोगोंको स्वयं वंदना, प्रार्थना करनेकी न फुरसत थी और न रुचि, वे भी पूजा-पाठ करानेके लिए पैसा देनेको तैयार थे। यह उनके लिए पुण्य कमानेका अधिक सरल मार्ग था।

एक सोने-चाँदीके व्यापारीने उस पीतलकी पंचज्योति आरतीके स्थानपर सोनेकी आरती बनवा दी, और चँवरकी लकड़ीकी मूठको चाँदीसे मढ़वा दिया। एक राजाने रात्रिको भगवान्‌के शयनके लिए बहुमूल्य खुदाईदार चन्दनकी चौकी दान कर दी। चावलके व्यापारियोंके एक दलने, जो मन्दिरके पंचोंके मित्र थे, भगवान्‌के भोगके लिए आगामी नौ माहतक दानका वचन दे दिया। भगवान्‌में वे सब मानवीय आवश्यकताएँ आ गईं थीं जो तत्काल पूरी की जा सकती हों।

पर्वके पवित्र दिनों महायज्ञ किया जाता था। उस समय वेद-मंत्रोंकी ध्वनिके साथ वेदीपरकी विशाल अग्नि-ज्वालामें मानों घीकी आहुति चढ़ाई जाती थी। काल्ूने बड़ी चतुराईसे यह व्यवस्था कर दी थी कि भक्तोंमेंसे जो भी चाहे वह आहुतिके लिए घीके डब्बे भेज सकता है, जिससे सभीको पुण्य मिल सके, और किसीको कोई आपत्ति न रहे। इसकी सुव्यवस्थाके लिए काल्ूने एक सूची बनवाई, जिसमें यह लिखा गया कि कौन किस दिन कितना घी भेजेगा। उस सूचीमें शहरके बड़े-बड़े प्रतिष्ठित

पुरुषोंके नाम थे—केवल व्यापारी वर्गके ही नहीं किन्तु वकील, डाक्टर और अन्य धन्धोंके लोगोंके भी।

काल्लूने शिवके दुग्धाभिषेककी भी योजना बनाई। यह उस महानगरमें एक नवीन बात थी। वर्षों पहले कभी काल्लू बनारस गया था। तीर्थोंमें श्रेष्ठ उस पुण्यनगरमें उसने वहाँके जगत्-प्रसिद्ध विश्वनाथके मन्दिरमें रात्रिको होनेवाले दुग्धाभिषेककी विधिके दर्शन किये थे। पाँच मनुष्य गदा, शंख आदि मंगल द्रव्य धारण किए हुए दाताके घरसे दूधके घड़े लाते थे। वे जब मार्गसे दूध लेकर मन्दिरकी ओर गमन करते, तब सब मिलकर बड़ी गम्भीरतासे शिव ! शिव ! की रट लगाए रहते थे। लोग उनके मार्गसे हट जाते और बड़ी भक्तिसे दर्शन करते रहते। काल्लूने इस विधानकी नकल कर ली। किन्तु उसने उसमें कुछ सुधार भी किया। पुण्य कमानेवाले लोगोंको इस विधानकी ओर बड़ा आकर्षण हुआ। परिणामतः महीनों आगे दाताओंके नामोंसे सूची भर गई। सेनाके लिए दूधकी माँगके कारण दूध बहुत महँगा हो गया था, और मिलता भी कम था। किन्तु काल्लूको इसकी कोई चिन्ता नहीं थी। धनी दाता अपने साधनों व अपने धनसे इस धार्मिक-विधानको पूरा करनेके लिए तैयार थे।

एक दिन एक अड़चन आ उपस्थित हुई और उसकी चर्चा उसने अपनी पुत्रीसे की।

"चन्द्रलेखा, अब मैं क्या करूँ ?"

"क्या हुआ, बाबा ?"

"तूने मेरी लाल डायरी देखी है जिसपर लिखा है दुग्धाभिषेक। प्रत्येक दिनके लिए एक-एक नाम निश्चित करके लिख लिया गया है। श्रावणके अन्ततक सब दिन भरे हुए हैं। जिस दिनके लिए जिसका नाम लिखा गया है उस दिन वही दाता अभिषेकके लिए दूध भेजेगा। अब इन नामोंमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।"

"समझी।"

"एक आदमी प्रातः मेरे पास आया था और उसने एक सप्ताहके

भीतर ही कोई एक दिन अपने लिए माँगा है। किन्तु यह तो असम्भव था। मैंने उसे बतला दिया। वह गिड़गिड़ाने लगा और बोला, मेरा बूढ़ा बाप बहुत बीमार है। उसके एक सप्ताहसे अधिक जीनेकी आशा नहीं है। डाक्टरोंने ऐसा ही बतलाया है। उसकी एकमात्र इच्छा मरनेसे पूर्व शिवजीका दुग्धाभिषेक करानेकी है। बस, उसकी यह इच्छा पूर्ण हुई कि वह शान्तिसे अपने प्राण त्याग कर देगा।"

"आप किसी दिन शिवजीको एक अतिरिक्त दुग्धाभिषेक करा दीजिए।" लेखाने समझाया।

"यह भी सम्भव नहीं" कालूने लेखाको बतलाया। निश्चित विधिमें एक दिनके लिए परिवर्तन तो नहीं किया जा सकता। मंदिरका यह नियम है कि एक दिनके संध्याभिषेकके लिए आवश्यक समस्त दूध एक ही दाताके यहाँसे आवेगा। यदि यह नियम भंग किया गया तो अभिषेकका महत्त्व ही घट जायगा, क्योंकि वह फिर एकका विशेष अधिकार नहीं रहा।"

लेखाने बातको समझा।

"तो आगामी कुछ दिनोंवाले नामोंमेंसे किसी एकको आगेके लिए बढ़ा दिया जाय। वे तो अभी मर नहीं रहे? वे ठहर सकते हैं।"

यह बात उसने भी सोची थी। इसलिए उसने एक रिक्शा किया और स्वयं उन व्यक्तियोंके घर गया। उन्हें उसने बहुत समझाया। एकके पश्चात् एक करके वह सात लोगोंके पास गया और अपना-सा मुँह लेकर वापिस आ गया।

"सब बदमाश हैं।" कालूने लेखासे कहा। "ऐसे स्वार्थी लोगोंके साथ स्वर्गमें रहनेसे तो नरकमें ही रहना कहीं अच्छा है।" उसने बतलाया कि किस प्रकार उन सातों मनुष्योंने अपने निश्चित दिनकी पूर्वताको छोड़ना अस्वीकार कर दिया। उन्हें उसकी कोई चिन्ता नहीं थी कि उस बेचारे मरणासन्न वृद्धका क्या होगा। "उसे यह बात पहले ही सोचना चाहिए थी" वे बोले। "हममेंसे भी तो कोई किसी दिन मर सकता है। एक-

ने तो संस्कृतके प्राचीन श्लोककी पंक्तियाँ ही सुना दीं :—

नलिनी-दल-गत-सलिलं तरलम् ।
तद्वत् जीवितमतिशय-चपलम् ॥

अरे भाई, यह जीवन बड़ा क्षणभंगुर है। कमल पत्रपर पड़ा हुआ जल-बिन्दु जिस प्रकार तरल होता है, उसी प्रकार यह जीवन भी नितान्त चपल है। इसका क्या भरोसा, कब समाप्त हो जाय।"

इस प्रकार उस वृद्ध मनुष्यकी अभिलाषा पूरी नहीं की जा सकी, और वह मर गया। क्या ही अच्छा होता यदि वह उस वृद्ध मनुष्यके कानमें कह देता, "अरे भाई, मेरे मन्दिरमें कोई देवता नहीं है। यह दूध तो उस झूठी मूर्तिपर चढ़ाया जाता है, जिसे मैंने ही अपने हाथोंसे बनाया है।" कमसे कम वह अपने मृत्युके क्षणमें समझ तो जाता कि यह सब एक तमाशा है। उसके हृदयकी अग्नि शान्त हो जाती। जिन पुण्यवानोंने उसकी इच्छाको निर्दयताके साथ ठुकराया था, उनके साथ उचित ही किया जा रहा है।

किन्तु सच्ची विपत्ति एक अन्य ही अनपेक्षित द्वारसे आई। कालूने जिस गरीब विश्वनाथको मालीके कामपर रख लिया था, उसीने एक बखेड़ा खड़ा कर दिया।

विश्वनाथ अपने उदास झुर्रियोंदार मुखसे चुपचाप आपमें तल्लीन, निःस्वार्थ भावसे अपने काममें जुटा रहता था। चाहे कड़ी दुपहरी हो, चाहे मूसलाधार वर्षा, विश्वनाथका काम चलता ही रहता था। कभी-कभी कालू कमल-मण्डपसे उसे देखता रहता। सफेद सीमेण्टका यह भव्य भवन-मन्दिरके सम्मुख खुले हरी घासके चौकके बीच उसी जोगेश मित्रके दानसे बनकर तैयार हुआ था। एक बार जब वर्षा हो रही थी, तब कालूने विश्वनाथसे चिल्लाकर कहा था कि वर्षामें भींगनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

"वर्षा मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती" विश्वनाथने मुड़कर कहा था। "इन हड्डियोंमें अभी भी पर्याप्त बल है।"

काल्ह यद्यपि मालीसे अधिकांश दूर ही रहता था, तथापि कभी-कभी उसके अन्तरंगमें उसके प्रति अपनत्वकी भावना उठ खड़ी होती थी और उनके बीचकी दूरीको काट देती थी। उसे विश्वनाथके कुटुम्बकी चिन्ता हो उठती, किन्तु उस सम्बन्धमें उसकी जिज्ञासाका उत्तर कठोर मौन द्वारा ही मिलता था। "पुरानी बातोंकी यादसे मुझे चोट पहुँचती है।" काल्ह अपने आप कहकर विश्वनाथकी भावनाको समझ जाता। किन्तु अपने काम-काजके विषयमें विश्वनाथ खुशीसे बात करता। वह अपनी इस दबी-छिपी अभिलाषाको भी व्यक्त कर देता था कि किसी दिन फिर वह अपनी लुहारी दूकान चलावे। वह यह भी जानता था कि वह पुनः कभी भी स्वतन्त्र धन्धा नहीं कर सकेगा। और कालूको भी इस बातका आभास था। इसीलिए कालूने एक प्रकारसे विश्वनाथके साथ अपना ऐकात्म्य स्थापित कर लिया था। दोनों ही जालमें फँसे हुए थे—एक गरीबीमें और दूसरा ब्राह्मणकी विभूतिमें।

आश्चर्यकी बात यह थी कि विश्वनाथको उस मन्दिर और उसकी समस्त प्रवृत्तियोंमें कोई श्रद्धा नहीं थी। वह अपने इस अविश्वासको छिपानेका भी कोई क्लेश नहीं उठाता था।

"इस सहस्रों देवी-देवताओंकी भूमिमें इतनी शैतानी और इतना दुःख क्यों है?" विश्वनाथने एक दिन अपने मालिकसे पूछा।

कालूने ब्राह्मण-विद्याको इतना तो आत्मसात् कर लिया था कि वह उस प्रश्नका समुचित उत्तर दे सके।

"हमारे हृदयोंमें श्रद्धा नहीं है। दण्डकी ज्वाला हमारी ही उत्पन्न की हुई है। हम उसीके योग्य हैं। यह अग्निसंस्कार हमारी शुद्धिके लिए ही है।"

"मैं पूरे तीन माह भूखों मरा। क्या परिणाम हुआ? मुझे दुख देनेके कारण मैं जगत् भरसे घृणा करने लगा।"

"ओ हो! तुम मेरी ही बातको सिद्ध कर रहे हो।" मन्दिरके मालिकने अपने पांडित्यसे कहा। "तुम्हें उस भाग्यमें भरोसा नहीं है जो

मनुष्यों और छोटेसे छोटे कीट-पतंगोंके जीवनका नियंत्रण करता है।"

विश्वनाथको सन्तोष नहीं हुआ।

"मैं भी कुछ श्रद्धा रखता था" उसने कहा। "मैं भी दूसरोंके समान देवी-देवताओंकी पूजा करता था। मेरी उनमें भक्ति थी। मैं उनसे डरता भी था। इसी प्रकार मेरे सब बाल-बच्चे भी थे। किन्तु हुआ क्या?"

काल्ू ठहरा। क्या विश्वनाथ अपनी व्यथाके रहस्यको खोलकर बताएगा?

बहुत देरतक कोई नहीं बोला।

"क्या हुआ?" विश्वनाथने दुहराया। उसके मुखपर तनाव आ गया और अकस्मात् आतंकित होकर आगे आँखें फाड़कर देखने लगा। किन्तु एक ही क्षणमें वह शान्त हो गया। "जाने दो उस बातको" वह कहता गया "केवल मुझे यह बतलाओ कि मेरी छोटी पोतीको भूखसे क्यों मरना पड़ा? क्या तुम एक तीन सालकी बच्चीको धर्ममें विश्वास न होनेका दोष दोगे?"

काल्ू घबराया। किन्तु उसके ब्राह्मणने उसका उत्तर सुझा दिया।

"एक जन्मके पापोंका प्रायश्चित्त दूसरे जन्ममें भी दुख भोगकर करना पड़ता है।"

विश्वनाथने अपना विरल-दाँतोंवाला मुख खोलकर कटु हास्य किया।

"मीनूको आयु और समझदारीमें कुछ बढ़ने तो दिया जाता! तभी उससे प्रायश्चित कराना ठीक होता!

अकस्मात् उसी क्षण काल्ू अपने अन्तरंगमें पूछ रहा था कि लेखाको क्यों दुख भोगना पड़ा? चन्द्रलेखा? वह जो इतनी अबोध और इतनी पवित्र थी जैसे एक दुधमुँहा बालक। उसने ऐसा क्या किया था जिसके कारण उसे अवर्णनीय दुर्भाग्य उठाना पड़ा? सच्चे पापियोंको कर्मका कोई स्पर्श होते दिखाई नहीं देता। वे अच्छी तरह खाते-पीते हैं, शिव और रामका नाम लेते हैं तथा शान्ति और सुखकी नींद सोते हैं।

काल्ूने अपना मुख आकाशकी ओर ऊँचा किया। मानो उसके

अंधकारपूर्ण शून्यमेंसे उसकी आँखोंको मनुष्यों और कीटोंके जीवनको आकार देनेवाले भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे। उसने अपनी बड़ी-बड़ी मुट्ठियाँ कसकर बाँधीं। तू एक अबोध कन्याको कीचड़में घसीटता है। क्या यह कोई प्रायश्चित्तकी विधि है? क्या यही आत्माकी विशुद्धिका उपाय है?

उसकी आँखें मंदिरपर आकर रुकीं। फिर उसने विश्वनाथकी आश्चर्यपूर्ण दृष्टिपर ध्यान दिया। बिना एक शब्द बोले वह उठा और वहाँसे चला गया।

कालूके अंतरंगमें जो विभ्रान्ति थी वह क्रमशः बाहर आ रही थी, जहाँ वह उसका सामना कर सकता था। उसे अपने आपको पूरा-पूरा समझनेकी आवश्यकता थी। उस वृद्ध मालीने उसके मनको हिलाकर इस दिशामें कुछ काम किया था। कालू अब आत्म-सन्तोष धारण किए नहीं रह सका।

तथ्य स्पष्टतासे कालूके सम्मुख आ खड़े हुए। उसके जीवनमें क्रान्ति आनेसे पूर्व उसकी भी विश्वनाथके समान अपनी एक धार्मिक निष्ठा थी। उसे कभी बनी व्यवस्थाओंकी सत्यतामें कोई संशय उत्पन्न नहीं हुआ था। जिन बातोंमें धर्मका निषेध किया गया था, जो पाप बतलाए गये थे, वे उसके मनमें बिना द्वारोंके भिन्न-भिन्न कमरे थे। इन्हें स्वीकार या अस्वीकार करनेकी कभी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। उनके विषयमें उसने कभी कोई तर्क-वितर्क नहीं किया था। वह अपने आपमें सन्तुष्ट था। दूसरे लोग क्या करते हैं, इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं थी।

किन्तु भूखके साथ प्रश्न उठने लगे। अंतिम बार नलीसे फूँकी अग्निकी भस्मके साथ उसका विश्वास भी हवामें उड़ने लगा। एक छोटा-सा क्रान्तिकारी उसी समय उत्पन्न हो गया जब उसने अपने औजार हथियार बेचे और महानगरकी ओर प्रस्थान किया। आँखों और कानोंका विकास हुआ उस अदालतमें। तथा जेलने बी-१० की सहायतासे उसके मुख्य और स्पष्ट विरोधका निर्माण कर दिया। उसी विरोधके प्रभावसे

उसका आचरण विप्लवपूर्ण होने लगा और वह मानव तथा देव दोनोंको चुनौती देने लगा। परिणाम क्या हुआ? उसने ब्राह्मणके रूपमें युद्ध करनेके लिए वेष बदला। प्रत्येक श्वासके साथ वह अपनेको अधिकाधिक गहरे 'अधर्म' में डुबाता गया। ब्राह्मणीय हिसाब-किताबसे इस अधर्मका दुष्परिणाम निश्चित था। वह आत्म-परायण ब्राह्मण कमारकी ओर देखकर बोल उठा :—

"कालू, तूने अपने पाप-कर्मसे अपना सर्वनाश कर लिया। हो सकता है तेरे साथी तुझे न पहिचान सकें और दण्ड न दे पावें। किन्तु अपने कर्मसे तू कैसे छूट सकेगा? जो कुछ तू इस जन्ममें करता हैं, वही तो तेरा भाग्य बनकर अगले जन्मोंमें तेरे कपालपर लिखा जाता है। और कालू, तूने अपनी पुत्रीको भी डुबा दिया। समझा तू?" उसके भीतर मरते हुए कमारने उत्तर देनेका प्रयत्न किया। किन्तु एक ही व्यक्ति एक ही समय दो कैसे बन सकता है? कैसे वह साथ ही साथ विश्वास और अविश्वास धारण कर सकता है?

विश्वनाथ जब मुस्कुराया और बोला था, तब उसे इस बातका कोई पता नहीं था कि वह अपने श्रोताके मनमें गुप्त विरोधके अङ्गार जला रहा है। उसीके कारण उन अंगारोंसे अन्ततः एक ज्वाला फूट निकली।

बात थी शिवके अभिषेकके दूधकी। दूधके तीन बड़े-बड़े कलश भगवान्के सिरपर ढाले जाते थे, और वह दूध बहकर वेदीकी बाहरी दीवालके बाहर फूल और बेल-पत्रों सहित एक टङ्कीमें एकत्र हो जाता था। टङ्की प्रतिदिन खाली कर ली जाती थी और उसकी समस्त सामग्री एक मील पूर्वकी ओर ले जाकर विधिवत् मन्त्रोंके साथ गंगाजीकी पवित्र धारामें बहा दी जाती थी।

मन्दिरके इस समस्त दैनिक कार्यक्रमको पूरा करनेका भार पुजारीपर था। उसने एक दिन देखा कि टङ्कीमें दूध नाममात्रको नहीं है। उसमें केवल कुछ मुरझाए हुए फूल और बेलपत्तियाँ पड़ी हैं। तब उसने सोचा, जो कलश दूधके ढाले थे उस दूधका क्या हुआ? दूसरे दिन फिर उसने

टङ्कीको देखा, और फिर भी वहाँ दूध नहीं दिखलाई दिया ।

तब पुजारीने गुप्त रूपसे पहरा लगाया । वह वहाँ बड़ी राततक खड़ा रहा । फिर बड़े तड़के उठा और सफेद फूलोंवाली कुन्दलताके पीछे सिमटकर बैठ गया और देखने लगा । थोड़ी देरमें ढालू कन्धोंवाला एक मनुष्य वहाँ आया । उसके दोनों हाथोंमें एक-एक बालटी थी । वह उस टङ्कीपर झुका और उसने एक टीनका डब्बा उसमें डुबाया । यह और कोई नहीं, वही बूढ़ा माली विश्वनाथ था ।

पुजारी एक क्षण-भर देखता रहा । जब उसकी बालटी लगभग भर चुकी, तब वह कूदकर अपने पैरों खड़ा हुआ और उस बूढ़ेकी ओर दौड़ पड़ा । पुजारीने विश्वनाथकी बाँह पकड़ ली ।

"सो तू है ? अरे, तू ही है ?"

गालियोंकी बौछार होने लगी । तूने भगवान्को भी धोखा देनेका साहस किया । तू तो इसी मन्दिरका नौकर था, कोई बाहरका नहीं । फिर भी तूने इसी पवित्र भूमिमें चोरी की । अरे, तू मनुष्यकी आँखोंसे बच भी जाता, किन्तु भगवान्की सर्वदर्शी आँखसे कैसे छिपा रह सकता था ? क्या तुझे कोई भय ही नहीं है ? क्या तू अधर्मी है, पापी है, नरक जायगा ? इत्यादि ।

विश्वनाथने धीरेसे अपनी बाँह छुड़ा ली और धीमे स्वरसे कहा "दूधका अभिषेक तो हो चुका । उसका प्रयोजन पूरा हो गया । अब उसे केवल नदीमें फेंककर व्यर्थ बहाना है । तब मैंने देवताका क्या लिया है ?"

पुजारी क्रोधसे काँपने लगा । विधि तो यही थी कि वह दूध पवित्र नदीमें सिराया जाय । उस दूधको एक नीच जातिका मनुष्य अपने हाथसे छूकर अपवित्र कर डाले ? अरे, वह यह कहनेका साहस भी करे कि गंगा मातामें चढ़ानेसे दूध व्यर्थ चला जाता है ?

"तू नौकरीसे अलग हटाया गया । यह स्थान नीचों और बहिष्कृतोंके लिए नहीं है । तेरे जैसे मनुष्योंके साथ दया करना भी पाप है । अब इस

मन्दिरके आस-पास कभी अपना काला मुँह मत बतलाना।"

पुजारीने चिल्ला-चिल्लाकर सबको जगा दिया। थोड़ी देरमें मन्दिरका मालिक भी घटनास्थलपर पहुँच गया। पुजारीने प्रसन्न होकर उसे सारी कथा सुना दी।

"मुझे उस पहली घड़ीसे ही इस बेकार मनुष्यपर सन्देह था। ऐसे तो यहाँ हजारों फिरते हैं। वे गन्दी मक्खियोंके समान हमारे भले शहरको खराब किए डालते हैं। किन्तु अब यह आदमी मन्दिरके पास अपना पैर नहीं रख सकेगा। मैंने ठीक समयपर इसे पकड़ लिया।" पुजारी अपनी चतुराईके गर्वसे फूला नहीं समाता था। "इसने अभिषेकके दूधसे आरम्भ किया। यह ढीठ होते-होते किसी दिन और वस्तुपर भी अपना हाथ साफ कर दिखाता। मैं तो ऐसे आदमियोंको उनकी सूरत देखते ही पहिचान लेता हूँ।"

कालू अपराधीकी ओर बँधी दृष्टिसे देखता रहा। वह बिना एक शब्द मुँहसे निकाले उससे पूछ रहा था।

"मैं यह दूध गरीब बच्चोंको बाँटने ले जाता हूँ।" विश्वनाथने बतलाया। "गौतम रोडकी एक गलीमें कोई बीस अनाथ बालक हैं।" वह कुछ और कहना चाहता था, किन्तु उसने बात मोड़ दी। "अब मैं छुट्टी लेना चाहता हूँ।" उसने अपना कंधा हिलाते हुए कहा। वह फिर पीछेकी ओर जहाँ खपरैल झोपड़ियोंमें उसका भी एक कमरा था, वहाँको चल पड़ा।

कोलाहलसे आकर्षित होकर लेखा भी वहाँ आ गई थी और मन्दिरके फाटकपर खड़ी थी।

"क्या उसे जाना ही पड़ेगा?" अपने पितासे बोलते समय उसके स्वरमें दुःखकी ध्वनि थी।

"उसका दुर्भाग्य है। किन्तु वह इतना मूर्ख तो नहीं है। उसे इतना ज्ञान तो अवश्य ही रहा होगा कि उसके वैसा करनेका क्या परिणाम होगा? मैं स्वयं भी तो शिवजीके अभिषेकके दूधका कुछ नहीं

कर सकता।"

"बाबा..."

"मैं जानता हूँ तुझे कैसा लगता होगा, लेखा ! मुझे भी वैसा ही लग रहा है। किन्तु उसे इस प्रकार चुनौती देनेकी क्या आवश्यकता पड़ गई ?"

"चुनौती ?" लेखाने आश्चर्यसे पूछा।

"यह चुनौती नहीं तो और क्या है ? कर्मकांडकी बनी व्यवस्था तो बदली नहीं जा सकती। वही तो उसकी सारी शक्ति है।"

"विश्वनाथ काका भूखे बालकोंको दूध बाँटते थे।"

काल्रूने सिर हिलाया "इसको कोई अस्वीकार नहीं करता।"

"हो सकता है कि उन भूखे मरते हुए बच्चोंमें उसने अपनी मरी पोतीको पहिचान लिया हो, वही तीन वर्षकी मीनू जो भूखसे मरी थी। उसने आपसे अपनी इस पोतीके विषयमें कहा था। आपने मुझे बताया था।"

काल्रू चौंक गया। उसने यह बात सोची ही नहीं थी।

"उन छोटे-छोटे भूखे बच्चोंको दूध पिलानेमें विश्वनाथ काका अपनी उसी मीनूका पालन कर रहे थे। जो दूध व्यर्थ फेंका जाता था उससे उसने अपनी मीनूकी कितनी ही बार रक्षा कर ली। उसकी यही भावना रही होगी।"

कुछ देर सन्नाटा रहा। फिर अकस्मात् बाबा क्रोधमें आ गये। "चल" वे कठोरतासे चिल्ला उठे "अपन यहाँसे चलें।"

लेखा उसके पीछे-पीछे चली गई। घर आकर काल्रूने अपने कमरेमें प्रवेश किया और दरवाजा भीतरसे बंद कर लिया। थोड़ी ही देरमें लेखा वहाँ चायका ग्लास लेकर पहुँची। काल्रू कमरेमें टहल रहा था। लेखाने कुछ कहनेके लिए अपना मुँह खोला। किन्तु बाबाके मुखपर तनावकी मुद्रा देखकर वह ठिठक गई और चुपचाप वहाँसे वापिस लौट गई।

आध घंटे पश्चात् लेखा फिर वहाँ आई। अब काल्‌ जमीनपर बिछी हुई एक चटाईपर पालथी मारे और सिर झुकाए बैठा था। उसने चायके ग्लासको छुआ भी नहीं था।

"बाबा!"

"चन्द्रलेखा!" उसने ऊपरकी ओर देखा। उसका मुख शान्त था। "क्या तू समझती है कि यही सत्य है?"

"सत्य?"

"यही कि उसे ऐसा लगा मानो वह अपनी मीनूको ही दूध पिला रहा हो? मीनू जो भूखसे मर चुकी थी?"

लेखा उसके मनोगत भावको नहीं जान सकी। वह बोली "बाबा! यह तो मेरी कल्पना है।"

काल्‌ने अपना सिर हिलाया और अपने आप कहा "मैं इसका ठीक-ठीक पता लगाऊँगा।"

"मैं आपके लिए दूसरी चाय बना लाती हूँ।" लेखा उस ठंडी चायके ग्लासको उठाकर कमरेसे बाहर चली गई।

दो मिनट भी नहीं हो पाए थे कि लेखाने रसोईघरमें काम करते हुए काल्‌के पैरोंकी आवाज सीढ़ियोंसे जल्दी-जल्दी उतरते हुई सुनी। वह दौड़कर छज्जेपर आई। काल्‌ सड़कके उस पार जाकर मंदिरके फाटकसे भीतर हो गया।

"उन्हें क्या हो गया है?" लेखा चकराई हुई सोचने लगी।

काल्‌ खपरैलकी झोपड़ियोंके पास चला गया। विश्वनाथने अपना सब सामान एक छोटी-सी पोटलीमें बाँध लिया था और अपने साथियों मित्रोंसे बिदाई ले रहा था। मंदिरके सब नौकर-चाकर उसके आसपास बड़ी सहानुभूतिपूर्वक खड़े थे। मालिकको आते देख वे सब इधर-उधर हट गये।

काल्‌ने मालीके सम्मुख पहुँचकर एक अद्भुत बात कही।

"मुझे इस बातका भरोसा होना चाहिए कि तूने भूखे बच्चोंको दूध

कालू अकड़कर खड़ा हो गया। वह एक अद्भुत ही मनुष्य बन गया था।

"दूधका इससे अच्छा और कोई उपयोग नहीं हो सकता।" वह गंभीरतासे बोला।

"दूधके दानी समझ जायँगे कि उन्हें धोखा दिया गया है। और इस अधर्मी बदमाशके लिए तो अब मंदिरमें कोई स्थान नहीं मिल सकता।"

"उसने तो वह दूध दे दिया......" कालूने कहना प्रारंभ किया। किन्तु फिर तिरस्कारके भावसे कंधा हिलाकर वह रुक गया।

"यह नीच और बहिष्कृत!" पुजारी गुर्राया। उसने एक माह भर खूब खा-पी लिया और सूखे साँपके समान दूध पीकर फिर पनप उठा। छिपकलीकी खालमें साँप बैठा है!"

"मैं उसका आदर करता हूँ, क्योंकि उसके भीतरका हृदय मर नहीं गया।" यह कहकर और विश्वनाथको आदेश देकर कालू वहाँसे चल पड़ा। बूढ़े मालीने वे दोनों बालटियाँ उठा लीं। उनके बोझसे उसकी बाँहें तन रही थीं।

"दूधको उबालना पड़ेगा" उसने मालिकके पास पहुँचकर कहा।

"उबालना?"

"वह टंकीमें पड़ा रहा है। बच्चोंके लिए दूध..." बूढ़ेकी आवाज धीमी और क्षमा-याचनाके भावसे पूर्ण थी।

"ठीक कहते हो।"

विश्वनाथने अपने कमरेमें कोयलोंकी सिगड़ी जलाई। कालू वहीं खाली जमीनपर बैठकर सोचने लगा। उसने मंदिरकी अवहेलना की है। मंदिरके पंच इस बातको जाने नहीं देंगे। उसने उन पाँच पंचोंको स्मरण किया। प्रत्येक अपने धन और अपने गौरवसे प्रभावी था। सर अकाल बन्धु पंचायतके सर्वशक्तिमान अध्यक्ष थे। हर कोई जानता था कि उन्होंने कितना चावल संचय करके रख लिया था। ज्यों ही बाजारमें

अन्नकी कमी हुई और लोग भूखों मरने लगे, त्यों ही उनकी आमदनीका कोई पार नहीं रहा। लोगोंके झुंडके झुंड मर रहे थे और उनका मुनाफा बढ़ रहा था। ये ही सर अकालबंधु मन्दिरके सर्वोपरि अधिकारी थे। कालू पंचायतके अधीन था।

तब उसने ऐसी चुनौती देनेका साहस क्यों किया? चतुराईसे उसका प्रयोजन अधिक भलीभाँति सिद्ध हो सकता था। किन्तु उसे अब चोट लगाना ही था, और विश्वनाथके समतौल बनना था—उसकी मूर्खता और उसकी शक्ति, दोनोंमें समतौल!

"अब इसीमें भलाई है कि मैं यहाँसे चला जाऊँ।" विश्वनाथने धीरेसे कहा। वह अपने मालिकके मनको भाँपना चाहता था।

"किसलिए?"

"मैं आपके ऊपर कोई विपत्ति नहीं लाना चाहता। मैं इतना कृतघ्न कैसे हो सकता हूँ?"

"नहीं, तुम यहीं रहोगे।"

दोनों चुप हो रहे। दूध तैयार हो गया। विश्वनाथने बालटियाँ उठा लीं। वे मन्दिरके चौकको पार करके सड़कपर आ गये। विश्वनाथ आगे-आगे चलने लगा।

"स्थान दूर नहीं है" उसने कहा, और कालूने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

दस मिनट चलकर वे "ग्लटन्स इन" के पीछेकी सकरी गलीमें मुड़े। यह 'इन' अपनी रसेदार चटपटी तरकारियोंके लिए सुप्रसिद्ध थी। गलीमें धूलपर स्त्रियाँ बैठी थीं। उनकी गोदोंमें बच्चे थे। दृश्य कोई नया नहीं था। प्रत्येक स्त्रीके हाथमें एक-एक टीनका डब्बा था जिसे उसने किसी कचरेके ढेरमेंसे उठा लिया था। स्त्रियाँ सूख रही थीं और उनके बच्चे दुबले और बड़े-बड़े पेटके थे। ज्यों ही ये वहाँ पहुँचे त्यों ही वहाँ हलचल मच गई। सारी आँखें जाग उठीं। परन्तु सिवाय इधर-उधर एकाध शब्दके, बोल कोई कुछ नहीं रहा था।

विश्वनाथने एक छोटेसे डब्बेके द्वारा दूध बाँटना प्रारम्भ किया। वह उनके टीनके डब्बोंको भरता जाता था। जब बाल्टी खाली हो गई, तब उसने उन्हें उठाया और वह अपने मालिककी ओर मुड़ा।

"आपको इन्हें कुछ कहना है ?"

"मेरे पास क्या कहनेको है ?"

कालूकी सब शंकाएँ दूर हो गईं। उन जीवित बालकोंमें विश्वनाथने अपनी उस बच्चीको पा लिया था जिसे वह पहले बचा नहीं सका।

"क्या कल भी ऐसा होगा ?"

"बहुतसे कलतक ऐसा ही होगा।"

"आपत्ति उठेगी ?"

"मुझे कोई परवाह नहीं।"

वे दोनों उस गलीमेंसे बाहर निकले। ग्लटन्स इनके पाससे निकलते समय उनकी नाकें अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थोंकी सुगन्धसे भर गईं।

"जब तक आप जैसे मनुष्य विद्यमान हैं, तब तक वे सर्व प्रकारसे सुरक्षित हैं।" विश्वनाथने विचित्र प्रकारकी दृष्टिके साथ कहा।

"मैं नहीं समझ पाया।"

"जब तक आप जैसे सत्य सुहृदय ब्राह्मण वर्तमान हैं, तब तक लोग इस सामाजिक व्यवस्थापरसे विश्वास नहीं खो सकते ;"

"सत्य सुहृदय ? मैं ?" कालूको हँसी आ रही थी। हाय, यह वृद्ध मनुष्य जानता होता ! यदि विश्वनाथ जान लेता कि उस महानगरके इतिहासमें वह सबसे बड़ा कपटी था; कि विश्वनाथ और मन्दिरका महन्त भाई-भाई थे ! कालूने अपनी आँखें फेर लीं।

यदि जेलवाले उसके मित्रने उसे ब्राह्मण बना देख लिया तो कैसा ? बी–१० की कल्पनाने रूप धारण कर लिया था। धरतीके भीतरसे एक जादूकी कला द्वारा वह मन्दिर उठ खड़ा हुआ था। किन्तु बी–१० ने यह कभी नहीं सोचा होगा कि मुखपरका बनावटी चेहरा भी मनुष्यकी आत्माको खा डालता है। उसे यह कैसा लगेगा ? हम धरतीकी धूल हैं।

कान्ह इसी धूलमेंसे उठा है। उसकी पुरानी कहानी कह सुनानेवाली गन्ध उसके पसीनेके साथ धोकर निकाल दी गई है। वह कस्तूरी-मृगके समान अपनी ही सुगन्धमें आप ही मोहित है।

बी—१०की जेलकी अवधि शीघ्र पूर्ण होनेवाली है। कालूने उस तिथिका ध्यान रखा है। वह राष्ट्रीय पूजाके त्यौहार, दशभुजावाली देवीके उत्सवके दूसरे दिन है। वही दिन परम्परासे घर लौटनेका है। किन्तु क्या बी—१० का कोई घर है? अब उसे छूटनेमें केवल एक माहकी देर है। भूखे मनुष्योंको अन्नके पास ले जानेके अपराधमें उसके जेलखानेमें पूरे बारह मास हो जावेंगे।

१३

विपत्तिके बादल तीन दिनतक सघन और काले बनते रहे। तत्पश्चात् वे भरकर बरस पड़े।

बात तेज पंखोंपर चारों ओर फैल गई। कालू यह जानता था। शिवजीके अभिषेकका दूध अब एकत्र करके गंगाजीमें नहीं बहाया जाता। जो भक्त प्रतिदिन तीन कलश दूधका दान करते थे उन्हें अब अपने उतने धनका पूरा पुण्य नहीं मिलेगा।

कालूको आपत्तिकी गंभीर घुमड़ सुनाई पड़ रही थी और वह जान गया था कि आगे उसपर क्या बीतनेवाला है। उसने अपनी दुग्धाभिषेक शीर्षक डायरीके पन्ने उलटाये और यह अंदाज लगानेका प्रयत्न किया कि उसे किसका कैसा सामना करना पड़ेगा। सबसे प्रथम जिस मनुष्यका पुण्य छीना गया था वह था एक सोने-चाँदीका व्यापारी। कालूको उसके गर्वीले व्यवहारकी बात याद थी। दुग्धाभिषेककी विधि प्रारम्भ ही हुई थी तब एकदिन उसने अपनी मोटरगाड़ी मन्दिरके द्वारपर रोकी और अपने ड्राइवर द्वारा मंगल अधिकारीको बुलवाया।

"मेरे हृदयकी एक प्रार्थना है। सोनेका मूल्य उत्तरोत्तर खूब बढ़े। मैं देवताको एक दुग्धाभिषेक अभी कराऊँगा और दूसरा अगले माह। इससे मेरी कामना पूरी हो जायगी!"

उसने अपने दूध भेजनेकी मिती तिथि नोट कर ली। उसी बीच कालूने अपनी डायरीमें दाताका नाम, उसके पिताका नाम और उसके पितामहका नाम लिख लिया।

पूरे दो घंटे भी न होने पाये थे कि एक दूसरा व्यक्ति वहाँ आ उपस्थित हुआ। जितना पहला मनुष्य बड़ा और बड़े पेटका था, उतना ही यह छोटा और दुबला-पतला था। विनयशील भी उससे अधिक दिख-

लाई पड़ा। उसने अपनी गाड़ी पीछे छोड़ी और वह पैदल चलकर वहाँ तक आया जहाँ मंगल अधिकारी अपने कुछ काम-काजमें लगा था।

"सोनेका मूल्य उत्तरोत्तर नीचे उतरता जाय तो मैं दो दुग्धाभिषेक कराऊँ?" फिर उसने एक तिरछी दृष्टिसे देखकर कहा "क्या दूध मसालेदार बनाया जाय? क्या मैं उसमें कुछ शक्कर और बादाम पिसवाकर घोल दूँ? मुझे तो स्वयं ऐसा ही दूध पसंद आता है।"

"देवताको तो शुद्ध दूध चाहिए।" कालूने दृढ़तासे कहा।

सूचीपर जो अगला दिन था वह एक बड़े महोत्सवका था और उस दिन 'सेवाय' के मालिककी बारी थी। सेवाय शहर भरके सर्वश्रेष्ठ होटलोंमेंसे एक था। सेवायका मालिक स्वयं तो नहीं आया, किन्तु उसने अपने मैनेजरको भेजा। मैनेजर साहबके सिरपर विशाल पगड़ी थी। इस उत्सवके दिन दूधके पाँच कलशोंसे अभिषेक होनेवाला था जैसा कि वर्षमें कुछ विशेष दिनोंपर हुआ करता था। यह बात मैनेजरके अनुकूल थी। उसने गर्वसे दाँतोंकी चमकके साथ कहा "दो कलश दूध अधिक खरीदनेसे मेरे मालिकको कोई विशेष क्षति नहीं पहुँचेगी। सेवायमें तो इससे भी अधिक दूध सालभर ही प्रति दिन खर्च होता है।"

'सेवाय'! कालूके हृदयमें एक आवेगकी लहर उठ खड़ी हुई। उसे टागोर चौककी होटलका स्मरण हो आया जहाँ उसने अपने उन दुर्दिनोंमें एक दिन काँचकी खिड़कियोंके भीतर आकर्षक ढङ्गसे रखे हुए अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ देखे थे। वह खड़ा होकर एक लाल रसगुल्लोंके थाल-की ओर देखने लगा था। "तुम्हारे भीतर कितना मीठा रस भरा होगा, भाई!" उसने इतना अपने आप कहा ही था कि पीछेसे आवाज आई "चलो?" वहाँसे मुँड़कर वह सेवाय होटलके बायें कोनेतक गया था जहाँ उसे कुछ गड़बड़ दिखाई दी। भूखे अनाथोंकी एक टोली वहाँ खड़ी थी। उनके सिर ऊपरको थे और उनकी आँखें तीसरी मंजिलकी एक खिड़कीकी ओर जमी हुई थीं। कालू भी वहाँ खड़ा होकर देखने लगा था। वहाँ दो गोरी चमड़ीके सैनिक खिड़कीकी चौखटसे बाहरको झुके

हुए खड़े थे।

अकस्मात् एक सन्नाटा छा गया। अनाथोंकी भीड़ एक वृक्षवनके समान हो उठी थी। एक क्षण इसी प्रकार बीता। फिर उन गोरे सैनिकों-मेंसे एकने अपना हाथ झटकेसे बाहर किया और कोई चीज उछालकर फेंक दी। तत्काल ही वे सब मनुष्य सजग हो उठे। वे अपने घुटने टेक-कर घूर-घूरकर ढूँढ़ने लगे। वे कुछ-कुछ गुनगुनाते और साथियोंको इधर-उधर ढकेल रहे थे और परस्पर लड़ रहे थे। कुछ क्षणोंमें वह खेल समाप्त हो गया। भीड़के सब मनुष्य हाँफते हुए अपने पैरों खड़े हो गये। किन्तु उनमेंसे दो-तीन अब भी उँकरू बैठे जल्दी-जल्दी कुछ रोटीके टुकड़ोंको चाब रहे थे।

"हाँ, उन्हें जल्दी-जल्दी खानेका कारण था। कालूने देखा कि उन भूखोंमेंसे एकने अपनी अँगुलियाँ दूसरेके मुँहमें डाल दीं और वहाँसे रोटी का अधचबा टुकड़ा निकालकर अपने मुँहमें डाल लिया। ठगा गया अनाथ उसे अपनी लकड़ी-सी सूखी बाँहोंसे पीटने और रो-रोकर गालियाँ देने लगा।

कालूने अपनी आँखें ऊपरको उठाईं। वे सैनिक उस दृश्यको देख-कर खूब हर्षित हो रहे थे। उसने उनकी प्रसन्नताकी हँसीको भी सुना। फिर एक सफेद हाथ उठा और उसने रोटीका एक टुकड़ा उछाला। फिर वही धक्काधूमी। एक बूढ़ा मनुष्य आहत होकर भीड़से अलग हट गया और सड़कके किनारेपर बैठ गया। वह धीरे-धीरे झूम रहा था और आँसू उसके भूरे बालों भरे गालोंपरसे टपाटप नीचे गिर रहे थे।

"और, साहब, कुछ और!" "वे क्षुधा पीड़ित अनाथ हाथ जोड़े, ऊपरको मुँह उठाये, प्रार्थना कर रहे थे। वे अपनी निकली हुई पसलियों-को और पेटके गड्ढेको पीट रहे थे। किन्तु सैनिक अब उस खेलसे थक गये थे। तत्काल ही दो युवक अनाथ जो अपने साथियोंकी अपेक्षा अधिक चतुर थे, आगेको आकर उन साहबोंकी रुचिको पुनः जाग्रत कर मनोरंजन करनेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने अकस्मात् जोरसे 'हो' की

ध्वनि करके अपनी सूखी जाँघोंपर ताल ठोंका, जैसा कि पहलवान लोग कुश्ती लड़नेसे पहले किया करते हैं। उग्र चिल्लाहटके साथ उन्होंने एक दूसरेको चुनौती दी और परस्पर मुँहपर एक-एक जोरकी चपत जमाई। हड्डियोंकी अँगुलियाँ हाड़ों भरे गालोंपर खड़खड़ा उठीं। चपतपर चपत पड़ने लगी, और चिल्लाहटपर चिल्लाहट। दूसरे सब देखने लगे। पहले उन्हें आश्चर्य हुआ, फिर उन्होंने कुछ समझनेका प्रयत्न किया, और फिर एक क्षणमें वे उस खेलका अर्थ समझ गये। वे सब अपनी ध्वनियों द्वारा भी उस खेलकी सनसनीको बढ़ाने लगे। चिल्लानेके प्रयत्नसे उनके गलों-की नीली नसें फूलकर बाहर दिखने लगीं। वे तब तक चिल्लाते रहे जब तक उनकी आवाज घुटने नहीं लगी। फिर वे सब ही परस्पर मारामारी करने लगे। उनके आघात क्रमशः तीव्र होने लगे। यहाँतक कि उनकी लड़ाई दिखाऊ न रहकर सची बन गई। वे सब पागल जैसे हो रहे थे। भूखे नरकंकाल क्रुद्ध पशुओं जैसे लड़ने लगे। एक हाड़ोंकी माल दूसरी हाड़मालपर चोट कर रही थी। पकड़, लोंच, दाव-पेंचका भयंकर दृश्य दिखाई देने लगा। सूखे अंगोंसे रक्त झरने लगा। वे अपने-अपने बलके अन्तिम अंशोंका भी पूरा प्रयोग करने लगे, मानों उस युद्धकी विजयसे उन्हें जीविका मिल जावेगी। उनकी श्वासकी घर्राहट फटी नलीकी फूँकके समान सुनाई देने लगी। उनमेंसे दो-तीनकी जीवनशक्ति अन्ततः क्षीण हो गई। वे एक चीत्कारके साथ वहाँसे भाग पड़े। उनकी भयसे भरी आँखें अपने गड्ढोंमेंसे बाहर निकल रही थीं।

ऊपरकी खिड़की परके श्वेतमुखोंपर संतोषकी छाया आई और वे हँसने लगे।

कालूका जी घुमड़ने लगा। उसे कै हो आई थी।

इस दृश्यकी प्रत्येक बात कालूकी स्मृतिपर अंकित थी। उस स्मृतिके जाग्रत हो उठनेसे वह मुँह बाये रह गया।

और अब शिवरात्रि आगई। यह तो महान् उत्सवका दिन है। मंडप-के तलपर खड़े होकर कालूने देखा भक्तोंका प्रवाह फाटकके श्वेत स्तम्भोंके

बीचसे अविच्छिन्न मन्दिरमें चला आरहा है। थोड़ी ही देरमें मन्दिर का विशाल चौक और हरी दूबका मैदान खचाखच भर गया। शिवरात्रि वर्षमें केवल एक बार ही तो आती है। और उस दिन भगवान्‌के दर्शन-मात्रसे महान् पुण्य कमाया जा सकता है।

कालूने पुनः अपनी डायरीके पन्ने उलटे और अन्य अतिथियोंका स्मरण किया। उसे उस एक मनुष्यका स्मरण आया जिसकी आँखें विलक्षण रूपसे पास-पास थीं; और जो अपनी इच्छा प्रकट नहीं कर रहा था, क्योंकि उसका कहना था कि भगवान् हृदयकी सब बातें जानते ही हैं। कालूको भरोसा हो गया कि वह कोई चोर है जो रातको अच्छी लूटके लिए प्रार्थना करने, और देवताको अपना सहायक बनाने आया होगा! एक सफाचट मूंछोंवाला अँग्रेजी पोशाकमें सरकारी अफसर था जो अपनी पद-वृद्धिके लिए प्रार्थना करने आया था। वह दो वर्षमें ही अव-काश ग्रहण करने जा रहा था, किन्तु उस अवधिके भीतर कोई ऊपरका स्थान खाली होता दिखाई नहीं दे रहा था। वह यह नहीं बतला सकता था कि भगवान् उसकी कैसी सहायता करें, सिवाय इसके कि जो मनुष्य उसकी पदवृद्धिमें आड़े आरहा हो उसे वहाँसे हटा दिया जाय।

कालूकी डायरीने कुछ दूसरे प्रकारकी मूर्तियोंका भी स्मरण कराया। एक उत्सुक माता अपने ऐसे लड़केको परीक्षामें सफल कराने आई थी, जो अब चौथी बार उसी परीक्षामें प्रवेश करने जा रहा था। एक भग्न-हृदय स्त्री अपने श्वासकी व्याधिसे पीड़ित पतिको अच्छा करानेकी आशा लेकर पूजा करने आई थी।

डायरीमें एक अस्पष्ट उल्लेख था जिसके नीचे लाल स्याहीकी रेखा खिंची थी। "शिरपुर गाँवका रतनदास वल्द रामदास, पितामहका नाम गोविन्ददास।" कालूने जब इस नामकी बात सोची, तब जैसा बहुधा हुआ करता था, उसके हृदयमें एक अशान्तिकी लहर उठ खड़ी हुई। वह बंगालके एक दूरवर्ती गाँवका किसान था। भूखकी तीव्रतासे आहत होकर वह अपनी स्त्री, पुत्री और दो पुत्रोंसहित उस महानगरमें आ

पहुँचा था। उसका सबसे छोटा लड़का मर गया। एक दिन रतनदास सड़कोंपर भीख माँगता हुआ, अपने शेष कुटुम्बियोंसे पृथक् हो पड़ा। उसने उन्हें महानगरकी सब दिशाओंमें, बाघबजारसे बालीगंजतक, सिआल्दा-से हावड़ातक, बहुत खोजा, किन्तु उनका कहीं कोई पता नहीं लगा। क्या भगवान् उसके उन कुटुम्बियोंमेंसे किसी एकके भी उसे फिर दर्शन करा देंगे—किसी एक पुत्र, पुत्री या उनकी माताका? अधिककी माँग करनेका साहस नहीं होता। क्या भगवान् अपने जीवनके संध्याकालमें पहुँचे हुए इस भक्तपर दया करेंगे? इस प्रार्थनाके साथ उसने अपनी हथेलीपर पाँच तांबेके पैसे रखकर विनयसे नीची दृष्टिसहित अपना हाथ पसारा था।

कालू दूसरी ओर देखने लगा। फिर तत्काल ही अपनी वाणी पाकर बोला "भाई, मैं तुम्हारी ओरसे देवकी आराधना करूँगा। तुम इन पैसोंको अपने ही पास रखो।"

बूढ़े किसानने नीचेकी ओर झुककर ब्राह्मणके चरण छुए, और वह बोला "इसे अस्वीकार मत कीजिए, महाराज! बस, इतने ही पैसे मैं बचा पाया हूँ। उससे एक छटाक दूधसे अधिक नहीं आवेगा। किन्तु यदि जो कुछ मुझसे बने उतना भी न दूँ, तो पुण्य कहाँसे होगा?"

अतएव कालूने वे पाँच पैसे ले लिये। किन्तु उसका मन दुखी था। वह रतनदासको कैसे बतलाता कि उस मन्दिरमें कोई सच्चा देवता नहीं है, और उस झूठे देवको चढ़ाया द्रव्य सब व्यर्थ जानेवाला है! धनी भक्तोंकी ओरसे जो हजारों रुपयोंकी वर्षा वहाँ हो रही थी उससे इन पाँच ताँबेके टुकड़ोंका मूल्य कहीं अधिक था, क्योंकि ये पैसे उस गरीबके हृदयके रक्तसे बने थे। दूसरोंसे चाल खेलना तो बदला लेनेकी अपनी प्रतिज्ञाको पूरा करना था। किन्तु इस गरीबको धोखा देना तो अपने ही हाड़-मांसके साथ छल करना हुआ!

वह उन पाँच पैसोंका दूध लेगा और शेष दूधका मूल्य स्वयं चुकाएगा, जिससे तीन कलशी दूध भगवान्पर चढ़ाया जा सके। इससे

उसके क्षुब्ध मनको कुछ शान्ति मिलेगी।

कालूने डायरी बन्द कर दी और वह बाहरको देखने लगा। सड़कके दोनों ओर छोटी-छोटी दुकानें खड़ी हो गई थीं जिनमें पूजाकी नाना सामग्री बेची जा रही थी—नारियल, मिट्टीके छोटे-छोटे दीपक, बेलपत्री, सिन्दूर आदि। कलाकार मिट्टीके विविध खिलौने टोकरियोंमें भरे बैठे थे—नाना रंगोंकी गुड़ियाँ, पक्षी और पशु। फूल बेचनेवालोंका व्यापार खूब चल रहा था। बहुत लोग चढ़ानेके लिए पुष्प ले रहे थे। किन्तु बीच-बीचमें युवती लड़कियाँ स्वयं जूड़ेमें पहननेके लिए भी सफेद पुष्प-मालाएँ ले लेतीं थीं। उत्सवका दिन अच्छा चल रहा था।

दूसरे उत्सवोंके दिनों मण्डपसे देखते हुए कालू कुछ जय-जयकारकी ध्वनियाँ लगा देता था। उसे ऐसा प्रतीत होता था मानो वे वेदनाके दीपक उसीके चरणोंपर चढ़ाये गये हों और धूप उसीके मुँहके लिए खेई जा रही हो। वहाँ कोई सच्चा मन्दिर तो था नहीं। उसीने स्वयं एक जादूका खेल खड़ा कर रखा था। उस दृश्यमें सचाई केवल स्वयं उसके व्यक्तित्वमात्रकी थी।

"उसी मात्रकी ?"

आत्मसम्मान और वैयक्तिक प्रभावकी भावनाने उस क्षोभकारी प्रश्नको छिन्न-भिन्न कर दिया।

वह पाँच ताँबेके पैसोंवाला गरीब मनुष्य ! क्या वह उस भक्तोंकी भीड़-मेंसे एक मात्र नहीं था ? क्या वह और वे शेष भक्त-समुदाय एक नहीं थे ? सामान्य लोग तो उन धनी लोगोंसे सौगुने अधिक थे, जो धनके द्वारा पुण्य कमाते थे, जो पुण्यको एक सस्ता सौदा समझकर उस व्यापार-को रुचिपूर्वक करते थे।

सत्य यही था, उसके व्यक्तित्वसे भी अधिक सत्य। जूट और कपास-के कारखानोंके कुली, उनकी स्त्रियाँ जिनकी गोदमें बच्चे थे, वे सब फल, फूल और दीपक मोल ले रहे थे। रिक्शा चलानेवालोंके विषयमें कहा जाता है कि कुछ वर्षोंके परिश्रमके पश्चात् वे किसी श्वासके रोगसे बच

नहीं थे ।

वह चोर सीधा मुख्य विषयपर आया ।

"क्या हमें यह बतलानेकी आवश्यकता है कि हम लोग यहाँ क्यों आये हैं ?"

कालूने कुछ आश्चर्यका भाव व्यक्त किया ।

"क्या भगवान्‌के दर्शन करना पर्याप्त कारण नहीं है ?"

"हाँ, हाँ", उस मनुष्यने जल्दीसे स्वीकार किया । किन्तु एक और प्रश्न है जिसकी हमें चिन्ता हो रही है देवाभिषेकके दूधकी बातका ।

"अपने हृदयोंको शान्त कीजिए" कालूने कहा । "आप लोगोंने सत्य बात नहीं सुनी है ।"

"क्या ?" पुजारी चिल्लाया और सबकी आँखें उसीकी ओर मुड़ गईं । "यह कैसे हो सकता है ? क्या विश्वनाथने अपना तरीका बदल दिया और दूध नदीमें गिरा दिया ? यदि यह बात भी हो तो भी उससे कुछ लाभ नहीं । जबतक ठीक विधि-विधानपूर्वक क्रिया न की जाय तबतक उसका कोई मूल्य नहीं ।"

"खबर तो ठीक है" कालूने समझाया । "किन्तु उसका जो अर्थ लगाया गया है वह सत्य नहीं है ।"

"कौन-सा अर्थ ?"

"दूध व्यर्थ नहीं खोया जाता । उसका सदुपयोग किया जाता है ।"

सोनेके व्यापारियोंमेंसे वह हट्टा-कट्टा मनुष्य बोल उठा !

"यह बात साफ हो जाना चाहिए । अभिषेकका दूध गंगा माताको चढ़ाया जाता है या नहीं ?"

"वह दूध माताके बच्चोंको दिया जाता है ।"

"माताके बच्चोंको ?"

"यह बंगालकी भूमि गंगा माताकी ही बनाई हुई है । लाखों-करोड़ों वर्षोंसे गंगा माता अपनी विशाल धारामें माटी बहाकर लाती और समुद्रके संगमपर जमा करती रही हैं । इसी प्रकार बंगालकी भूमि उत्पन्न

हुई। भूमि उत्पन्न करके अब वह उसे अपनी जलधारासे खूब सींचती रहती हैं, जिससे खूब अन्नकी फसल उत्पन्न हो। उन्हीं फसलोंपर हमारी जनताका जीवन अवलम्बित है। इसीसे तो इसमें आश्चर्य क्या है जो यह नदी माता कहलाती और पूजी जाती हैं। उसके बिना 'सोनार बांगला'-सोनेकी भूमि नहीं बन सकती थी।"

"यहीं तो हमारी शिकायत आती है। माताको उसका भाग नहीं..."

"ठहरिए। क्या जब तुम भूखे होओ तब तुम्हारी माता अन्न खाती है? क्या यह गंगाजीका अपमान नहीं है कि दूध पानीमें बहाया जाय और उसके बच्चे उसके तटपर पड़े-पड़े भूखसे अपने प्राण छोड़ें?"

"देवकी रीति मनुष्योंकी रीतिसे भिन्न है।"

"हम ही तो मनुष्योंके आकारसे ही देवोंको बनाते हैं। हम उन्हें भी मनुष्य ही समझते हैं। नहीं तो हम उन्हें दूध क्यों देवें? और इसी प्रकार हमें उन्हें अपनी श्रेष्ठतम मानवीय भावनाओंसे भी सुसज्जित करना चाहिए। हमें गंगाजीको सच्ची सजीव माताकी दृष्टिसे ही देखना चाहिए।"

"यह क्या वाहियात बात है! हजारों आदमी भूखसे मर गये। अब थोड़ेसे अधिक या थोड़ेसे कमसे क्या अन्तर पड़नेवाला है? यहाँ जो प्रश्न हमारे सामने है वह उन बेकार मनुष्योंके जीवनसे बहुत बड़ा है।"

होटल मैनेजरने कहा "मुझे आज रात्रिके अभिषेकके दूधकी चिन्ता है। जो कुछ हुआ, सो तो हो गया। अब मैं केवल यही चाहता हूँ कि हमारे दानके दूधको कल प्रातःकाल विधिसहित गंगाजीमें विसर्जित किया जाय।"

"मैं भी यही चाहता हूँ।"

"और मैं भी।"

"मैं भी। मैं यह भी प्रार्थना करूँगा कि जो बात जैसी तय हुई है, उसका पूर्णरूपसे उसी प्रकार पालन किया जाय।"

"बात जैसी तय हुई है?" कालूने भौंहें चढ़ाकर ऊपरको देखा।

"हाँ। पूजा अधूरी रहती है जबतक कि दूध गंगाजीमें न सिरा दिया

नहीं सकते। वे भी पूजाके लिए अपनी हफ्ते भरकी कमाई खर्च कर रहे थे। सड़कोंपरके अन्धे भिखारी, लकड़ी टेककर चलनेवाले लूले, और अपङ्ग, अपने मुँह छिपा-छिपाकर चलनेवाली वेश्याएँ। इनसे बढ़कर खरे पसीनेकी कमाई और किसीकी नहीं थी। गरीब और अनाथ भक्तोंकी भीड़में कम नहीं थे। हाँ, अस्पृश्योंको मन्दिरके गर्भालयसे अलग रहना आवश्यक था। उनकी संख्या यहाँ सबसे कम थी। जिस वृद्ध स्त्रीने चन्द्रलेखाको वे अमूल्य सेमें दी थी, वैसी स्त्रीको अलग खड़े रहकर दूरसे ही दर्शन-पूजन करना आवश्यक था।

भूखे बच्चोंको दिये जानेवाले दूधके सम्बन्धका विवाद पककर फूटनेपर आ रहा था। तीन मोटर-गाड़ियाँ आकर मन्दिरके फाटकपर खड़ी हो गई थीं। उनमेंसे कोई एक दर्जन व्यक्ति उतरकर खड़े-खड़े परस्पर विचार कर रहे थे। उनमें बहुतसे वे ही थे जिनके विषयसे कालूको पहलेसे ही चिन्ता थी। उनमें वे दो सोने-चाँदीके व्यापारी थे—एक ऊँचा पूरा, चपटी नाकवाला, और दूसरा दुबला-पतला। वह पास-पास आँखोंवाला भी था जो चोर जैसा दिखलाई पड़ता था। एक चैतन्य सरकारी अफसर। एक होटल-मैनेजर जो पगड़ी लगाये था। शेष लोगोंको कालूने देखा भी हो, तो भी वह उन्हें पहचान नहीं सका।

इन लोगोंने पुजारीको बुलाकर उसके साथ परामर्श कर लिया था। कालूको यह बात विदित थी। स्वयं पुजारीने ही आकर उसे बतला दिया था। यथार्थतः पुजारी अपने मालिककी हैरानी देखनेके लिए उत्सुक प्रतीत होता था। दूधके दानी ध्यानपूर्वक आँखें लगाये थे कि क्या हो रहा है। वे पंचकमेटीके सदस्योंसे मिल रहे थे। स्वयं सर अकालबन्धुसे भी वे मिले थे। उनका रुख सीधा दिखाई नहीं देता, यह सब पुजारीने कालूसे कहा था।

"बच्चोंका दो दिन अच्छा भाग्य रहा", पुजारी बोला। "किन्तु कलके पश्चात् बेचारोंको फिर भूखों···" उसने अपना सिर हिलाया और जीभ दबा ली जैसे उसे उन बच्चोंपर सहानुभूति हो और उसके दूध

बन्द किये जानेकी आशंकासे दुःख हो।

"सचमुच ?" काळूने कहा। उसकी जीभ सूख रही थी।

"आज शामको सेवायसे दो कलशी दूध अधिक आवेगा। होटलका मालिक शहरसे बाहर गया है, किन्तु उसने अपने मैनेजरको तार भेजकर आदेश दे दिया है। वे अपनी शर्तोंको पूरा कराना चाहेंगे।"

"सचमुच ?"

अब पुजारी उन विशेष अतिथियोंके स्वागतमें लगा। तत्पश्चात् वह उन्हें मन्दिरके गर्भालयमें ले गया। प्रत्येक अतिथि गर्भालयके प्रवेशद्वारपर टँगे हुए विशाल पीतलके घण्टेको दो बार बजावेगा, जिससे उसकी गम्भीर टंकारोंद्वारा मन और आत्मामें झनक उत्पन्न हो जाय और आन्तरिक अन्धकारके सातों पर्दे दूर हो जायँ। तत्पश्चात् ही वे उस युद्धके लिए तैयार होंगे, जिसके द्वारा दूधके अन्तिम उपयोगका प्रश्न तय किया जानेवाला था।

उन्हें बराबरीके प्रतिद्वन्द्वीसे लड़ना है। काळूके मुखपर दृढ़ निश्चयकी मुद्रा स्पष्ट दिखाई दे रही थी। शिवाभिषेकके दूधकी एक बूँद भी नदीमें फेंककर व्यर्थ नहीं खोई जायगी।

एक क्षणमें ही वे सदस्य भक्तोंकी भीड़को चीरते हुए मण्डपके समीप आ पहुँचे। काळूने मैत्रीपूर्ण अभिवादनसे उनका स्वागत किया। उनके जूते निकाल डालनेके पश्चात् उन्हें वह सफेद संगमरमरकी सीढ़ियोंपरसे चढ़ाकर ऊपर ले गया।

"मन्दिरके लिए आजका दिन बड़े महत्त्वका है।" काळूने कहा, जब कि अभ्यागत कालीनोंपर आरामसे बैठ चुके थे। उनकी पीठें बड़े-बड़े गोल तकियोंपर झुकी थीं।

"शिवरात्रिसे अधिक पुण्यका तो वर्ष-भरमें और कोई दिन नहीं है।" उस मनुष्यने अपना मत व्यक्त किया जिसे काळूने चोर समझ रखा था।

"क्या आप लोग अभी तक गर्भालयमें नहीं गये ?" काळूने देखा कि उन लोगोंके कपाल शिवके मस्तकपरके तेल और सिन्दूरसे अंकित

जाय।"

"मैंने तुमको ऐसा वचन दिया है?"

"ठीक ऐसा नहीं। किन्तु यह बात कौन सोच सकता था कि मन्दिरका मालिक ही अपनी बनाई हुई नियमावलीको भंग करेगा?"

उस दुबले पतले सोनेके व्यापारीने कहा "क्या आप इतनी बात नहीं समझते? जो दूध हमने दिया उसमें हमारे अंतरंग हृदयकी सच्ची प्रार्थना सम्मिलित है।"

"सच्ची प्रार्थना" दूसरे सोनेके व्यापारीने दुहराया। "उसकी पूर्ति होना हमारे लिए बड़े महत्त्वकी वस्तु है।"

किसी अकस्मात् संशयसे वे दोनों सराफ एक क्षण परस्पर एक दूसरे-के मुँहकी ओर देखते रहे।

"परसोंका मेरा दान व्यर्थ गया। किन्तु एक माह पश्चात् फिर मेरी एक वारी है। मैं चाहता हूँ कि इस बार पूरा विधि-विधान पालन करनेमें किसी प्रकार कसर न रहे।"

"मेरा भी यही कहना है।" दुबले सराफने कहा। "मैं दूधमें मसाला और शक्कर मिलानेके लिए भी तैयार हूँ।"

"तो क्या मैं इतना गरीबीमें डूब गया हूँ कि मैं अपने दानके दूधमें मसाला और शक्कर नहीं मिलवा सकता? किन्तु इस बातकी अनुमति हो तब न?" उस हट्टे-कट्टे सराफने कहा। अपने सन्देहका समर्थन पाकर उन्होंने फिर एक दूसरेकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखा।

कालूने उनकी इस नयी भावनाको भाँप लिया। भगवान् तब क्या करे जब दो भक्त परस्पर विपरीत अभिलाषाओंको लेकर ठीक एक ही प्रकारकी आराधना करें? भगवान् किसकी प्रार्थनाको स्वीकार करेगा!

"आपकी भी कोई प्रार्थना है?" कालूने अकस्मात् उस 'चोर' की ओर मुड़कर कहा।

"मेरी क्यों नहीं?"

कालूने उस ऊँचे पूरे अफसरकी ओर दृष्टि डाली।

"शायद तुम्हारी सरकारी पद-वृद्धिमें कोई एक मार्गमें बाधा डाल रहा है ?"

"आपका क्या मतलब है ?"

कालूने दृष्टि फेर ली। वह मौन और विचार-मग्न होकर खड़ा रहा। फिर शीघ्र ही बोला—

"तो महाशय, आप लोगोंमेंसे किसीको इस बातकी परवाह नहीं है कि बच्चोंका दूध छुड़ा लिया जाय !"

"ऐसा मत सोचिए कि हम हृदयहीन हैं। हम भी गरीबोंको अन्न देते हैं।"

"क्यों ? गत माह मेरे पिताके मृत्यु-संस्कारके समय मैंने एक हजार भिखारियोंको भोजन कराया था जिनमें अन्धे, लूले, लँगड़े..."

"मेरी पत्नीने राज्यपालके दुष्काल-कोपके लिए चन्दा एकत्र करनेके हेतु एक नृत्य और संगीतके दान-प्रदर्शनकी व्यवस्था की है। वह स्वयं जा-जाकर दस-दस रुपयेकी टिकटें बेच रही है। जब हम गत सोमवारको राजभवनके भोजमें गये थे तब स्वयं परम श्रेष्ठजीने उनका अभिनन्दन किया था।"

"बात तो यह है कि हमें देवोंको भी तो देना चाहिए। आश्चर्य है कि हमें मन्दिरके मालिकको यह बात बतलानी पड़ रही है !"

कालूका ध्यान उधर नहीं था। वह अब भी सोच रहा था। एक बात उसके ध्यानमें आई।

"तो क्या महाशय, आप लोगोंका यही अन्तिम कहना है ?" कुछ देर पश्चात् उसने कहा।

"क्या इसमें तुम्हें कोई सन्देह है ?"

"आप कहते हैं, मैंने वचन भङ्ग किया है ?"

"इसका यही अर्थ है। है कि नहीं ?"

"तो मैं यह प्रस्ताव करता हूँ। मैं तुम्हारे उस दूधका मूल्य वापिस देता हूँ जो तुम्हारी समझमें व्यर्थ गया है। भविष्यके लिए दान

दाताओंकी सूचीमें जो नाम लिखे जा चुके हैं उन्हें मैं निकाल देता हूँ। सूचीमें अब नये सिरेसे उनके नाम लिखे जायँगे जो मेरी शर्तोंको स्वीकार करेंगे। यह है वह पुरानी सूची।"

"यह तो अद्‌भुत बात है।" एक पंचने कहा।

"अद्‌भुत हो या न हो। अब मैं ऐसा ही करूँगा। हम उन्हींसे प्रारम्भ करें जो सचमुच इस समय कमल-मण्डपको अपनी उपस्थितिसे सुशोभित कर रहे हैं। कहिए कौन अपना नाम निकलवाना चाहता है, और कौन मेरी शर्तोंपर दूध देना चाहता है?"

कुछ देर बेचैनीकी शान्ति रही।

कालूने उन दो सोनेके व्यापारियोंको सम्बोधन करके कहा :

"आप दोनों ही घाटेमें रहे हो। अपने दूधका मूल्य वापिस ले लीजिए। अगले माहके लिए आपकी बारी खारिज कर दी जायगी। आप सहमत हैं न?" उसने एकसे दूसरेकी ओर दृष्टि डाली।

वे उदास और मौन हो रहे। उन्हें कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। उन्होंने एक-दो बार एक दूसरेकी ओर विलक्षण भाव-निरीक्षक आँखोंसे देखा। कालूने उनकी वह दृष्टि देखी और उसका अर्थ भी भाँप लिया। सोनेका भाव ऊपर-ऊपर उठता जाय···सोनेका भाव नीचे-नीचे गिरता जाय।

"यह आपका नाम खारिज हुआ।" कालूके हाथकी पेंसिल एक नामकी ओर बढ़ी।

"ठहरिए।"

"यह आपका नाम चला।" पेंसिल दूसरे नामकी ओर बढ़ी।

"ठहरिए! ठहरिए!"

"ठहरिए किसलिए? बात सीधी और सरल है। भगवान्‌को दानके दूधसे स्नान कराना आपके लिए पर्याप्त नहीं है। आप समझते हैं कि आपको अपने चाँदीके रुपयाके बदलेमें पूरे १६ आने नहीं मिल रहे हैं। किन्तु दूसरे बहुतसे ऐसे हैं जो अन्य प्रकार सोचते हैं और इस सूचीमें नाम लिखानेके लिए उत्सुक हैं। मनुष्यके हृदयकी प्रार्थनाओंका कोई अन्त

नहीं है। यदि उनकी अभिलाषाओंकी एकांश पूर्ति भी हुई तो वे उसके लिए कृतज्ञ होंगे। चूँकि आप वैसा नहीं सोचते, आपको अपना नाम केवल वापिस भर लेना है। कहिए?"

"मेरा नाम रहने दीजिए।"

"मेरा भी रखिए।"

कालूको हँसी आ गई, किन्तु वह उसे प्रयत्नपूर्वक आपने गलेके नीचे उतारकर पी गया।

"और आप···आप?" उसकी दृष्टि औरोंकी ओर घूमी।

"हमारे नाम भी रहने दीजिए।"

कालू विचारमग्न होकर अपनी पेंसिल डायरीपर बजाने लगा। उसने वह दूध बच्चोंके लिए जीत लिया था। किन्तु उसकी विजयमें कुछ और बात भी थी। यहाँ उसे अपनी शक्तिका एक और साधन मिला। बड़े आदमियोंके बीच उनका परस्पर संघर्ष, उनके आपसी विद्वेष और घृणा। अब वह पुजारीकी ओर मुड़ा और बोला :

"पुजारीजी, तुमने सुन लिया? ये सब सम्मान्य दानी शिवाभिषेकका दूध बच्चोंको दिया जाना स्वीकार करते हैं। इनके विचारसे गंगामाताको इससे अप्रसन्नता नहीं होगी। तुम्हें क्या कहना है?"

पुजारीको अब कुछ कहना नहीं था। उसकी आँखें मिचमिचानी और उसकी दाढ़ी कुछ-कुछ हिली।

कालू अपनी विजयमें उदार हो सकता था।

"अब समय है, महाशयजी, कि आप लोग भगवान्का दर्शन करें और उस विशाल घंटेको फिर एक बार बजावें जिससे आभ्यन्तर अंधकारके सातों पर्दे नष्ट हो जायँ।" कालूकी विस्तृत हँसी आधी व्यंगमय होते हुए भी सान्त्वनापूर्ण थी। तो आइए, हम मन्दिरके गर्भालयमें चलें।"

"आपने दूधके दाताओंको तो हरा दिया और उन्हें मूर्ख भी बनाया। किन्तु अब आपको मन्दिरके पंचायत मंडलका सामना करना है।" कहते हुए मोतीचन्दने अपनी टेहुनियाँ हरे पटलवाली आफिस टेबिलपर टेक दीं और प्रशंसापूर्ण हास्यके साथ अभ्यागतकी ओर देखा। "मण्डलके सदस्य बड़े दृढ़ मस्तिष्क हैं। वे खूब जानते हैं कि अपना दाव कैसा खेलना।" उसने धीरेसे जोड़ दिया।

कालूने अपनी मोटी गरदनका पिछला भाग खुजलाया और वह अपने स्थानपर कुछ बेचैनीसे बैठ गया। उसकी गद्दीदार कुर्सी उसे अनुकूल नहीं पड़ रही थी। वह बेतकी चटाई या जमीनपर बिछी दरीका अभ्यस्त था। इससे भी बुरी बात यह थी कि उस कुर्सीकी आसन घूमनेवाली थी जिससे उसमें स्थिर बैठना कठिन प्रतीत होता था। कालूने अपने सम्मुखकी मेजको पकड़ा और किसी प्रकार अपना रोब बनाये रखा।

"तो क्या वे इससे सहमत नहीं हैं?" कालूने पूछा। वह उसका उत्तर भी जानता था।

"अपनी ओरसे तो मुझे केवल इतना ही कहना है कि हमारी प्रतिष्ठा भंग न हो। हम केवल जनताके सेवक हैं। उन्हींके आदेशका हम पालन करते हैं।"

"वे भूखे अनाथ—क्या वे जनतामें नहीं हैं?"

"कृपाकर आप यह एक क्षणके लिए भी कल्पना मत कीजिए कि मैं उन अनाथोंके प्रति दयालु नहीं हूँ। सच कहूँ तो मैं तो उनके लिए रोया हूँ। हाँ, मैंने यथार्थतः अपने आँसू बहाये हैं।" मोतीचन्दने अपनी आँखें आधी बन्द कर लीं, मानो उन आँसुओंकी स्मृतिसे वह विचलित हो उठा हो। "एक माह हुआ, उस सूर्यग्रहणके दिन, पाँच सौ पुरुष और

स्त्रियाँ—छोटे बच्चोंको मैं नहीं गिन रहा—मेरे घरके चौकमें टेनिसकोर्टके समीप बैठ गये। प्रत्येकके सम्मुख पत्तलमें भात, भाजी और कढ़ी भरपूर परोसी गई थी। मैंने घी परोसनेकी भी बात सोची थी। किन्तु वह विचार बदल दिया गया, क्योंकि मुझे भय था कहीं घीसे उनकी दुर्बल पाचन-शक्ति न बिगड़ जाय। उन्होंने खूब मन-भर भोजन किया और वे सन्तोषके साथ डकारते हुए तथा मेरी आयु और वैभवकी वृद्धिके लिए प्रार्थना करते हुए चले गये।"

मोतीचंदका दुर्बल मुख लोकहितकी भावनासे चमक उठा और उसकी आँखें ऊपरको उठकर सम्मुखकी दीवालपर टँगी हुई एक तसवीर-पर जम गईं।

"आपकी बातको कौन अस्वीकार करेगा।" उस तसवीरकी ओर ही सिर हिलाते हुए मोतीचन्दने कहा।

कालूने अवसर देख अपनी आसन घुमाई। उसने भी तसवीरकी ओर देखा जिसे उसने पहली बार इसी दफ्तरमें आनेपर भी देखा था। इसे एक माह व्यतीत हुआ। उस समय वह नई ही लगाई गई थी। वह लाल और नीले रंगका चित्र था जो चित्रकारीसे दूने प्रमाणके विशाल चमकदार चौखटेमें जड़ा गया था। उसपर शीर्षक लिखा था "मेरी अन्तरतम आत्मा।"

पहलेके समान अब भी कालूने उसकी ओर आश्चर्यभरी दृष्टिसे घूरकर देखा और मूर्खताभरी रीतिसे हँस दिया। "मेरी अन्तरतम आत्मा" उसने अपने मनमें कहा और वह फिर हँसा। उसकी आँखोंके नीचेकी चमड़ीमें सिकुड़न पड़ गई। चित्रमें जो रेखाओंका बेतुका मिश्रण था उससे उसकी समझमें केवल इतना आया कि वहाँ एक लाल हाथी उलटा, थैलों जैसी आँखोंवाले तीन छोटे-छोटे शूकरोंपर लदा हो।

मोतीचन्दने उसे बताया था कि उसने किस प्रकार अवसर पाकर उस चित्रको खींचा था। एक दिन उसे कुछ चित्रकारी करनेकी हूक उठी थी। वह लाल और नीली पेंसिलसे सीधी टेढ़ी रेखायें खींचने लगा।

"आपने दूधके दाताओंको तो हरा दिया और उन्हें मूर्ख भी बनाया। किन्तु अब आपको मन्दिरके पंचायत मंडलका सामना करना है।" कहते हुए मोतीचन्दने अपनी टेहुनियाँ हरे पटलवाली आफिस टेबिलपर टेक दीं और प्रशंसापूर्ण हास्यके साथ अभ्यागतकी ओर देखा। "मण्डलके सदस्य बड़े दृढ़ मस्तिष्क हैं। वे खूब जानते हैं कि अपना दाव कैसा खेलना।" उसने धीरेसे जोड़ दिया।

कालूने अपनी मोटी गरदनका पिछला भाग खुजलाया और वह अपने स्थानपर कुछ बेचैनीसे बैठ गया। उसकी गद्दीदार कुर्सी उसे अनुकूल नहीं पड़ रही थी। वह वेतकी चटाई या जमीनपर बिछी दरीका अभ्यस्त था। इससे भी बुरी बात यह थी कि उस कुर्सीकी आसन घूमनेवाली थी जिससे उसमें स्थिर बैठना कठिन प्रतीत होता था। कालूने अपने सम्मुखकी मेजको पकड़ा और किसी प्रकार अपना रोब बनाये रखा।

"तो क्या वे इससे सहमत नहीं है?" कालूने पूछा। वह उसका उत्तर भी जानता था।

"अपनी ओरसे तो मुझे केवल इतना ही कहना है कि हमारी प्रतिष्ठा भंग न हो। हम केवल जनताके सेवक हैं। उन्हींके आदेशका हम पालन करते हैं।"

"वे भूखे अनाथ—क्या वे जनतामें नहीं हैं?"

"कृपाकर आप यह एक क्षणके लिए भी कल्पना मत कीजिए कि मैं उन अनाथोंके प्रति दयालु नहीं हूँ। सच कहूँ तो मैं तो उनके लिए रोया हूँ। हाँ, मैंने यथार्थतः अपने आँसू वहाये हैं।" मोतीचन्दने अपनी आँखें आधी बन्द कर लीं, मानो उन आँसुओंकी स्मृतिसे वह विचलित हो उठा हो। "एक माह हुआ, उस सूर्यग्रहणके दिन, पाँच सौ पुरुष और

स्त्रियाँ—छोटे बच्चोंको मैं नहीं गिन रहा—मेरे घरके चौकमें टेनिसकोर्टके समीप बैठ गये। प्रत्येकके सम्मुख पत्तलमें भात, भाजी और कढ़ी भरपूर परोसी गई थी। मैंने घी परोसनेकी भी बात सोची थी। किन्तु वह विचार बदल दिया गया, क्योंकि मुझे भय था कहीं घीसे उनकी दुर्बल पाचन-शक्ति न बिगड़ जाय। उन्होंने खूब मन-भर भोजन किया और वे सन्तोषके साथ डकारते हुए तथा मेरी आयु और वैभवकी वृद्धिके लिए प्रार्थना करते हुए चले गये।"

मोतीचंदका दुर्बल मुख लोकहितकी भावनासे चमक उठा और उसकी आँखें ऊपरको उठकर सम्मुखकी दीवालपर टँगी हुई एक तसवीर-पर जम गईं।

"आपकी बातको कौन अस्वीकार करेगा।" उस तसवीरकी ओर ही सिर हिलाते हुए मोतीचन्दने कहा।

काळूने अवसर देख अपनी आसन घुमाई। उसने भी तसवीरकी ओर देखा जिसे उसने पहली बार इसी दफ्तरमें आनेपर भी देखा था। इसे एक माह व्यतीत हुआ। उस समय वह नई ही लगाई गई थी। वह लाल और नीले रंगका चित्र था जो चित्रकारीसे दूने प्रमाणके विशाल चमकदार चौखटेमें जड़ा गया था। उसपर शीर्षक लिखा था "मेरी अन्तरतम आत्मा।"

पहलेके समान अब भी काळूने उसकी ओर आश्चर्यभरी दृष्टिसे घूरकर देखा और मूर्खताभरी रीतिसे हँस दिया। "मेरी अन्तरतम आत्मा" उसने अपने मनमें कहा और वह फिर हँसा। उसकी आँखोंके नीचेकी चमड़ीमें सिकुड़न पड़ गई। चित्रमें जो रेखाओंका बेतुका मिश्रण था उससे उसकी समझमें केवल इतना आया कि वहाँ एक लाल हाथी उलटा, थैलों जैसी आँखोंवाले तीन छोटे-छोटे शूकरोंपर लदा हो।

मोतीचन्दने उसे बताया था कि उसने किस प्रकार अवसर पाकर उस चित्रको खींचा था। एक दिन उसे कुछ चित्रकारी करनेकी हूक उठी थी। वह लाल और नीली पेंसिलसे सीधी टेढ़ी रेखायें खींचने लगा।

यह उसका कलात्मक रीतिसे आत्माभिव्यक्तिका प्रथम प्रयास था। उसे अपनी आन्तरिक स्फूर्तिको प्रकट करनेका मार्ग चाहिए था। उसे अपनी आत्माको मूर्तिमान स्वरूप देना था। आत्माके साथ तल्लीन होनेका यही सीधा मार्ग था। क्यों कोई इसी प्रकारकी प्रेरणासे अपने ईश्वरकी मूर्ति नहीं बनाता ?

"वह प्रेरणा आपको कहाँसे मिली ?" काल्रूने पूछा था।

मोतीचन्दने केवल अपना सिर हिला दिया था। वह अभी भी अपने हृदयका रहस्य प्रकट नहीं कर सकता था।

"चित्र खींचनेकी प्रेरणा क्या कविता करनेकी प्रेरणासे सम्बद्ध है ?" काल्रूने अपनी दृष्टि एक दोहेकी ओर मोड़ ली थी जो रेशमके टुकड़ेपर कसीदेसे लिखा गया था और उसी दिवालपर टँगा था। काल्रूको उसका इतिहास भी विदित था।

"हाँ, हाँ !" मोतीचन्दने काल्रूके प्रश्नको हँसकर टाल दिया। वह उस बातपर अपनेको बाँधना नहीं चाहता था। "हाँ", अपनी बातका सूत्र फिर हाथमें लेते हुए, "मेरी नीतिका आदर्श यह है कि जो कुछ दायाँ हाथ दानमें देता है वह बाँयें हाथको ज्ञात नहीं होना चाहिए।" मोतीचन्द ठहर गया। उसने अपना सिर नीचेको झुका लिया और वह विचारमग्न होकर कागजपर कुछ लिखने लगा।

"मण्डलको इतना तो ध्यान रखना ही पड़ेगा कि किसी प्रकारका अहित न हो।" काल्रूने कहा।

मोतीचन्द चुप था, विचारमग्न।

उसके भावपरिवर्तनको देखकर काल्रू भी चुप हो गया। किन्तु उसने एक ही क्षण पश्चात् बोलनेके लिए अपना गला साफ किया। मोतीचन्द उससे पूर्व ही बोल पड़ा।

"मुझे यह तो बतलाइए, आपकी लड़कीको क्या हो गया है ?"

"लेखाको ?" काल्रू चौंककर बोला।

"वह कुछ बीमार-सी दिखाई देती है। आपने ध्यान नहीं दिया ? वह

कितनी पीली पड़ गई है !"

"बीमार ? चन्द्रलेखा ?"

"हो सकता है कि कोई गम्भीर बात न हो और उसे केवल कुछ बलवर्धक रसकी आवश्यकता हो ? किन्तु इसकी जाँच क्यों न करा ली जाय ?"

कालूको चिन्ता हो गई। यदि लेखा बीमार पड़ गई तो कैसा होगा? एक समय ऐसा आया था जब वह मोतीझराके ज्वरसे पीड़ित हो गई थी। तब कई दिनोंतक कालूको अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता था। तबसे लेखा पुष्ट नहीं हो पाई।

"डॉ० स्टीवन्सको दिखला दी जाय। वे राज्यपालके अवैतनिक चिकित्सक हैं।"

"लाठ साहबके अंग्रेज डाक्टर ?" कालू इस प्रस्तावसे चकित हो गया। उस क्षण उसे अपने वर्तमान पदका ध्यान ही न रहा।

"मैं उन्हें बुला भेजता हूँ। आपका क्या कहना है ?"

लेखाका मुख बहुत सूख रहा है, कालूको स्मरण हुआ। बहुधा वह जमीनपर गिर पड़ती थी, जैसे उसमें कोई शक्ति शेष रही ही न हो।

"तो आपका क्या कहना है ?"

"इतना बड़ा आदमी ! क्या वह मेरी छोटी-सी झोंपड़ीपर आवेगा ?"

मोतीचन्द हँस पड़ा।

"सुनिए। मैं आज शामको आपके घरपर आऊँगा। अपन देखेंगे कि चन्द्रलेखा कैसी दिखाई देती है। उससे पूछेंगे कि उसे कैसा लगता है। तत्पश्चात् अपने उस अँग्रेज डाक्टरके विषयमें निश्चय करेंगे।" टेली-फोन बजना प्रारंभ हो गया। किन्तु मोतीचन्दने उसके मूठेको उठानेसे पूर्व इतना और कह दिया "वह दूधकी बात—उसकी आप कोई चिन्ता मत कीजिए। मैं मंडलके सदस्योंको आपका दृष्टिकोण समझा दूँगा जिससे आपका समर्थन हो जायगा।"

× × × ×

वह जो रेशमपर कसीदेसे दोहा लिखा गया था, उसका सम्बन्ध मोतीचन्दकी एक पत्नीसे था। यह बात कालूको विदित थी। और मोतीचन्दकी जितनी पत्नियाँ रह चुकी थीं उनके विषयमें शहर भरमें फुसफुसाहट होती थी। लोगोंको यह प्रतीत नहीं होता था कि उसे चार वार विवाह क्यों करना पड़ा? उसका असली मर्म क्या था? उन्हें यह नहीं दिखाई देता था कि उसके नीतिके आदर्शानुसार वह एक-पत्नीव्रतका धारण करनेवाला था। अतएव वह एक साथ एकसे अधिक पत्नियाँ नहीं रख सकता था। और अपने नीतिके आदर्शोंके कारण ही वह बंगाल भरमें ऐसा एक ही पुरुष था जिसके चार पत्नियाँ थीं—चारों जीवित!

उसकी पहली पत्नी उसके पास तब आई जब वह सोलह सत्तरह वर्षका था।। आयुमें वह उससे पाँच वर्ष लहुरी थी। उसने धन और यश कमानेमें उसका वीरतासे साथ दिया था। उस समय मोतीचन्द एक शेयर दलालका क्लर्क था। वह अपने आसामियोंके पैसेसे अपना निजका भी सट्टा कर लिया करता था। पचीस वर्षकी अवस्थामें ही उसने दिवालिया बन जानेका प्रबन्ध कर लिया। उसका सब ऋण साफ हो गया। उसे फिर साफ मैदान मिला और अपनी निजकी गुप्त पूँजी भी। अगले दस वर्षोंतक उसके आड़े टेढ़े जीवनपथपर चढ़ाव उतार होते रहे। उसकी पत्नीने जीवनके दुःखोंको भी उसी समता-भावसे सहन किया जैसे सुखोंको। उन्हें वह भाग्यचक्रकी नीची-ऊँची दशाएँ समझती रही। सभी दुःख उसने सहन किये, किन्तु एक दुःख वह न सह सकी। उसके कोई सन्तान नहीं थी। प्रार्थना और पूजा, मन्त्र और तन्त्र, सब निष्फल हुए। वह बाँझ थी। यह उसका कर्म था। कदाचित् पूर्वजन्ममें उसने किसी गर्भिणी स्त्रीका कोई भारी अहित किया था जिसका कडुआ फल उसे अब भोगना पड़ रहा था।

अपने वंशकी परम्पराको विच्छिन्न होनेसे कैसे बचाया जाय? यह उसकी निरन्तर चिन्ता थी। मोतीचन्द भी इस चिन्तामें उसका भागीदार था। वह अपनी वंशावली मेवाड़की रानी पद्मिनीके समयसे खींचता

था, जिसका दिव्य सौन्दर्य संसार-भरकी प्रशंसाका विषय था तथा जिसके कारण ही खूँख़ार पठानोंका देशपर आक्रमण हुआ था। भयंकर रक्षा-युद्धके पश्चात् ज्यों ही घिरे हुए किलेका पतन हुआ, त्यों ही रानी पद्मिनी और उसकी पाँच सौ युवती सहेलियाँ आक्रमणकारीके हाथोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए जलती चिताओंपर चढ़ गईं और भस्म हो गईं। उन्हींमें मोतीचन्दकी पूर्वजा जसोदा भी थी जो सौन्दर्यमें रानी पद्मिनीसे कम नहीं थी।

मोतीचन्दके कोई निकट कुटुम्बी नहीं था। अपने वंशवृक्षका वही एकमात्र प्रकाशमान दीपक था। अब पुत्रके बिना यह एक सहस्र वर्षकी वंश-परम्परा समाप्त हो जावेगी।

क्या यह केवलमात्र एक आकस्मिक घटना थी कि उसकी पत्नी जसोदाका वही नाम पड़ा जो उसकी उस महान् पूर्वजाका था जिसने अपने आत्मबलिदानकी उत्तम क्रियाके द्वारा अपनेको आकाशका सर्वश्रेष्ठ दैदीप्यमान तारा बना लिया था? जसोदाने अपना नाम सार्थक किया। उसने भी एक महान् आत्म-बलिदानका निर्णय कर लिया। केवल एक ही उपाय था—दूसरा विवाह। उसने अपनी आँखोंमें आँसू-भरकर अपने पतिसे प्रेरणा की कि वे उसे एक सौतका वरदान देनेकी कृपा करें, जिससे उसे अपने उस वन्ध्यापनके अपराधसे मुक्ति मिले। उसकी सौतकी कूँखसे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह भी उसकी आत्मज और उसीकी कूँखसे उत्पन्न गिनी जावेगी।

"नहीं" मोतीचन्दने अस्वीकारकी मुद्रामें अपना सिर हिलाते हुए मूँछ मटकाकर कहा। उसकी आँखोंकी पुतलियाँ एक ओरसे दूसरी ओरको नाचने लगीं। "यह कैसे हो सकता है?"

जसोदाको उस समय छुरी जैसा आघात तो अवश्य लगा होगा जब अन्ततः उसे वह राजी होते हुए दिखाई पड़ा। किन्तु उसका कर्तव्य अभी समाप्त नहीं हुआ था। रीतिके अनुसार उसे मनाना आवश्यक था।

"सुनिए तो..." उसने मनाते हुए पतिका हाथ अपने हाथमें

ले लिया ।

कमसे कम कानाफूँसीकी चर्चा इसी प्रकारकी थी । इसके मौलिक तथ्य छिपे नहीं थे । कल्पनाद्वारा कथाका विस्तार हो गया था ।

जन-वार्ता फैलानेवालोंके लिए भी मोतीचन्दके नैतिक आदर्श छिपे नहीं थे। उन आदर्शोंके अनुसार वह साधारण मनुष्योंके दोषोंमें नहीं पड़ सकता। उनके अनुसार उसे एक साथ दो पत्नियाँ रखनेकी छूट नहीं। यही एक सची कठिनाई थी। और उन दिनोंके हिन्दू न्यायमें 'छोर-छुट्टी'की अनुमति नहीं थी।

मोतीचन्दकी प्रतिभाने उसकी सहायता की। जब कि ऐसी मार्मिक बात उपस्थित हुई है, तब वह उन पुराने दकियानूसी विवाह-नियमोंसे क्यों बँधा रहे? वह स्वयं न्यायाधीश बनकर एकान्तमें इस विषयपर विचारकर अपना निर्णय देगा।

जसोदाको दूर अपने गाँवमें एक घर दिया गया और इतनी मासिक वृत्ति जिससे वह जीवनभर आरामसे रह सके। यह उस निर्णयका परिणाम था। मोतीचन्दको अपनी पत्नीके प्रति उदार होना पड़ा, क्योंकि वह अब उसके नैतिक आदर्शों और एक-पत्नीव्रतके कारण उसकी पत्नी नहीं रह सकती थी। लोकमत इस अपूर्व न्यायविधिकी हँसी उड़ाने लगा और जसोदाकी निजी भावनाओंकी कल्पना करने लगा।

इस प्रकार मोतीचन्दके जीवनमें दूसरी पत्नी आई। विवाहसे तीसरे वर्ष उसने एक पुत्रको जन्म दिया। उस समय मोतीचन्दकी समृद्धि अपने उच्च शिखरपर पहुँच गई थी और पुत्र एवं उत्तराधिकारीकी प्राप्ति बड़ी सुखदायक थी। किन्तु जीवनके सौभाग्य क्वचित् ही अमिश्रित दशामें आते हैं। उसके पुत्रकी माता बीमार रहा करती थी। पुत्रजन्मके पश्चात् वह बिस्तरसे लग गई। शीघ्र ही पता चला कि उसे क्षय हो गया है।

मोतीचन्द दुःखमें डूब गया। पुत्रका जीवन बड़ा बहुमूल्य था और स्वयं उसका भी। यदि भाग्यवशात् कहीं उसे भी वह भयंकर रोग हो गया और वह अशक्त पड़ गया तो कुटुम्बका पालन कौन करेगा?

उसके आदर्शोंने उसे फिर एक निर्णय करनेके लिए विवश किया—इतने जल्दी और ऐसा कठोर जैसा कि पूर्व निर्णय। उसने अपनी पत्नीको उसके पिताके घर भेज दिया और उसे भी अच्छी वृत्ति बाँध दी। यह निर्णय भी उसने अपने अन्तरंग न्यायालयकी बैठक द्वारा किया था।

अब वह एक बार फिर अपने एकपत्नीव्रतके अनुसार विवाह करनेके लिए स्वतन्त्र था।

इस तीसरी पत्नीके साथ उसके और आठ वर्ष व्यतीत हुए। इस बीच उसे एक और पुत्र तथा कन्यारत्नकी प्राप्ति हुई। अब मोतीचन्द शहरके धनी लोगोंमें गिना जाने लगा था। सब ठीक चलता रहा। किन्तु अचानक एक दिन उसकी दृष्टि उसके हेड क्लर्ककी युवती कन्या-पर पड़ गई। क्लर्कका नाम ठाकुरदास था। वह दिन दीपावलीके उत्सवका था, जब उसने अपने समस्त कर्मचारियोंको अपनी सद्भावनाके उपलक्ष्यमें एक भोज दिया था। लड़की जब अन्य स्त्रियोंके साथ भीतर जा रही थी, तभी उसने उसको देख लिया। उसके अदृश्य हो जानेपर भी मोतीचन्द टक बाँधे चुपचाप खड़ा रहा।

दूसरे दिन दफ्तरमें बैठे हुए उसे उस सुन्दरीके लिए एक कविता बनानेकी तीव्र प्रेरणा हुई। उसे साहित्यिक रचनाका तो कोई अभ्यास था नहीं। तथापि उसने एक दोहा गढ़ लिया। वही काव्यरत्न एक चौखटेमें उस दफ्तरकी दीवालपर टँगा हुआ था।

ठाकुरदासने दो बार गलेका घूँट लिया, जब उसके मालिकने उससे अपने मनकी बात कही। उसे इतना हर्ष हुआ कि उससे बोलते नहीं बना। मोतीचन्द उसे मैनेजरका पद दे रहा था। वह अपने इस ससुरके पुत्रोंको भी अच्छे-अच्छे कामोंपर रख देगा।

मोतीचन्दकी तीसरी पत्नीने बड़ा घोर दृश्य उपस्थित किया। उसके मृगीरोगके दौरोंकी चिल्लाहटसे पड़ोस भरमें हल-चल मचने लगी। किन्तु मोतीचन्द तो फौलादी पुरुष था। जब उस स्त्रीने विरोध करना छोड़ दिया और अपनी सौतके चरणोंकी दासी बनकर घरमें रहने देनेकी

प्रार्थना की, त ब मोतीचन्दके नैतिक आदर्श चमकीली तल्वारके समान चमक उठे। वह दो पत्नियाँ कभी नहीं रख सकता। उसके जीवनका नियम था एकपत्नीव्रत।

"क्या मैं कभी पुण्यके मार्गसे विचलित हुआ हूँ?" उसने प्रार्थना करनेवाली अपनी पत्नीसे कहा। "तेरी कोई शिकायत तो रही नहीं। मैं तेरे लिये, तेरे पदके योग्य, एक अच्छा घर खरीद दूँगा—यदि धर्म-कर्ममें रुचि हो तो काशीजीमें, और यदि तुझे ठण्डी हवा खाना हो तो दार्जिलिंगमें। तुझे मैं सड़कपर फेंक रहा होऊँ सो बात तो नहीं है!" वह एक क्षण रुका। वह सोच रहा था स्त्रियाँ कितनी निपट मूर्ख हुआ करती हैं। "इतने वर्षोंके वैवाहिक जीवनके पश्चात्"—उसने अपने स्वरको ऊँचा करते हुए कहा "भक्तिके मार्गका अवलम्बन क्यों नहीं करती और मालाके गुरियोंपर प्रतिदिन १०८ बार परमात्माका नाम क्यों नहीं जपती? इस संसारके बन्धनसे मुक्तिका मार्ग क्यों नहीं खोजती?"

उस हठी स्त्रीकी जिह्वा इस लोह-तर्कके उत्तरमें खुल ही नहीं सकी।

वह क्लर्ककी कन्या राधा मोतीचन्दकी चौथी पत्नी बन गई। वह उसकी अन्य पत्नियोंसे विलक्षण सिद्ध हुई। सोलह वर्षकी अवस्थामें ही वह अपनी मुटाईके कारण बहुत जेठी दिखाई देती थी। मोतीचन्द अब लगभग चालीस वर्षका हो चुका था। युवती पत्नी अपने इस 'पुराने झाड़ू'को अपने आदेशसे बिठाल सकती, घुटने टेककर खड़ा कर सकती या दौड़ा सकती थी। वह उसे खिलवाड़ और अपमानकी भावनासे 'पुराना झाड़ू' कहकर पुकारती थी। उसको गर्व था कि वह उसे घास खिला सकती है।

मोतीचन्दके प्रेमका ज्वर थोड़े ही कालमें उतर गया। किन्तु इस राधाकी अधीनताका अन्त नहीं आया। वह कभी उसपर विजय प्राप्त न कर सका। वह उसकी क्रोधकी फुफकारोंसे भय खाता था। वह ज्यों-ज्यों बड़ी हुई त्यों-त्यों उसके रूपमें वृद्धि हुई। चालमें अच्छे लालित-पालित हंसकी गतिका सौष्ठव था। फिर भी आश्चर्य है कि उसमें इस

तरह लगातार रोष करनेकी क्षमता कहाँसे आती है ! सम्भवतः उसे अपनी उन पुरानी पत्नियोंके साथके वर्षोंका वह प्यारमय जीवन याद आता होगा जब वह अपने घरका एकछत्राधिपति था। अब उसके मित्र और नौकर-चाकर भी उसे भोले बाबाकी दृष्टिसे देखने लगे थे।

जब राधा धर्म-साधना करने लगी तब उसके स्वभावमें अकस्मात् परिवर्तन हुआ। योगियों और साधु-सन्तोंकी उसे चाह होने लगी। मोतीचन्दको यह पता ही नहीं चला कि यह मोड़ कहाँसे आया। उसके सुप्त जीवनमेंसे कोई बात अकस्मात् बाहर आकर उसको धर्मका रसप्रदान कर रही थी। वर्षों बीतनेके साथ-साथ उसकी रुचिमें वृद्धि हुई, यहाँतक कि अन्तमें वह उस क्रोधसे क्षुब्ध युवतीसे बहुत दूर जा पहुँची।

मोतीचन्द ग्यारह वर्षतक दबा रहनेके पश्चात् अन्तमें पुनः स्वाधीन हुआ। वह राधाकी इच्छाकी अवहेलना कर सकता हो सो बात नहीं। जो दुर्दम है वह सुप्त हो सकता है, किन्तु है तो वह चट्टान ही, माटी नहीं।

मोतीचन्द इसी अवस्थामें था जब उसे एक चित्र बनानेकी प्रेरणा मिली। किन्तु वह चित्र उतना अच्छा नहीं था जितनी वह कविता। केवल कालू ही ऐसा हो जिसे वह चित्र थैले जैसी आँखोंके शूकरोंपर उलटे लदे हुए लाल हाथी जैसा लगा हो, सो बात नहीं। तो भी मोतीचन्दने उसे अपनी 'अन्तरतम आत्मा' नाम दे रखा था। इसकी क्या सार्थकता थी ? इसमें क्या विनोद था ? कौन कह सकता है सिवाय मोतीचन्दके।

१५

एक दिन विश्वनाथ अपने असाधारण कामपरसे लौटा। उसने प्रातःकालकी गाड़ीसे पचास मीलकी यात्रा करके एक जेलखाना देखा।

हाँ, जेलके मुख्य आरक्षकने उसे बी-१० का समाचार दिया था। बी-१० ने एक दिनकी भी छूट नहीं कमाई थी। वह बहुत बुरा कैदी सिद्ध हुआ। गत कुछ महीनोंमें किसी एक भी कैदीने एक दिनकी भी छूट नहीं कमाई थी। जेलकी कोठरियाँ 'भारत छोड़ो' का नारा लगानेवाले अपराधियोंसे ठसाठस भर गई थीं। वे सब कलकत्ताके केन्द्रीय बन्दीखानेसे वहाँ भेजे गये थे। उन 'सुअरके बच्चों' ने तिरंगा झंडा खड़ा किया था जिसके द्वारा वे अंग्रेज सिंहको मार भगाना चाहते थे। वे पागलों जैसी बातें करते थे। उनकी बातें सारा जेलखाना कान लगाकर सुनता था। सुनकर वे सब भी पागल हो जाते थे। 'भारत छोड़ो' सचमुच! क्या ही अच्छा होता यदि जेलखानेने सबके मुखोंपर मुहर लगा देनेका कोई उपाय निकाल लिया होता, या मुखोंको उसी तरह खुला रखनेका जिस प्रकार लोग दाँतोंके डाक्टरके यहाँ मुँह फाड़कर बैठते हैं।

कालूने विश्वनाथके द्वारा लाये गये समाचार ध्यानपूर्वक सुने।

"तू अपना संदेशा वहाँ छोड़ आया है ना?"

"हाँ, आजसे एक पखवाड़ेके पश्चात् अपना एक मित्र उसके छूटनेके समय जेलखानेके दरवाजेपर रहेगा। बी-१० को इस मनुष्यकी प्रतीक्षा करना चाहिए, ऐसा मैं लिखकर दे आया हूँ।"

"क्या वे वह संदेश उसतक पहुँचा देंगे?"

"अवश्य पहुँचायँगे, ऐसा मैं सोचता हूँ। मैं टेबिलपर मानों भूलसे एक दस रुपयोंका नोट छोड़ आया हूँ। वहाँके मुख्य आरक्षक गंगूसिंहने मेरे वहाँसे चलते समय अपनी आँख मिचकाई और कहा: "उस छोकड़ी,

बी-१० की औरतसे कह देना कि वह तैयार रहे ताकि……"

"क्या ?"

"अरे, कोई बात नहीं। कुछ तो भी गंदी……"

"बी-१० की तो कोई पत्नी नहीं है ?"

विश्वनाथ अपने मालिकके मुखकी ओर घूरने लगा।

"वह आजसे सोलह दिन पश्चात् जेलके बाहर आयेगा. यदि आप मुझे बतला दें कि उसका चेहरा कैसा है, तो मैं उसे जेलके बाहर आते ही पहचान लूँगा।"

काल्लूने कुछ देरतक विचार किया।

"मैं स्वयं वहाँ रहूँगा।" विश्वनाथ चकित हो गया। काल्लूने आगे कहा "तू समझता नहीं है, उसने भूखे आदमियोंको दुकानसे अन्न ले लेनेको कहा था। बस, उसका इतना ही अपराध था, और इसीके लिए उन्होंने उसे पूरे बारह मास जेलके सींकचोंमें बन्द करके रखा।"

तीन दिन पश्चात् काल्लूने मालीसे कहा। उसके मुखपर कुछ खेदकी छाया थी।

"सुन, मैं तुझे बताता हूँ कि बी–१० कैसा दीखता है। वह मुझसे कुछ ऊँचा है, किन्तु दुबला और गोरा।"

विश्वनाथ पौधे लगानेमें व्यस्त था।

"जब आप स्वयं ही जेलखानेतक जायेंगे, तब मुझे यह सब बतलानेका कष्ट क्यों किया जाय ?"

"बेहतर है, तू ही जा।" काल्लूने छेड़कर कहा।

"ऐसा क्या !" विश्वनाथकी आँखें कुछ तीक्ष्ण हुईं। काल्लू उसकी खोजपूर्ण दृष्टिसे मुड़ गया और एक गुलाबकी बौंड़ीका धीरे-धीरे स्पर्श करने लगा। एक क्षण दोनोंमेंसे कोई नहीं बोला। फिर काल्लू तनकर खड़ा हो गया। उसका मुँह असन्तोषसे भरा हुआ था।

"मेरी स्थितिमें यह मेरे लिए उचित नहीं है कि लोग मुझे तुरन्त जेलसे छूटनेवाले मनुष्यके साथ देखें। वे उसपरसे न जाने क्या-क्या सोचने

और कहने लगेंगे ।"

विश्वनाथने सिर हिलाया "हाँ, यह तो सम्भव है ।"

"वैसे ही तो बहुत बखेड़ा हो चुका है ।"

"सच है ।"

इस प्रकार बात तय हो गई ।

"क्या वही एक जादूकी चाल बी-१०. को मालूम थी ?" चन्द्रलेखाने एक दिन पूछा "वही शिवजीको प्रकट करना ?"

जिस प्रकार उसने यह बात पूछी, वह कालूको पसन्द नहीं आई। वह हँसी उड़ा रही थी, शायद घृणाके साथ।

"जब वह जेलसे छूट जायगा, तब शायद इस मन्दिरकी आमदनीमें अपना हिस्सा चाह बैठे ?" लेखाने कहा था "अन्ततः है तो वह उसीकी सूझ !"

लेखाके मनमें सम्भवतः वही विचार घूम रहा था, जब कालूने उसे बी०–१० के विषयमें अपना निर्णय सुनाया । "क्या आप उसे एक जनेऊ देकर ब्राह्मण बनावेंगे ?" उसने जल्दीसे पूछा ।

कालूको लेखाके स्वरसे चोट पहुँची । वह चुपचाप बैठा रहा । किन्तु लेखाका उस ओर ध्यान ही नहीं गया। वह कहती गई "यदि उसने अपना रहस्य खोल दिया" तो क्या होगा ?"

कालूको गुस्सा आ गया और उसकी आवाज़ कर्कश हो उठी ।

"मैं बी०–१० को जानता हूँ । मुझे उसपर भरोसा है ।"

"भरोसा ? बाबा, आपने उसे केवल दो माहसे भी तो कम जाना है ?"

"जेलमें दो माह !" कालूने जेलपर जोर दिया ।

"और आप उसका सच्चा नाम भी तो नहीं जानते ?"

कालू घबराया । "मैंने एक दिन उसका नाम पूछा था। किन्तु उसने उत्तर दिया 'क्या हम जैसे किसी संख्यासे बढ़कर हैं ?"

इसका लेखाके हृदयपर प्रभाव पड़ता दिखाई दिया। अतएव

कालूको साहस मिला और वह कहता गया। "एक दिन मैंने बी–१० से उसकी जाति पूछी। उसने उत्तर दिया 'मैं तो कैदी जातिका हूँ'।"

"उसने ऐसा कहा?"

लेखाके मुखपर जो चुनौतीकी ज्योति प्रकट हुई थी, वह शान्त हो गई और उसपर वही सदाके समान उदासीकी छाया छा गई। फिर उसने प्रार्थना की "मुझे एक बातकी इच्छा है।"

कालू उत्सुकतासे सुनने लगा। कितने युग बीत गये जबसे उसने अपनी कोई इच्छा प्रकट नहीं की!

"बाबा, क्या, आप मुझे जेलखाना देखनेकी अनुमति देंगे? मैं केवल फाटकके पास खड़ी होकर देखूँगी। मुझे यह एक अवसर मिला है। मैं विश्वनाथ काकाके साथ चली जाऊँ। क्या आप अनुमति देंगे?"

"क्यों?"

"मैं सिर्फ जेलखाना देखना चाहती हूँ।"

"मुझे बता तो।"

"मैं भी तो वहाँ भेजी जा सकती थी। क्या मैंने आपको सुनाया नहीं था कि किस प्रकार मैंने एक बार कुम्हड़ा चुरानेका प्रयत्न किया था। यदि वह बुड्ढी पुलिसमें रिपोर्ट कर देती···"

"लेखा, वह असहाय अस्पृश्य स्त्री थी। वह पुलिसके पास जानेका साहस ही कैसे कर सकती थी?"

जब तुम किसी धनवानके पाससे उसकी अपार सम्पत्तिमेंसे कोई ऐसी भी छोटी-मोटी वस्तु चुरा लेते हो, जिसकी उसे आवश्यकता नहीं, तो भी तुम्हें जेलमें बन्द करके रखा जाता है। केवल गरीब ही अनाथ गरीबोंकी सहायता करते हैं। बात तो वही है। इससे इन्कार तो नहीं किया जा सकता कि 'मैंने भी चोरी की थी।'

"चन्द्रलेखा, मैं कितना चाहता हूँ कि तू उन दुःखके दिनोंको भूल जाय!"

"मैं बहुत प्रयत्न करती हूँ, जी भर जोर लगाती हूँ। फिर भी भूल

नहीं पाती !"

कालूने चुपचाप अपना सिर नीचा कर लिया। वह यह नहीं समझ पा रहा था कि अपनी बेटीकी कैसे सहायता करे।

लेखा कहती गई। "यह एक कारण है कि अपना यह नया जीवन मुझे असत्य दिखाई देता है—यह घर, यह मन्दिर, सब।" उसकी कोमल पतली बाँह उठकर घूम गई। "यह महानगर भी तो।" वह कुछ रुकी। "हाँ, जेलखाना ही सत्य है।"

कालू इसे सहन नहीं कर सका। 'चन्द्रलेखा!' वह दुःखसे चिल्ला उठा।

"बाबा, जाने दो इन बातोंको। मैं बड़ी मूर्ख हूँ। मैं जेलखाना देखने क्यों जाऊँ?"

उस विवादका यहीं अन्त हो गया। किन्तु वह कालूके मनमें एक पहेली बनकर बैठ गया। वह उसे सुलझाना चाहता था। यह घर, यह मन्दिर, यह महानगर भी, सब असत्य। क्या ये ही वे साँचे नहीं थे जिनमें उनका जीवन—उसका और लेखाका—एक नया स्पष्ट आकार धारण कर रहा था? जो अपराध ही नहीं था, उस अपराधके भूतके वशीभूत होना?

अच्छा होता यदि लेखा डाक्टरको दिखलाना स्वीकार कर लेती! कालूने लम्बी साँस ली। किन्तु उसने तो साफ इन्कार कर दिया। मुझे तो कोई रोग नहीं है" उसने कह दिया। "कुछ नहीं है।" किन्तु इस उदासी-से, सदा चिन्ता-मग्न रहनेसे बुरा और क्या है? इसीसे तो वह क्षीण होती जाती है और उसी हतभाग्य भूतकालसे बँधी पड़ी है!"

बहुधा, इन दिनों, कालूके मनमें लेखाके विवाहसंबंधी विचार उठा करते थे। यदि उसकी माँ जीवित होती तो वह कदापि अपनी बिटियाको इस उमरतक अविवाहित न रहने देती। लेखा अब लगभग अठारह वर्षकी हो गई थी। पतिकी देखभाल और मातृत्वकी प्रतीक्षामें लेखाका मन बहला रहेगा। तभी वह अपने विपत्तिके भारसे मुक्ति पा सकेगी। किन्तु

उसका वर तो ब्राह्मण ही होना चाहिए।

एक योग्य ब्राह्मण युवक खोज लेना कठिन नहीं। जो पाँच पुरोहित शिवसंहिताके श्लोकोंका पाठ करनेके लिए लगाये गये थे उनमेंसे एकका धंधा ही विवाह करानेका था। उसने कहा भी था। "आपकी कन्या जैसी बिना परोंकी अप्सराको तो हमारे उत्तमसे उत्तम घरोंको अलंकृत करना चाहिए। मैं आपके विचारके लिए कुछ प्रस्ताव लाऊँगा।"

"चुनाव कड़ाईसे करना पड़ेगा" कालूने जोर दिया था। "ऐसा युवक हजारोंमें एक होगा जो हर प्रकार मेरी लड़कीके साथ खड़ा होने लायक हो।"

चन्द्रलेखाको स्पष्ट तथ्योंपर शुद्ध दृष्टिसे विचार करना चाहिए। उसने अपने पिताको जाति-पाँतिके भेदकी दीवाल तोड़ते और उनकी असत्यता प्रकट करते देखा है। इससे मेरे या उसके सिरपर कोई वज्रपात तो हुआ नहीं! उसे अब एक द्विजकी पत्नी बननेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। यह यथार्थतः है कौन-सी बड़ी बात?

और दूसरा उपाय ही क्या है? मन्दिर छोड़ दिया जाय और पुराने संघर्षपर लौटा जाय? किसी छोटे-से गाँवके कमार लड़केसे विवाह किया जाय और उसके संकीर्ण जीवनका भागीदार बना जाय?

लेखा जिस जीवनमेंसे पार हुई है उसे भूली तो नहीं होगी? केवल भूख की ही बात नहीं। वह समय आया जब उसने उस पदकको जीता। फिर भी झरना नगर भरमें किसी एककी भी तो साँस नहीं फूटी जो दो शब्द उसकी प्रशंसाके कह देता? इसका कारण यही न था कि वह नीच जातिकी थी। कल्पना कीजिए, वह पदक वहाँके मजिस्ट्रेट साहबकी लड़कीने जीता होता, तो क्या नगर भरमें उत्सव नहीं मनाया जाता और लोग उसे अपने सिरोंपर नहीं चढ़ा लेते? यह तो झरनाके लिए कीर्ति नहीं, किन्तु घोर लज्जाकी बात हुई कि वहाँकी कमार लड़कीने पदक जीता!

अब इस नौ दिनके आश्चर्यके पश्चात् उन्हीं पुरानी वाहियात परिस्थितियोंमें लौटकर जानेसे उसका जीवन कैसा होगा?

उसके सामने रक्खी। "अपनको केले खाना तो पसंद आता नहीं? किस कामके हैं ये?"

"वे उस बाजूकी टेबिलपर अच्छे दीखते हैं।" काल्रूने कहा। उसकी आँखें उस गुच्छेपर जमी थीं और उनमें कठोरता थी।

काल्रू पीछेको झुककर बैठ गया और आराम लेने लगा, वह भोग-विलासका सुख। उसने गद्दोंके हरे वस्त्रको प्यारके हाथसे स्पर्श किया। एक क्षण पश्चात् वह तनकर बैठा और पंखेके स्विचपर अपना हाथ बढ़ाया। जो दो अन्य यात्री उनके सामने बैठे थे और समाचारपत्रोंमें अपनी दृष्टि खपाये थे, उन्होंने हवाका झोंका लगते ही अपनी आँखें ऊपरको उठाईं। उन्होंने अपनी भौंहें सिकोड़ीं। उन्हें पंखेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं थी। दिन ठंडा था, क्योंकि रात्रिको घमासान वर्षा हुई थी।

काल्रूने उनके रोषका बदला रोषसे दिया। उसने अपने मनमें कहा "जैसे तुम, वैसा मैं भी। यदि मुझे चाहिए तो मैं पंखा चलाऊँगा। मैंने पंखे और अन्य सब चीजोंके लिए भी तो मूल्य चुकाया है?" फिर उसे यह पश्चात्ताप होने लगा कि वह एक समाचारपत्र खरीदना भूल गया। सवेरे समाचारपत्र पढ़ना ठीक होता है।

उसका मुख साफ हुआ। उसके ध्यानमें आया कि एक दूसरा अच्छा उपाय भी तो है। उसने अपने खीसेमेंसे एक पतली-सी हल्के नीले रंगकी पुट्ठेवाली पुस्तक निकाली और पीछेकी ओर झुककर पढ़नेमें व्यस्त हो गया।

वह उसके सेविंग्स बैंक अकाउंटकी पुस्तिका थी। बीच-बीचमें वह अपना सिर मोड़कर खिड़कीमेंसे बाहर झाँककर देख लेता था। खेतोंमें फसल खड़ी थी। माटीकी झोंपड़ियोंके झुंड थे—मटहा रंगके घासके ढालू छप्परदार। जब उसने पहले इन्हें देखा था, तबसे एक वर्ष व्यतीत हो चुका था। तब वह एक अनिश्चयकी ओर यात्रा कर रहा था, और जेलका धुरा उसके मनपर भारी था। किन्तु उसे महा-

नगरकी ओर सड़कपर जाते हुए भूखे मनुष्योंके झुंडोंको देखकर नया बल मिला था। कोरी मृगतृष्णा !

आज वह फिर ट्रेनपर यात्रा कर रहा था। किन्तु अब उसकी युद्ध-में विजय हो चुकी थी। बैंकबुकके खानोंमें स्वच्छतासे चढ़े हुए वे अंक ! जोड़ ठीक तो है ? लाल चमकीली स्याहीसे छमाही ब्याज भी तो जुड़ा हुआ है ? बेकाम पड़ा पैसा, अपने आप बढ़ रहा है, हर सप्ताह हर माह मोटा होता जाता है। आश्चर्य !

उन्होंने गणित लगानेमें कुछ जादू तो नहीं कर दिया ? उसमें कहीं कोर-कसर तो नहीं रख दी ? कहीं उसे पकड़नेका कुछ अदृश्य जाल तो वहाँ नहीं फैला रखा ?

फिर कालू उन दो महाशयोंकी ओर देखने लगा जो अपनी-अपनी जगह पीछेको झुके हुए समाचारपत्र पढ़ रहे थे। कहीं कोई कोर-कसर तो नहीं है ?

कालूने अपनी दृष्टि लेखाकी ओर डाली। वह पीठ झुकाये खिड़की-से मुँह बाहर निकाले बैठी थी। हवाके झोकोंसे उसके बाल पीठपर लहरा रहे थे।

"सावधान ! कालूने उसे आवाज दी "देख, कहीं तेरी आँखोंमें कोयलेकी धूल न चली जाय।"

लेखाने अपना सिर हिलाया। "कैसी ठण्डी हवा है !"

"जाड़ा तो नहीं लगता ?"

"नहीं, बहुत अच्छा लगता है।"

लेखाकी जेल देखनेकी इच्छा भी एक पहेली थी। कालू उसका कोई अर्थ नहीं समझ रहा था। लेखा उस कमरेको तो छोड़ नहीं सकती, जिसे उसने अपने मनमें बना रखा है, एक अँधेरी वायुरहित कोठरी जहाँ वह जा नहीं सकता था।

जेलमें उसकी जीवनकी कल्पना दुःखमयी थी। क्या यही बात है ? उसकी आशंकाभरी आँखें उसकी ओर जम गईं और उसके पीले

गालकी गुलाईको देखने लगीं। क्या यही बात है, चन्द्रलेखा ?

कालूको उसकी पृष्ठभूमिमें एक मकान दिखाई दिया। उसका नाम रूपा था। वह मकान एक गलीको प्रभावित कर रहा था; और उस मकानको प्रभावित कर रही थी एक पापिनी स्त्री जो कोड़ा फटकार रही थी। क्या उस कोड़ेकी चोटका घाव चन्द्रलेखाकी पीठपर अब भी है, जैसा कि वह निस्सन्देह उसके मनपर था ?

लेखाको तब तक कदापि मुक्ति नहीं मिलेगी जब तक वह अपनेको पूर्णरूपसे खो न दे, अपने पतिमें, पुत्रमें, पुत्री में…

कालूने साँस ली और अपनी आँखें आसपासके भागते हुए मीलोंकी ओर फेरीं। टेलीग्राफके तारपर काले पक्षी बैठे थे। एक अकेली गाय घासके खेतमें चर रही थी। सड़कपर एक मोटरगाड़ी दौड़कर ट्रेनसे भी आगे निकल रही थी।

अब थोड़ी ही देरमें बी-१० जेलके बाहर निकल आयेगा। इस समय वह एक अज्ञात मित्रके संदेशकी हैरानीमें पड़ा होगा। क्या वह उस संदेशका संबंध अपने साथी कैदी पी-१४ से जोड़ सकेगा ? संभव तो नहीं दिखाई देता। उसने पी-१४ के भाग्यका निर्णय कर लिया होगा। पी-१४ उन अनाथोंकी भीड़में विलीन होकर सदाके लिए अदृश्य हो गया होगा। "हम धरतीकी धूल हैं। वे हमपर ऐसी जगह चोट करते हैं जहाँ वह बुरी तरह लगती है—पेटके गड्ढेमें। हमें बदलेकी चोट करनी पड़ेगी…" बिलकुल ठीक हैं ये शब्द। वह पी-१४ से यह आशा कैसे कर सकता है कि वह बदलेकी चोट करने लायक अस्त्र-शस्त्र निर्माण कर सका होगा। वह तो प्राणियोंकी श्रेणीमें एक कीड़े-मकोड़ेसे भी कम महत्त्वका था।

तो बी-१० के लिए एक अचम्भा तैयार है ! पी-१४ ने वह करामात कर दिखाई है। जितनी अपेक्षा उससे की जा सकती थी उसने उतना कर डाला है, कुछ उससे भी अधिक। बी-१० को इस अद्भुत कहानीमें तभी विश्वास होगा, जब वह उस मन्दिरको स्वयं

अपनी आँखोंसे देख लेगा। अच्छा होगा यदि यह बात उसे तबतक न बताई जाय, जबतक हम घर न पहुँच जायँ। तभी रहस्य खोलनेका क्षण बड़ा सनसनीदार होगा। देखो मित्र, मेरे आदेशसे धरती फाड़कर यह मन्दिर उठ खड़ा हुआ। दो सेर चनोंने फूलकर इतने बड़े सफेद मन्दिरको बना डाला है...

और यह भी तो एक अचम्भा है कि बी-१० हमारे लिए अबतक अपरिचित ही है। उसने अपने विषयमें बहुत ही कम बतलाया है। जिसका नाम भी नहीं जानते उसमें इतना विश्वास रखनेका रहस्य क्या है?

कभी-कभी ऐसा भी तो होता है। तुम किसी मनुष्यको बरसोंसे जानते रहो और तुम्हें उसके विषयमें कुछ भी जानकारी न हो। या एक बार ही कुछ देर मिलने मात्रसे तुम मनुष्यके सच्चे हृदयको पहचान लो। लेखा बड़ी होनेपर इसका पता लगा लेगी।

"बाबा! देखो।"

कालू उसकी खिड़कीकी ओर घूमा और जहाँको उसने दिखाया था वहाँको देखा—सुपरिचित, ऊँची, हवा-पानीसे भूरी दीवालें, जेलखाना! उस बार उसने उसे ट्रेन परसे नहीं देखा था। उसका मुँह दूसरी ओर रहा होगा। ट्रेनकी यात्रा उसके अनुमानसे अधिक शीघ्र ही समाप्त हो गई।

जब वे स्टेशनके फाटकको पार करके सामने चौकमें पहुँच गये, तब कालू रिक्शाके लिए इधर उधर देखने लगा। किन्तु लेखाने कहा "पैदल ही चलें, पास ही तो है।"

"तो चलो चलें" ।कालू आगे बढ़कर रास्ता दिखाने लगा।

कालू अपनी स्वाभाविक तेज चालसे चलने लगा। लेखा उसको पीछे-पीछे मिलानेका प्रयत्न करने लगी। जब वह उसके विशेष आगे बढ़ गया तब पीछेको मुड़ा और उसके आने तकके लिए खड़ा हो गया।

"क्या तुझे भरोसा है, तू वहाँतक पैदल चल सकेगी?"

"अरे, मेरी ये नयी चप्पलें हैं, जो मुझे त्रास दे रही हैं! वे अँगूठोंमें गड़ती हैं।"

"क्या नंगे पैर चलनेमें तुझे आराम रहेगा? ला, तेरी चप्पलोंको मैं हाथमें ले लूँ।"

"बाबा! यद्यपि आपने ट्रेनमें फर्स्ट क्लासमें बैठकर यात्रा की है, तथापि हैं आप वे ही झरना नगरके 'कमार!' जरा विचार तो कीजिए। एक ब्राह्मण, और वह भी आपकी पद-प्रतिष्ठाका, चमड़ेकी चप्पलें अपने हाथोंमें लेकर चलें', और उसकी लड़की सड़कपर नंगे पैर फिरे!"

काल्रूने बात समझी और वह हँस पड़ा।

"जान पड़ता है मेरी चमड़ीपर कभी पालिश नहीं आयेगा। कहते-कहते उसने अपनी धोतीकी खुटीपर हाथ फेरा और एक सस्ती निकेलकी घड़ी निकाली। "लेखा, अभी बहुत समय है। धीरे-धीरे चल।"

"आप घड़ी खुटीमें क्यों रखते हैं, जब कि आपके कोटमें दोनों ओर दो खीसे बने हैं?"

काल्रूने अपनी जीभ टिटकारी और वह अपने आपपर हँसा "बिलकुल निपट गँवार!"

वे चलते गये। सड़क डामरकी नहीं थी। एक मोटर गाड़ी जोरसे निकली और धूलका बादल छोड़ती गई।

"नकुए बन्द कर ले, लेखा" काल्रूने चिल्लाकर कहा।

"अपना झरना इससे आधा भी धूल उड़ाने वाला नहीं है।"

"घर कहाँ हैं? मुझे तो केवल सड़कके दोनों ओर सूखे बंजर खेत ही खेत दिखाई देते हैं। उनमें केवल इधर उधर कुछ झाड़ियाँ हैं।"

"अपनेको बस्तीमेंसे नहीं निकलना पड़ता। इस सड़कका नाम यथार्थ ही जेल रोड है। यहाँका आवागमन प्रायः जेलके ही सम्बन्धका है। जो काली गाड़ी अभी तूने देखी वह जेलके सुपरिण्टेण्डेन्ट साहबकी है।"

"बाबा, देखो!" ऊँची दिवाल फिर दिखलाई दी। काल्रू लोहेके फाटकसे पचास गजकी दूरीपर ही रुक गया। वहाँ सड़क एक पुलिया-

परने जाती थी और सड़कके दोनों ओर ईंटकी कगार उठी हुई थी।

"अपन इसी कगारपर बैठेंगे। बी-१० शीघ्र ही बाहर आयगा और वह यहींसे निकलेगा।"

वे बड़ी तीव्र उत्सुकतासे उसकी बाट जोहने लगे। कालूने तीन बार घड़ी निकालकर देखी। जब उसने देखा कि नियत समयसे आध घंटा अधिक हो गया है, तब वह बोल उठा—"कहीं विश्वनाथने तारीखके बारेमें गलती तो नहीं की? या हो सकता है बी–१०की अवधि किसी कारणसे कुछ और बढ़ा दी गई हो? क्या मैं पता लगानेका प्रयत्न करूँ?"

फाटकपर गार्ड बन्दूक हाथमें लिये तना खड़ा था। कालूका हृदय उसे देख मानो बैठ गया। अच्छा, कुछ देर और ठहरकर प्रतीक्षा की जाय।

थोड़ी देर पश्चात् उस बड़े फाटकमें लगा हुआ एक छोटा-सा सँकरा द्वार खुला और उसमेंसे धीरे-धीरे एक मनुष्य बाहर आया। कालू तीक्ष्ण दृष्टिसे देखने लगा। बी–१०! वह प्रायः चिल्ला ही उठा था, किन्तु उसने अपनेको रोक लिया।

बी-१० ने गार्डके साथ थोड़ी बातचीत की और उसकी पीठको मैत्री भावसे थपथपाया। कालू चकित हो गया। कैसे कोई मनुष्य एक वर्ष-तक जेलमें कैद रहनेके पश्चात् इस तरह मुस्करा और अपना सन्तु-लन बनाये रख सकता है? कैसे वह इतना निर्भीक रह सकता है? उसने बी–१० को सड़कतक आते और फिर इधर उधर कुछ खोजमें दृष्टि फैलाते देखा। एक क्षणमें ही वह वहाँसे चलकर उस पुलियापर आ पहुँचा और कगारपर बैठे हुए मनुष्य और लड़कीकी ओर एकमात्र दृष्टि डालता हुआ आगे बढ़ने लगा। जब वह कुछ आगे बढ़ गया तब कालूने पुकारा "कल्पना करो पी–१४ को भूल जानेकी।"

बी–१० पीछेकी ओर मुड़ पड़ा। वह चकित था। कालू उसे मिलनेके लिए उठा।

"पी–१४!" आवाजमें अविश्वासका स्वर था।

"क़ोई दूसरा नहीं।" कालू खुलकर हँस पड़ा, क्योंकि वह बहुत

भावावेशमें था। "क्यों, मैंने संदेशा नहीं भेजा था कि एक मित्र जेलके फाटकपर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा ?"

"मैंने इधर-उधर देखा किन्तु कोई दिखलाई नहीं पड़ा। मैंने सोचा वह मुख्य आरक्षकने एक हँसी-मजाक की होगी। उसे इसका शौक है।"

काल्रू फिर खिलखिला रहा था। "तुम्हें कोई दिखलाई नहीं पड़ा ? किन्तु तुमने सीधा हमारी ओर देखा तो था ?"

बी–१० कुछ संकोचमें पड़ा। "हाँ, मैंने देखा तो। किन्तु···" वह कहते-कहते रुक गया।

"मैं तुम्हारी बात समझ गया।" काल्रूने अपना सिर हिलाते हुए कहा। "ये सुन्दर वस्त्र और तुम्हारी सुपरिचित चमकीली खोपड़ीको ढकनेवाली यह सफेद टोपी ! बी–१०, यह मेरी लड़की है, चन्द्रलेखा।"

बी–१० उसकी ओर मुड़ा और उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

गार्डकी चिल्लाहट सुनाई दी "चलो !"

"चलो अपन चलें" काल्रूने कहा।

"लो, तुम यहाँ कहाँसे आ पड़े !" बी–१० ने पूछा। "मुझे तो अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं होता !" दोनों साथ-साथ चल रहे थे और लेखा उनसे एक कदम पीछे।

"वह चल गई ! वही चनोंवाली चाल !"

"क्या ?" बी–१० समझ नहीं पाया था।

"शिवजी धरती फाड़कर प्रकट हो गये। उन्होंने अपना जादू कर दिखलाया। एक विशाल मन्दिर···"कहते-कहते काल्रू रुक गया। "मैं अभी कुछ कहना नहीं चाहता था। पहले तुम्हें अपनी आँखोंसे साक्षात् बतला देना चाहता था।"

"ऐसी गुप्त बात दो घंटोंतक छिपाकर रखी कैसे जा सकती है ?" लेखाने कहा। वह आगे बढ़कर अपने पिताकी बगलमें आ गई थी।

"तो क्या तुम मुझे अपने उसी मन्दिरमें ले चल रहे हो ?" बी–१०

ने पूछा ।

"वह मन्दिर जितना मेरा है, उतना तुम्हारा भी । आखिर वह सूझ थी किसकी ? हम उस मन्दिरमें नहीं रहते । उसीके सामने सड़कके इस पार हमारा घर है । मैंने तुम्हारे लिए "पैरेडाइज लाज" में एक कमरा तय कर रक्खा है । वह उसी सड़कके मोड़पर है । एक पूरे सप्ताह भर खूब आराम कीजिए, खाइए पीजिए, सिनेमाके नृत्य और संगीतका सुख लीजिए । फिर किसी एक दिन हम गंभीर वार्तालाप करेंगे ।"

"क्या आप वह गंभीर वार्तालाप एक सप्ताहतक रोक सकेंगे, बाबा ?"

काल्लूने उसकी ओर मधुर दृष्टिसे देखा और वह फिर अपने मित्रसे बातचीत करने लगा ।

"याद है तुम्हें, मैंने जो कुछ अपनी पुत्रीके विषयमें कहा था ?"

"तुम तो अधिक समय उसीकी बातें किया करते थे । तुम मुझे उनमेंसे किस बातकी याद दिलाना चाहते हो ?"

"पदककी ! जो पदक उसने जीता था !" किन्तु तुरन्त ही उसका मुख उदास हो गया । पदक चला गया था । उसको फिरसे पानेके लिए वह क्या नहीं दे सकता ! बी–१० को वह पदक देखनेको तो मिलेगा नहीं ।

"इतने–एक हजारसे भी बहुत ऊपर––प्रतिस्पर्धियोंके हरानेके लिए सचमुच बड़ी भारी होशियारीकी जरूरत है ।" बी–१० ने कहा । "विचार-पूर्ण और रुचिकर परीक्षकने ठीक ही लिखा है ।"

"बाबा, तुम्हें जेलमें मेरे विषयमें क्यों बातचीत करनी पड़ी ?" लेखाने आपत्ति की । "क्या तुम्हें बातचीतके लिए कोई दूसरा विषय नहीं मिला ?" उसने अपना हास्यपूर्ण मुख दूसरी ओर मोड़ लिया कि कहीं बी–१० उसे देख न ले ।

"जब मैं आऊँ, तब इसपर विचार करना" काल्लूने फिर अपनी बात चलाई । "लेखाका वही पदक था, जिसके कारण मैंने यह नया अवतार ग्रहण करनेका साहस किया । क्यों ? ऐसी पुत्रीके पिताको तो बड़ेसे

बड़े ब्राह्मणके समान भला होना चाहिए !" काल्‌ रुका और उसने खेदसे अपना सिर हिलाया। "मुझे समझ में नहीं आता कि जब लेखाका विवाह होगा और वह अपनी ससुराल चली जायगी, तब मैं जीऊँगा कैसे ?"

"शायद वह मंगल दिवस समीप ही है ?" बी-१०ने विनयके साथ पूछा।

"अभीतक कुछ तय तो हुआ नहीं है। किन्तु···"

लेखाने बी-१०की ओर दृष्टिपात करते हुए बात काटी। "बाबा आपके विषयमें भी बहुत कुछ कहते रहे हैं। इन्होंने कहा था कि एक दिन मैंने जाति पूछी तो बी-१०ने उत्तर दिया कि 'मैं तो कैदी जातिका हूँ।"

"हाँ, मुझे याद आया" काल्‌ बोल उठा। "यद्यपि आप रहेंगे 'पैरेडाइज लाज'में तथापि भोजन हमारे ही साथ करेंगे—यदि जाति-पाँतिकी आपको कोई आपत्ति न हो तो। हमारे यहाँ एक बाम्हनी रसोई बनाती है, किन्तु लेखा उसकी सहायताके लिए रसोईघरमें बराबर जाती आती रहती है।"

"तुम्हारा यह संकेत तो नहीं है कि···" कहते-कहते बी-१० रुक गया।

"क्यों ? आप शायद ब्राह्मण ही हों—जहाँ तक मैं आपके विषयमें जान पाया हूँ। क्या आपने मुझे गायत्री मंत्र नहीं सिखाया था ? उसे तो ब्राह्मणके सिवाय और कोई नहीं जानता ! मुझे इस बातपर अनेक बार विस्मय हुआ है और उसका एक ही निराकरण मेरी समझमें आता है।"

"तो अबसे मुझे रसोईघरमें पाँव नहीं रखना चाहिए ?" लेखाने कहा।

बी-१० हँस पड़ा। "मैं तुम लोगोंको बताऊँ, मैंने तो अस्पृश्योंके रसोईघरोंमें भी भोजन किया है। इतना तो शायद तुम लोग भी न कर सकोगे ?"

काल्‌ने स्वीकार किया। एक कमारको भी अस्पृश्योंके हाथका बनाया अन्न लेनेमें ज्वर चढ़ आएगा। वे उसकी पंक्तिसे उतने ही नीचे हैं जितने ब्राह्मण उससे ऊपर।

"तुम जो भी हो, बी-१०, तुम्हारा अब नया अवतार होगा। मुझे तुमसे इसी विषयपर बातचीत करना है। इसी बीच तुम्हें इन दो बातोंको याद रखना पड़ेगा। एक तो यह कि पी-१४ का वर्तमान नाम है मंगल अधिकारी। और दूसरा यह कि वह ब्राह्मण है, जिसे शिव भगवान्ने स्वप्नमें दर्शन दिये। ठीकसे समझ गये ना ?"

"मुझे लगता है, मैं चकचौंध गया हूँ।" बी-१० ने कहा। "मुझे सारी कहानी आदिसे सुनाइए। मैं समझूँ तो कि यह सब हुआ कैसे। वह चनोंकी चाल—मैंने तो वह कल्पना तुम्हें सहज भावसे दी थी। मुझे और कोई उचित उपाय सूझ ही नहीं रहा था।"

"तो सुनिए।" कालू सुनाने लगा।

१६

रेलगाड़ीमें दो घंटे व्यतीत हुए। घर पहुँचकर स्नान, भोजन, छज्जे-पर खड़े-खड़े कुछ वार्तालाप। बस, इतना ही। तथापि काल्को देखा लगा कि बी-१० उनके साथ महीनों, पूरे वर्ष भर रह चुका है।

"आपने दो माहसे भी कम तो इन्हें जाना है, बाबा?" लेखाने कल ही पूछा था। "जेलमें दो माह!" उसने उत्तर दिया था। "अब, लेखा, मेरी बेटी, तू जान गई होगी? समझी तू?"

बी-१० ने अन्तमें कुछ और बातें अपने विषयमें बतला दी थीं जिनसे अब उसे उसकी यथार्थ परिस्थितिमें देखना कुछ और सरल हो गया था। उसका पिता एक छोटा-सा क्लर्क था—टाटानगरके उस बड़े फौलादके कारखानेमें जहाँ हजारों आदमी काम पर लगे हैं और प्रतिवर्ष दस लाख टन फौलाद उत्पन्न किया जाता है। वह अपने माँ-बापकी सबसे जेठी सन्तान था। उसके चार भाई और एक बहिन थीं। अपने अल्प वेतनसे इतने बड़े कुटुम्बका पालन-पोषण करना पिताके लिए कठिन हो गया। बी-१० ने अपनी अन्तिम स्कूल-परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास की। उसे दो विषयोंमें विशेष योग्यता भी मिली। किन्तु ऊपर अध्ययनके लिए जानेका तो प्रश्न ही नहीं था। उसके सामने प्रश्न था कुटुम्बकी आयमें वृद्धि करनेका। पिताने उसके लिए उसी कारखानेमें एक क्लर्कका स्थान प्राप्त कर लिया। किन्तु बी-१० की अपनी कुछ अन्य ही योजनायें थीं। वह अनेक बार एक मोटरखानेमें जाया आया करता था। वहाँके मिस्त्रियोंसे उसकी मित्रता भी हो गई थी। वह उन्हें काम करते देखता रहता था। उसने उनकी कुछ कारीगरी भी सीख ली थी। मोटरखाने-वाले उसे नौसिखुए (एप्रेंटिस) के स्थानपर रखनेको तैयार हो गये। एक वर्षमें उसे थोड़ी-सी वृत्ति भी मिलने लगी। तीन वर्षमें उसकी आम-

दनी अपने पितासे भी बढ़ गई। तथापि इससे उसके पिताको सन्तोष नहीं था। मिस्त्रीका काम करना! जब कि किसीको सम्मानपूर्ण टेबिलका काम मिल रहा हो?

"तुम्हारी कारीगरी मेरीसे मिलती जुलती है" काल्रू बोल उठा। "हम दोनों ही औजारोंसे बुलवाते हैं।"

"यही बात है" बी०–१०ने स्वीकार किया। 'मैं चुप पड़े हुए मोटरके एंजिनोंको सचेत होकर गाने और घरघरानेवाले बना देता हूँ।" कहकर जहाँ वे बैठे थे वहाँकी पटावदार भूमिपर कुछ पीछेको हटकर वह छज्जेकी दीवालसे टिककर बैठ गया। "और तुमने अपने भले वज्र घनसे नाना काम किये हैं।" उसने आगे कहा।

"मोटरके एंजिन!" काल्रूको उसका चमत्कार दिखाई दिया। कभी-कभी झरनामें उसने मोटर एंजिनके पेटके पेचीले कलपुर्जोंपर ध्यान दिया था। वह उनसे आकर्षित भी हुआ था।

"हम दोनोंकी कारीगरीमें सच्ची समानता है।" काल्रूने दुहराया। किन्तुइस बार उसके स्वरमें कुछ अनिश्चयका भाव था। वह रुका। "शायद किसी दिन आप मुझे यह बतला सकें कि एंजिन गाड़ीको खींचता किस प्रकार है। आपकी झोली तो चमत्कारोंसे भरी पड़ी है!" जेलकी मित्रताकी गर्मी उन दोनोंके बीच फिर उभर उठी।

"बड़ा अच्छा काम है वह।" बी–१० ने फिर कहना प्रारंभ किया। "कभी कभी प्लग अच्छी तरह चिनगारी नहीं छोड़ते। तब एंजिन कुछ बीमार माना जाता है, जैसे किसी मनुष्यको जुकाम हो जाय, छींकें आने लगें। कभी-कभी कारबुलेटर चिपक जाता है या गैस सोती हुई हवासे अच्छी तरह मिश्रित नहीं होता। यह भी एक छोटी-सी बीमारी है। और दूसरी गड़बड़ें हैं, जो भारी-भारी हैं। तब तुम्हें पिस्टनों तक जाना पड़ता है। उस समय तुम्हें सब कल पुर्जे खोलकर अलग रख देना पड़ते हैं, जैसे कोई डाक्टर पेटका आपरेशन करे। मेरी बात समझे ना?"

"हाँ, हाँ" काल्रू बोला।

"तुम यह सब कर सकते हो ? तुम एंजिनके टुकड़े-टुकड़े अलग कर सकते हो, और फिर उसे पूरा बना सकते हो ?" लेखाकी आवाज़में आश्चर्यका नया स्वर आ गया था। वह कुछ दूर अपने पैरोंको नीचे दबाये बैठी थी। "यदि वे कल पुर्जे इधरके उधर लग गये तब क्या होगा ?"

"क्यों, लेखा ! ऐसा हो नहीं सकता, यदि तुम्हें अपने कामका ज्ञान हो।" लेखाके पिताने समझाया। "क्या कोई डाक्टर तिल्लीके स्थानपर प्लीहा और प्लीहाके स्थानपर तिल्ली लगा देगा ? बताओ मुझे ?"

बी-१०ने मुस्कराते हुए अपनी दृष्टि लेखापर डाली। "तुम्हारे पिताकी तीन वस्तुएँ अनुपम हैं; एक वज्रघन, दूसरा गलफुल्ला और तीसरी—उनकी पुत्री।"

लेखा हँस पड़ी। वह कुछ बोली नहीं। उसने अपना सिर नीचा कर लिया। उसके सघन रोमोंके भीतर आँखोंमें चमक थी।

"उस सचमुचके अनुपम वज्रघनको बेचनेसे तो मेरा हृदय चूर-चूर हो गया। और वह गलफुल्ला भी।" काल्ने सिर हिलाते हुए अपने आप कहा। किन्तु जो विचार उसके हृदयमें हिलोरें मार रहा था वह था 'चन्द्रलेखाकी हँसी।' बी०-१०ने अपनी झोलीमेंसे यह दूसरा चमत्कार कर दिखाया !

"तो आपने अपना वह काम छोड़ क्यों दिया ?" काल्न अपने मित्रकी ओर मुड़ा। "वह एंजिनके पेटकी मरम्मत करना !"

बी-१०के मुखपर जल्दीसे एक कालिमा दौड़ गई। वह एक क्षण चुप रहा। फिर बोला: "मैं इस महानगरमें चला आया। यह दो वर्ष पहलेकी बात है। इस महानगरमें जहाँ झाड़ोंपर सोना फलता है ?" काल्ने सिर हिलाया।

"उस समय विश्वयुद्ध चालू था। मुझे काम मिलनेमें क्लेश नहीं हुआ। यह भूखमरी पड़नेसे एक वर्ष पूर्वकी बात है।"

"भूखमरी पड़नेसे" काल्ने धीरेसे दुहराया। "और तब उन्होंने तुम्हें पदच्युत कर दिया—उन ऊपरके लोगोंने जो हमसे घृणा करते हैं, क्योंकि वे

हमसे डरते हैं ?"

बी-१०ने सिर हिलाया। "उन्होंने मुझे पदच्युत नहीं किया। उस समय काम बहुत था। युद्ध बर्मासे ढुलकते-ढुलकते बंगालकी सीमा तक आ गया था। धंधे रोजगारोंमें इतनी आमदनी हो रही थी जितनी पहले कभी नहीं। मोटर गाड़ियोंका मूल्य तिगुना हो गया था और एक सप्ताहमें ही कहीं कोई गाड़ी—चाहे जितनी पुरानी और टूटी फूटी हो—बिना बिके नहीं बची। 'बंगाल ओटोमोबाइल्स लिमिडेड'के मालिकने हमें वर्षके अन्तमें 'बोनस' दिया। वे अच्छी तरह दे सकते थे। उन्होंने उसी समय 'सदर्न एवेन्यू' पर एक विशाल भवन खरीदा था, ऐसा हमारे सुननेमें आया।"

"तो आप गरीबोंके साथ कैसे सम्मिलित हो गये ?"

"मैं आ तो रहा हूँ उस बातपर। मैंने लोगोंको ऐसे मरते देखा, जैसे प्लेगके चूहे। मुझे बड़ा दुख हुआ। मैं अपना मन और अधिक अपने काममें लगाता गया जिससे और कोई विचार ही न आये। किन्तु इससे मेरा बचाव नहीं हो सका।" बी-१० रुक गया। उसके मुखसे उसकी वेदना टपकने लगी थी।

लेखा बोल उठी। "बस, बहुत हुआ। अब आपको और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है।"

बी-१० फिर कहने लगा।

"बात ऐसी हुई। एक होटलके सामने एक मोटरगाड़ीने एक गरीबको धक्का देकर गिरा दिया। गाड़ी घूमी और लेम्पके खंभेसे टकरा गई। उस बिगड़ी गाड़ीकी देखभालके लिए मुझे भेजा गया। वह अधनंगा गरीब सड़कपर लमचित्त पड़ा था जैसे कुचला हुआ कुत्ता। गाड़ीमें उसके रक्तके दाग लगे थे—बहुत रक्त बहनेके लिए तो उस शरीरमें था ही नहीं। उसकी मरी आँखें नटेर रही थीं।"

"बस, बहुत हुआ" कालू बोल उठा।

"उन आँखोंको मैं नहीं भूल पाया। उनमें एक विलक्षण दृष्टि थी।

वे एक दोषारोपण कर रही थीं। गाड़ीने उसे मार डाला, और गाड़ीको कुछ चोट पहुँची। मैं उसे मोटरखानेमें ले जाकर सुधारने लग गया। उसके टपको ठीक-ठाककर ठीक करने लगा, पेंच लगाकर नया लेन्स बैठाने लगा। जब तक मैं यह काम करता रहा—और वह काम कई दिनोंतक चला—तब तक वे आँखें मेरी ओर नटेरतीं और मुझपर दोषारोपण करती रहीं।"

काल्लूने बीचमें पूछ दिया "किन्तु तुम्हारा इसमें क्या दोष ?"

"जिस गाड़ीने उसके प्राण लिये थे, उसकी मैं मरम्मत कर रहा था ! नहीं, बात इतनी ही नहीं थी। इस शहरके हजारों लाखों अन्य मनुष्योंके समान मुझे भी गरीबोंका दुख देखनेकी आदत पड़ गई थी और मैं कठोर हो गया था। वे नटेरी हुई आँखें हम सभीपर दोषारोपण कर रही थीं, हम हजारों-लाखोंपर।"

कुछ देरके लिये सन्नाटा छा गया और उसी बीच मन्दिरके घंटे बज उठे।

"क्या आपको जाना है ?" बी-१० ने छज्जेपरसे मन्दिरकी ओर देखते हुए कहा। उस भव्य भवनके चारों ओर चौड़ा मैदान था जो दीवालसे घिरा हुआ था। दीवालके ढालू सिरेपर काँचकी बोतलोंके नोकदार टुकड़े जमे हुए थे।

"मेरे जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा एक पुजारी है। वह सब कर लेता है। मैं मन्दिरका काम उसके भरोसे छोड़ सकता हूँ।"

बी-१० ने अपनी दृष्टी मोड़ी। उसकी आँखें मिचकीं।

"तो अब आप पूरे पक्के ब्राह्मण हैं ? आपको द्विज बनना कैसा पसन्द आता है ?"

"पहले मुझे न जाने कैसा लगता था, कुछ अजीबसा। किन्तु अब कुछ नहीं। अब मैं लोगोको चिल्ला-चिल्लाकर कहना चाहता हूँ 'देखो, मित्रो, जो भेदभाव. अनन्त युगोंसे चले आ रहे हैं और पवित्र माने जाते हैं, उन्हें तोड़ फेंकना कितना सरल है ?"

"जब मैंने तुम्हें वह रहस्य बतलाया था तब मेरे मनमें तो इतनी ही बात थी कि तुम उसके द्वारा अपनी जीविका चला सकोगे। मुझे यह तो कल्पना भी नहीं थी कि उसके द्वारा तुम एक खजाना भर सकोगे?"

"और वह खजाना आपके लिए खुला हुआ है। उसमें हाथ डालिए और मुट्ठियाँ भर-भरकर निकालिए।" काल्ूने गर्वसे कहा। "यदि यह बात न होती तो मैं तुम्हारे जेलसे निकलते ही तुमसे मिलनेको क्यों उत्सुक होता?"

वी०–१० चौंक उठा।

"ऐसी उदारता तो इन बुरे दिनों बहुत ही दुर्लभ हो गई है।" उसने कहा। उसके स्वरमें थोड़ा-सा मधुर व्यंग भी था।

"आपने अपने विषयमें हमें बहुत कुछ बतला दिया है। किन्तु उसमें एक बड़ी भारी कमी है। आपकी जाति?"

"मैं जतिका कैदी हूँ।"

काल्ू हँसा। "यह तो पहले भी आपने मुझसे कहा था। जेलको भूलना सहज नहीं है, यह मैं जानता हूँ। जब मैं वहाँसे बाहर आया तब मुझमें उसी स्थानकी गंध थी। स्वयं साँस खींचनेपर मेरे नकुए जेलकी दुर्गंधसे भर जाते थे। वही बात तुम्हारे साथ है—बल्कि उससे भी खराब। तुम्हें तो उन सींकचोंके भीतर पूरा एक वर्ष काटना पड़ा है। किन्तु तुम तो युवक हो। तुम जल्दी ही उस दुर्गंधसे मुक्ति पा जाओगे। मैं तुम्हारे लिए एक जनेऊ ला दूँगा। मैं लोगोंसे कह दूँगा तुम मेरे भतीजे हो। तुम मन्दिरके काममें मेरी सहायता करोगे। यह ठीक और उचित होगा ना?"

वी—१० ने अपना सिर हिलाया "न ठीक, न उचित।"

काल्ू चक्करमें पड़ गया "मेरी समझमें नहीं आता। यह सब तुम्हारी ही सूझका परिणाम तो है। नहीं क्या? और जो जनेऊकी बात है, सो मैंने तुम्हें जेलमें अच्छी तरह देखा है और मुझे प्रायः भरोसा है कि

तुम ब्राह्मण हो। नहीं तो तुम मुझे गायत्रीका पाठ न पढ़ा पाते। यहीं तो तुमने गलती कर दी! अब छिपानेसे क्या लाभ! हमें सच-सच बतला दो! तुम ब्राह्मण हो न? नहीं तो और कौन जातिके हो!"

"मैं कैदी जातिका हूँ।" बी—१० ने गम्भीरताके साथ दुहराया।

"बाबा!" लेखाने चिल्लाकर कहा "एक जुलूस फिर आ रहा है जैसे कि तीन और हमने गत पखवाड़ेमें देखे थे। आपको आवाजें सुनाई पड़ती हैं?"

जब नारोंकी आवाज जोरदार हुई, तब काल्लू और बी—१० छज्जे-के कठघरेपर झुककर देखने लगे। लेखा भी उनके साथ हो गई।

जुलूस एक ऊँचे झण्डेके पीछे-पीछे चल रहा था। नारोंकी आवाज स्पष्ट सुनाई देती थी "अन्न! अन्न! हम भूखोंको अन्न माँगते हैं!" लोगोंकी कतार बड़ी लम्बी थी। पाँच-पाँच एक साथ चल रहे थे। वे चलते-चलते वही अन्नका नारा लगाते जाते थे। वे शब्द बड़े-बड़े अक्षरोंमें झण्डेपर भी लिखे थे।

"जो जुलूस हमने पहले देखे थे उनसे यह बड़ा है" लेखाने चिल्लाकर कहा। "सैकड़ों आदमी आ गये। इतवारको हमने जो जुलूस देखा था उससे इसमें शायद दूने आदमी होंगे।"

ब्राह्मण और मन्दिरमें काम करनेवाले दूसरे व्यक्ति फाटकपर भीड़ लगाकर खड़े हो गये और चुपचाप देखने लगे। फिर एक अद्भुत घटना घटी। मन्दिरकी भीड़मेंसे एक मनुष्य बाहर निकला और चलकर सड़कपर जुलूसके पीछे जा पहुँचा। पीछे-पीछे चलनेवालोंमें मिलकर वह भी उनके साथ-साथ आगे बढ़ने लगा।

"विश्वनाथ!" काल्लूने अपनी साँसके भीतर कहा, और वह अपनी शक्तिभर जोरसे चिल्लाया "विश्वनाथ!"

विश्वनाथने कोई उत्तर नहीं दिया। वह बढ़ता ही गया। उसके दुर्बल कंधे ढल रहे थे, किन्तु उसका सिर सीधा खड़ा हुआ था।

"विश्वनाथ!" काल्लूकी पुकार खोखली थी।

"क्या यही वह मनुष्य है जो शिवके अभिषेकके दूधसे बच्चोंको आहार देता है?" बी-१०ने पूछा।

"वही है।" काल्रूके मुखपर तनाव दिख रहा था। वह उन्हीं अदृश्य होते हुए मनुष्योंकी ओर इकटक देख रहा था।

जब फिरसे नारा सुनाई दिया "अन्न! अन्न! हम भूखोंको अन्न माँगते हैं!" तब काल्रूको निश्चय हो गया कि उसे उस बूढ़े मालीकी आवाज सुनाई दे रही है। उसे एक अकस्मात् अद्भुत लालसा उत्पन्न हो रही थी कि वह भी दौड़कर विश्वनाथके साथ हो जावे।

"अन्न! अन्न? हम भूखोंको अन्न माँगते हैं।" काल्रूको दूसरोंके साथ-साथ अपना यह नारा सुनाई पड़ने लगा। उसकी विशाल मुट्ठी बँधी हुई थी।

"अन्न सबको!"

"काम सबको!"

"जेल चावलके नफाखोरोंको!"

काल्रूके पागलपनकी लहरको रोकनेके तनावसे मंगल अधिकारी काँप उठा। कमार सड़कपरके जन-साधारणके साथ चिल्ला रहा था "अन्न सबके लिए।" और उसके हाथोंमें था ऊँचा झँडा जिसपर वे ही शब्द चमक रहे थे "अन्न सबको।"

शायद इसका कारण यह हो कि यह एक ऐसी बात थी जिसे वह कमार अपने रक्तमें अनुभव कर सकता था और एक झलकमें समझ सकता था। इसमें कोई विचारका सूक्ष्म मोड़ अथवा हृदयके स्वप्नके प्रति परोक्ष प्रार्थना नहीं थी। यह तो सीधी-साधी कर्तव्यकी पुकार थी।

पुजारीने अपने मालिकको छज्जेपर खड़ा देख लिया था। वह सड़क पार करके, ऊपरको देखते हुए, चिल्लाने लगा। "मुझे तो पहले क्षणसे ही इस अधर्मी बदमाशके बारेमें सन्देह था। है कि नहीं? अब आपने देख लिया? आप एक नीच बहिष्कृत आदमीसे और क्या अपेक्षा कर सकते हैं?" उसकी आँखें आत्मसंतोषसे सिकुड़ गईं। "वे केवल माँगते नहीं,

तकाजा करते हैं।"

काल्‌ कुछ नहीं बोल सका।

एक क्षण पश्चात्‌ वे दोनों फिर जमीनपर बैठ गये। किन्तु लेखा वहीं कठघरेके पास खड़ी रही। काल्‌ने उदासीसे सिर हिलाकर कहा, "इस बार रक्षा नहीं हो सकती। उसे जाना ही पड़ेगा।"

"उसने किया क्या है?" लेखाने मुड़कर कहा। "वह कोई मन्दिर-का दास तो है नहीं जो वह सड़कपरके जुलूसमें सम्मिलित न हो सके।"

"लेखा, क्या तूने वे नारे नहीं सुने?"

"क्या भूखोंके लिए अन्नका तकाजा करना कोई अपराध है?"

"लेखा, इतना ही तो वे नहीं माँग रहे हैं। 'जेल अन्नके नफाखोरोंको' क्या उन्होंने यह भी नहीं कहा?"

"अन्नके नफाखोरोंको जेल भिजवाना कौन नहीं चाहता? उससे अच्छा हो यदि वे गलेमें फाँसी डालकर लटका दिये जायँ?"

लेखाके स्वरकी इस नयी तीक्ष्णतासे चकित होकर काल्‌ एक क्षण उसीकी ओर देखता रहा। फिर वह हँस पड़ा।

"यदि तुझे यह विदित हो कि हमारे सर अबलाबन्धुजीने अपनी कमाईका बहुभाग चावलके व्यापारसे ही प्राप्त किया है—और यह बात किसीसे छिपी नहीं है—तो तू अन्दाज लगा सकती है कि गलेमें फाँसी लगनेकी सम्भावनासे उसके हृदयको कोई हर्ष नहीं होगा।"

बी–१० बोला "यह सच्ची व्यापार-बुद्धि है। मन्दिरके संरक्षक बन जाना और इस प्रकार जन साधारणको भूखों मारनेके पापसे अपनी मुक्ति करा लेना। अपने पापमें सहायक बना लेना भगवान्‌को, जो अच्छी घूँसका निषेध नहीं करते।"

"ऐसे मनुष्य एक झूठे देव और मेरे जैसे झूठे ब्राह्मणको मानकर अधर्म कमावें और अपनी जातिकी पवित्रताको नष्ट करें, यह विचार कितना अच्छा है?" काल्‌ने कहा।

"किन्तु···" बी-१० ने कहना प्रारंभ किया, परन्तु वह जीभपर लाये

हुए शब्द-पुंजका घूँट पीकर रह गया।

"क्या है?" लेखा उसके शब्दोंको पकड़ रही थी।

बी-१० ने अपना सिर हिलाया। "मैं मन्दिरके विषयमें कुछ न कहूँ यही अच्छा है। मुझे पहले यह तो देख और समझ लेना चाहिए कि वस्तु-स्थिति है कैसी। रही विश्वनाथकी बात, सो उसके विषयमें हमें दुखी होनेका कोई कारण नहीं है। जिस मनुष्यने संघर्ष किया है और भयको जीत लिया है, वह कभी कुचला नहीं जा सकता।"

"भयको" लेखाने साँस ली। उसकी आँखें सड़कके दूर छोरपर फिर जा पहुँची थीं जहाँ वह जुलूस दृष्टिके अगोचर होता जाता था।

"क्या भुखमरीमें इतने महीनों पश्चात् भी कोई कमी नहीं हुई?" बी-१० ने पूछा।

"बहुतसे मर गये किन्तु गाँवोंसे और-और लोग आते जाते हैं जिससे उस क्षतिकी पूर्ति होती जाती है। एक समय तो कलकत्तेकी सड़कोंपर एक लाख आदमी पड़े थे। आज इतनी बुरी दशा तो नहीं है, फिर भी दशा बुरी तो है ही।"

"इन बेचारोंके लिए कुछ करा धरा नहीं जाता?"

"कुछ संकट-मोचन केन्द्र काम कर रहे हैं। वे वैयक्तिक दानसे खोले गये थे। किन्तु उन्हें बाजारसे पर्याप्त अन्न नहीं मिलता। इसलिए वे दुखियोंमेंसे केवल बहुत थोड़ोंकी सेवा कर पाते हैं। जो चावल मिलता भी है वह अत्यन्त हलकी किस्मका होता है और उसमें भी बहुधा कंकर-पत्थर मिला दिये जाते हैं, जिससे बोरोंका वजन बढ़ जाय। उन कंकरों-पत्थरोंसे तो भूखे पेटोंका कोई उपकार होता नहीं।"

बी-१० उठ खड़ा हुआ और छज्जेके एक छोरसे दूसरे छोरतक घूमने लगा। कालू अपने घुटनोंपर हाथ मोड़कर बैठ गया। बी-१० छज्जेके ओर छोर एक बार घूमा, दो बार, तीन बार। अब उसके पैर बदले, अब जमकर रह गये, अब तेज, अब धीमे हुए। अब वह रुका। उसका ऊँचा पूरा शरीर छज्जेके कठघरेपर झुक गया। अन्ततः उसके मुखका

तनाव घटा और वह शान्त स्वरसे बोला।

"सच्चा मार्ग संघर्षका ही है, भयके विरुद्ध संघर्ष।"

"संघर्ष!" कालूने अपने हृदयमें प्रतिध्वनि की। उसे प्रतीत हुआ जैसे उसका रक्त उछल रहा है।

एक काला कोट पहने हुए मनुष्य हाथकी फाउण्टेनपेनको तौल रहा है। गंगूसिंहकी डाढ़ीके लिए जाल। खा लो इसे, हमारे हाड़ोंका तेल, खा लो। छोटा-सा लड़का जिसका मुँह मक्खियोंसे भर रहा है। सोना चढ़े, उतरे, चढ़े, उतरे···

कालू आकृतियोंको देखता और ध्वनियोंको सुनता स्तब्ध बैठा था।

यह पदकके घरेके लिए—अब तो संतोष है? मोटी, अंगुलीमें छल्ला पहने कोड़ा हाथमें लिये। नीली झीनी साड़ी, कस्तूरीकी गंध। एक मनुष्यका हाथ साड़ीके भीतर प्रवेश करता हुआ। ना···ना···समझ-दारीसे काम ले और रानी बनकर रह। ना···ना···ना···

लेखाके ओठोंपर पसीना आ गया। उसने अपना मुँह मोड़ा और दूसरे मुखोंकी ओर घूरकर देखा, मानो पूछ रही हो 'मैं चिल्लाई तो नहीं?' वह फिर घूम गई और अपनी धड़धड़ाती हुई छातीको बहुरंगे कठघरेसे दबाकर खड़ी हो गई।

तनाव तब ढीला पड़ा जब कालू बोला।

"तुम कैदी जातिके हो, बी–१०! और यही मेरे लिए अच्छा है। किन्तु तुम्हारा नाम? मैं तुम्हारा नाम भी तो नहीं जानता। मैं केवल वह नंबर जानता हूँ।"

बी–१० पटी जमीन पर बैठ गया और हँसने लगा। उसने लेखाकी ओर दृष्टि डाली। उसे दिखलाई पड़ी उसके बिखरे केशोंकी काली चमक और उसके गलेके पृष्ठ भागकी मनोहर गोलाई सूर्यके प्रकाशसे उज्ज्वल।

"अच्छा हो यदि तुम हमें अपना नाम बतला दो, हाँ।"

"एक मंगल अधिकारीकी ही पंक्तिमें?" बी–१० फिर हँसने लगा। "यदि तुम चाहो तो।"

काल्लू अपने आपसे पूछ रहा था कि जो युवक अभी इस प्रकार हँस सकता है वह एक ही क्षण पूर्व उतना चुस्त कैसे हो सका होगा।

"बितेन—हो सकता है यह नाम। क्यों नहीं? बितेन।"

काल्लू विचारमें पड़ गया।

"मैंने अपनी बंगाली बोलीमें तो ऐसा कोई नाम सुना नहीं। लेखा, तूने कभी सुना है क्या?"

वह भी सोचने लगी।

"जितेन···हितेन···नितेन···रितेन···"

फिर एक बार हँसी फूट पड़ी। "बितेनके सिवाय और सब कुछ? यह कोई युक्तिसंगत बात नहीं है। मैं तो बितेन ही रहूँगा, भले ही सारे बंगाल-भरमें केवल मैं ही केवल एक बितेन होऊँ! तो तय हुआ?"

१७

वह सीमेंट की हुई भूमिपर उकड़ूँ बैठा हुआ एक ३७ फोर्ड मोटर-कारका वाल्व घिस रहा था। उससे दाहिनी ओर तीन गज दूर एक मिस्त्री एक टूटे हुए सायलेंसरको चिनगारियाँ छिटकाता हुआ जोड़ रहा था। कुछ और दूरीपर कोनेमें एक मनुष्य अपनी नाकपर निकेल फ्रेमका चश्मा लगाये अपने सामनेकी चौकीपर निकले हुए आइलोजकी ओर झुककर एक घड़ीसाज जैसी तीक्ष्ण दृष्टिसे देख रहा था। बीस और मनुष्य मरम्मतके भिन्न-भिन्न कामोंमें लगे हुए थे। बंगाल आटोमोबाइल्स लिमिटेडमें काम काजकी कमी नहीं थी।

वितेनने अपने चारों ओर दृष्टि डाली। सब नये-नये ही मुख दिखलाई पड़े। उसके वे मित्र वहाँ नहीं थे। वे सेनाके यन्त्र-विभागमें भरती हो गये थे। सेनाने प्रत्येक कारखानेसे अधिकांश अनुभवी मिस्त्रियोंको खींच लिया था। यही कारण था कि वितेनको अपने पुराने कामपर आ लगनेमें कोई कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ा। कोई हैरानी पैदा करनेवाले प्रश्न नहीं पूछे गये। किसी प्रमाण-पत्रकी आवश्यकता नहीं पड़ी।

"एक सप्ताह भर आराम करो!" काल्टूने आग्रह किया था। "नहीं करोगे? तो तीन ही दिन सही। केवल तीन दिन जिससे तुम्हारा जेलका एक वर्षके कठोर परिश्रमका पसीना धुल जाय।"

बी-१०को तीन दिनके आरामकी भी आवश्यकता नहीं थी। जितने जल्दी धंधा प्रारम्भ हो जाय उतना ही अच्छा।

वह उस वाल्वको शून्य हृदयसे घिस रहा था। उसके मनमें बहुत सी चिन्तायें थीं। वह बुरी तरह विचलित हो उठा था। कारण, चन्द्रलेखा।

एक लड़कीने एक बार पहले भी उसके हृदयको विचलित किया था और उसके विचारों तथा जीवनकी धारामें हेर फेर कर डाला था। यह

बात आजसे दो वर्ष पूर्वकी है। किन्तु उस समय जो कुछ हुआ वह कल ही हुआ जैसा प्रतीत हो रहा था।

वह उसकी इकलौती बहिन थी। पूर्णिमा उससे पाँच वर्ष लहुरी थी। उसमें चन्द्रलेखा जैसा अद्भुत सौन्दर्य नहीं था, तथापि थी वह भी अपने ढंगकी मधुर। अपने बारहवें जन्म दिवससे ही उसे स्कूलके घंटोंको छोड़कर अपना अधिकांश समय घरके भीतर धार्मिक क्रियाओंमें ही बिताना पड़ता था। बात इतनी ही नहीं थी कि वह पूजाकी तैयारीमें सहायता कर दे। उसके ब्राह्मण माता-पिता प्रतिदिन घंटों तक पूजाके कमरेमें स्तुति-पाठ या शास्त्र-स्वाध्याय किया करते थे। किन्तु कुमारी लड़कीके लिए तो कुछ और भी विशेष क्रियायें थीं जिनके पालनसे उसके वैवाहिक सुखका पुण्य प्राप्त हो जाय। जब पूर्णिमाने शिकायत की कि वह इन कृत्योंके कारण अपना स्कूलका काम नहीं कर पाती, तब उसकी माँने उसे स्कूल जाना बन्द करा देनेकी धमकी दी।

"झूठी किताबोंकी इस पढ़ाईसे लाभ ही क्या है?" माँने पूछा: "मैं तो अपनी इतनी बड़ी बिटियाको कभी स्कूलमें नहीं जाने देती। किन्तु आजकलका यह एक नया रिवाज चल गया है। अब वरोंकी नई-नई इच्छायें होने लगी हैं। उनके माँ-बाप भी मूर्खतावश उन्हीं जैसी बातें करने लगते हैं। कन्या-दिखाईके समय वे पूछते हैं, यह स्कूलमें कौन-सी कक्षातक पढ़ी है? बाप रे बाप! इस देशमें यह एक नया पाप फैल गया है।"

"अब तो नया अवतार होना चाहिए—संसारी रूपमें परमेश्वरका ग्यारहवाँ अवतार।" उसके पतिने कहा। वह भी कट्टरताके विचारोंमें अपनी सहधर्मिणीसे कुछ कम न था। "और यह अवतार उनके रौद्ररूपका होगा जैसा चतुर्थ अवतार हुआ था जब भगवान्ने नरसिंहका रूप धारण करके पापी हिरण्यकशिपुका पेट अपने तीक्ष्ण पंजोंसे फाड़ डाला था। इस कलजुगमें अब उन्हीं नरसिंहजीके पैने नखोंकी आवश्यकता है।"

पूर्णिमा बड़े शान्त स्वभावकी थी। उसके कोई सामाजिक सम्बन्ध भी नहीं थे। अतएव यह आश्चर्य ही था कि वह बासवसे कैसे मिली और कैसे उसपर उसका प्रेम उत्पन्न हो गया। बासव उस लोहेके कारखानेमें 'फोरमैन' था। कहा जाता था कि वह थोड़े ही वर्षोंमें निश्चयसे असिस्टेण्ट इञ्जीनियर बन जायगा और सम्भव है ऊपर भी बढ़ जाय। एक दिन बासवने पूर्णिमाके पिताको पत्र लिखा और उसमें उसने विवाहका प्रस्ताव कर दिया। इतवारका दिन था। जब वह पत्र आया तब बिनेन और उसके पिता घरपर ही थे। पत्र पढ़कर पिताजी पहले तो सन्न रह गये। उन्हें स्वप्नमें भी कभी ऐसी कल्पना नहीं हो सकती थी। फिर उनकी क्रोधाग्नि भभक उठी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे पागल हो गए हों। उन्होंने चिल्लाकर पत्नीको बुलाया। ज्यों ही वे रसोईघरका काम-काज छोड़कर घबराई हुई दौड़कर आईं त्यों ही वे बड़बड़ाकर सुनाने लगे। उनकी शब्दावलीमेंसे माँने अन्ततः घटनाकी बातें समझीं। उन्होंने अपने कपालपर हाथ मारा और वे फूट-फूटकर जोरसे रोने लगीं।

"कुलको कलंक लग गया।" वे और भी जोरसे रोने और छाती कूटने लगीं। "स्वर्गमें हमारे चौदह पीढ़ियोंके पुरखोंको कलंक लग गया!"

पूर्णिमा पड़ोसीके घर गई थी। ज्यों ही वह लौटी त्यों ही माता और पिता दोनों ही उसपर बाजसे टूट पड़े। माँने उसके केशोंका जूड़ा पकड़ा और घसीटती हुई उसे सोनेके कमरेमें ले गई। उसने उसे पीटना आरम्भ किया—घूँसे, मुक्के, लातें।

"भला होता यदि तू मेरे पेटमें ही मर जाती। अरे, मैंने जन्मते ही ही तेरा गला घोंटकर क्यों न मार डाला? मैंने अपनी छातीका दूध पिला-पिलाकर इस साँपिनीको क्यों पाला?"

पूर्णिमाने यह सब दण्ड ओंठ बाँधे सह लिया। उसकी आँखोंके टोपे मिचमिचाये, किन्तु उसके मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकला। वह सदैवसे ही ऐसी थी। जब वह बहुत छोटी थी तब भी तो शायद ही

उसने कभी कोई ऊधम किया हो। बिलकुल शान्त, विनीत और विवश।

वितेन कुछ देरतक तो यह दृश्य चुपचाप देखता रहा। किन्तु फिर अपने आपको न रोक सका। अपने जीवनमें प्रथम बार आज उसने अपने पूज्य माँ-बापके विरुद्ध क्रोधकी आवाज उठाई।

"उसने ऐसा किया क्या है जो आप बेचारी लड़कीको मारे डालते हैं?"

पिताजी पास ही खड़े-खड़े देख रहे थे। उन्होंने तुरन्त ही उत्तर दिया, "यह अवश्य ही गुप्त रूपसे उस बदमाशसे मिली होगी। नहीं तो उसकी हिम्मत थी जो वह मेरे पास विवाहकी बात लिख भेजता! अवश्य ही वह पाजी पागल हो गया है! क्या उसे अपनी जातिकी कोई बड़ी लड़की विवाहके लिए नहीं मिली?"

"किन्तु वास्तवमें ऐसा कौन-सा दोष है? क्या आप पूर्णिमाके लिए उससे अच्छा वर पानेकी आशा करते हैं?"

"मूर्ख कहींका!" पिताजीका क्रोध और भी भभका। क्या तुझे यह भी बतलाना पड़ेगा कि वह नालायक ब्राह्मण नहीं है? तू जान बूझकर अबोध बनता है? समझ गया, तू भी इस खेलमें सम्मिलित है।"

कुछ घंटों पश्चात्, पिताजीने एक टीनके ट्रंकमें सामान रखा, बिस्तर लपेटा और रातकी गाड़ीसे कलकत्ताको प्रस्थान कर दिया। उन्हें लौटनेमें दो दिन लगे। घरमें सन्नाटा रहता था। केवल बार-बार माँके रोनेकी आवाज ही उठती थी, मानों उनका कोई बाल-बच्चा मृत्युके मुँहमें समा गया हो। इन दिनों पूर्णिया कैदीकी भाँति अपने सोनेके कमरेमें ही बन्द रखी जाती थी। वह बिना देखे एक कदम भी बाहर नहीं रख सकती थी। इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया। सातवें दिन प्रातःकाल उसके विवाहकी बात सुनाई गई। विवाह उसी रात्रिको होनेवाला था।

बहुत ही सीधा काम-काज था, साधारण विवाहसे बहुत भिन्न। पाहुने मुश्किलसे दस बारह आये होंगे। बाजेवाला अकेला सहनाई बजा

रहा था जिसकी ध्वनि ऐसी निकल रही थी मानों कोई लम्बा रोना रो रहा हो। ज्यों ही संध्याको दूल्हा द्वारपर आया, त्यों ही वितेनने उसे उत्सुकतासे देखा। वह कलकत्तेसे टाटानगर उसी दिन दोपहरको गाड़ीमें आया था और भाड़ेके मकानमें ठहरा था। उसकी दाढ़ी झुक रही थी और सिरके बाल भूरे थे। पीछे अपने बहनोईके बारेमें वितेनको कुछ और बातें ज्ञात हुईं। वह विधुर था। उसकी पत्नीकी मृत्यु केवल दो माह पूर्व हुई थी। उसके बाल-बच्चे और नाती-पोते भी थे।

उस साँझ भर वितेन अपनी बहिनसे दूर ही दूर रहा। केवल एक बार वह उसके सम्मुख पड़ा और तभी पूर्णिमा बोल उठी :

"दादा ! मुझे तेरा भरोसा था। मुझे विश्वास था कि तू औरों जैसा नहीं है। मुझे आशा थी कि···"वह रुक गई। "मैंने गलती की !" उसने धीरेसे कहा। पूर्णिमाकी आँखें जल रहीं थीं। वितेनको उसकी आँखोंकी यह नई ज्वाला सहन नहीं हो सकी। वह मुड़कर दूर भाग गया।

पूर्णिमाके अपने पतिके साथ चले जानेके दूसरे दिन बड़े प्रातः से ही वितेनके जीवनमें एक परिवर्तन दिखाई दिया। उसका पालन पोषण धार्मिक कट्टरताके साथ हुआ था। वह प्रति दिन कड़े नियमके साथ ब्राह्मणोचित पूजा-पाठ किया करता था। इसमें उसे कुछ उत्साह नहीं था, तथापि उसके विरुद्ध उसने कभी एक प्रश्न भी नहीं उठाया था। आज जब सूर्योदय हुआ तब सूर्य भगवान्को वितेनकी वन्दना नहीं मिली। उसने आज वह तीन हजार वर्षकी परम्परासे चला आया हुआ सूर्य-नमस्कार नहीं किया।

लाल जवा-कुसुम-से रक्त, तेजस्वी प्रकाशसे युक्त, अंधकार और पापके विनाशक, हे दिवाकर, तुझे मेरा प्रणाम है !

स्नानके समय उसने अपने पुरखोंकी तर्पण-क्रिया भी नहीं की। दस बार गायत्री मंत्रका जाप भी नहीं किया, जिसे यज्ञोपवीत धारण करने और अग्निकी साक्षीसे व्रत लेकर द्विज बननेके दिन ही ब्राह्मणपुत्र सबसे

पहले सीख लेता है। उसे प्रतीत हुआ कि उसकी जड़ें उखड़ गई हैं—वे जड़ें जिनसे उसके माता-पिताके हृदयमें धर्मका रस पहुँच रहा था और उनकी मानवीय भावनाओंमें भयंकर विकृतियाँ उत्पन्न कर रहा था।

फिर भी वे मानवीय भावनायें उनमें प्रबल थीं। बहुत महीने नहीं हुए जब पूर्णिमाको सन्निपात ज्वर हो गया था और माँ-बाप दोनों ही उसकी शय्याके पास रात्रिभर जागते बैठे रहते थे। वितेनको उनकी आशंका और दुखका स्मरण हो रहा था। पूरे एक सप्ताह भर उन्होंने अन्नजल नाममात्रको ही ग्रहण किया था।

वह कौन-सी पाप-शक्ति थी जिसने ऐसे वात्सल्यपूर्ण माता-पिताको एक क्षणमात्रमें हिंस्र पशु बना दिया।

ऐसा कैसा धार्मिक विश्वास जो इतना अंधा और विनाशकारी हो? जो माँ-बाप अपनी पुत्रीको सुखी बनानेके लिए अपना सर्वस्व त्याग कर सकते थे, वे ही उसे जीते जी मृतक बनाने पर उतारू कैसे हो गये? यह दुष्प्रवृत्ति कहाँसे उत्पन्न हुई?

वितेन उनकी परीक्षा किसी कठोर कसौटीपर कर रहा हो, सो बात नहीं थी। उसे उनकी पीड़ाका भी भान था। अपनी पुत्रीको उस बीमारीसे बचा लेनेकी प्रथम खुशीके पश्चात् उन्हें यह गम्भीर चिन्ता हो रही थी कि उन्हें उसके योग्य कोई अच्छा वर नहीं मिल रहा है। समय जा रहा था। हाथमें पैसा नहीं था कि अच्छा दहेज दिया जा सके। उस विधुरने दहेजका कोई तकाजा नहीं किया। ऐसी दशामें विवश हुआ पिता और कर ही क्या सकता था?

बासव दुखसे पागल हो गया। पूर्णिमाको जो दण्ड मिला उसका अपराधी उसने अपनेको ही ठहराया। यदि यह पूर्णिमाके मार्गमें आड़े नहीं आता, तो समयपर उसके लिए कोई अच्छा ब्राह्मण वर मिल सकता था। उसने जो विवाहका प्रस्ताव कर दिया उससे उस निर्दोष कन्याका भाग्य पलट गया। कितनी अक्षम्य मूर्खता!

चार माह पश्चात् भाई दूजके त्योहार पर वितेन अपनी बहिनके पास

कलकत्ते गया। दो सौ मीलसे कुछ कमकी यात्रा थी। वहिनोईका घर नगरके बाहरी भागमें था जहाँ उतना हो-हल्ला नहीं। घर सुन्दर दिखाई दिया। किन्तु था तो वह सोनेका पिंजड़ा ही। वितेनको यह तव प्रतीत हुआ जव उसने अपनी वहिनको देखा।

भाई-दूजकी रीति-रस्म ठीकसे हो गई। वितेनको अच्छी जीमन मिली। पूर्णिमा शान्त दिखाई दे रही थी। किन्तु जव वे दोनों अकेले उसके सोनेके कमरेमें मिले तव वह अकस्मात् विह्वल हो उठी। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा निकल कर उसके गालों पर वहने लगी।

वितेनने उसकी कहानी सुनी। जीवन साधारण गतिसे चल रहा था। किन्तु कोई तीन सताह हुए कि अपने मनकी निराशाके वशीभूत होकर उसने वासवके नाम एक पत्र लिखा। किन्तु डाकघरतक पहुँचनेसे पूर्व ही वह रोक लिया और पढ़ लिया गया। उसी क्षणसे उसको दण्ड मिलना प्रारंभ हो गया। जव उसने पूछा कि उसे क्या-क्या भुगतना पड़ रहा है, तभी उसे उसके मुखपर घोर आतंककी छाया दिखाई दी। उसका वह आतंकपूर्ण मुख उसकी स्मृतिपर अमिट होकर वैठ गया है।

"एक दिन आयेगा, जव मैं और अधिक सहन न कर सकूँगी। तभी मुझे मुक्ति मिलेगी।" वस, ये उसके अन्तिम शब्द थे।

और वह दिन वहुत जल्दी ही आ गया और वह मुक्त हो गई।

चिट्ठीसे समाचार मिला कि उसका शव घरके पीछेके कुंडमें डूवा पाया गया। आकस्मिक मृत्यु! वह तड़के स्नान करने गई थी। काई-चढ़ी सीढ़ियोंपरसे पैर फिसल गया होगा और वह उस कुण्डमें डूव गई। किन्तु वितेन जानता था कि सच्ची वात क्या है। आकस्मिक मृत्युकी वात विलकुल झूठ है। पूर्णिमा तो तैरना अच्छी तरह जानती थी। पूर्णिमाने अपना वचन निवाहा। उसने मुक्ति पा ली।

घरमें रोना धोना हुआ। किन्तु वितेनको वह सव नहीं सुनना पड़ा। वह अधिकांश समय वाहर रहने लगा था। उसे अपने माँ-वापका मुँह देखनेमें घृणा होती थी। एक दिन वह वासवसे मिलने पहुँच गया।

वासव उतना पागल नहीं था जितना वितेनने सोचा था। वह अपने भीतर कुछ गंभीर ज्योतिसे चमक रहा-सा प्रतीत हुआ। उसने वितेनकी ओर घृणाकी दृष्टि डाली।

"अब तुम ब्राह्मण लोग एक मनुष्य-घात करके तो संतुष्ट हो गये? अब तुम सुखी हो गये ना?"

वितेनने कोई विरोध नहीं किया। वह चुपचाप बैठ गया और सोचने लगा। समय निकलता गया। एक क्षण हुआ था एक घंटा? अन्तमें वह अपने पैरों खड़ा हो गया।

"जाइए" वासवने द्वारकी ओर दिखलाते हुए चिल्लाकर कहा।

वितेन गया नहीं। धीरे-धीरे सोच-विचारमें पड़े हुए ही उसने अपनी शर्ट और बनयान निकाल डाली। वासव चकराकर उसकी ओर घूरने लगा। वितेनने अपनी नङ्गी छातीपरके यज्ञोपवीतको अपनी मुट्ठीमें लिया। उसे पकड़कर उसने जोरसे खींचा। उसने झटका दे-देकर उसके नौही सूत तोड़ डाले। फिर उसने उस डोरेको उस कमरेके एक कोनेमें फेंक दिया जैसे वह कोई पाप हो।

"यह तुमने क्या किया?" वासव बेदम होकर चिल्लाया।

"वासव दादा, अब मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं तुम्हारे जैसा ही हूँ। तुम मुझसे अब भी घृणा करोगे?"

वासवने उसे अपनी बाहोंमें भर लिया।

"भाई, यह एक क्षणमात्रकी सनक तो नहीं है?"

वितेनने अपना सिर हिलाया। उसने बहुत दिनोंतक गम्भीरतासे सोच-विचार कर लिया था।

"क्यों? एक दूसरा सूतका डोरा लेकर पहिन लेना कौन कठिन है? किन्तु तुमने इस जनेऊको तोड़कर जन्म-जन्मान्तरके लिए नरक तो कमा ही डाला। क्या तुम अपने इस क्षणके विचारोंपर दृढ़ रह सकोगे?"

"मैं जो कुछ पुण्य और पवित्र मानता होऊँ, उस सबकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि आगे कभी भी मैं इस ब्राह्मणके लक्षण यज्ञोपवीत-

को धारण नहीं करूँगा। पूर्णिमाने मरकर मुझे यह सिखा दिया है। समझ रहे हो ना, बासव दादा?"

इस प्रकार उसे ब्राह्मणत्वसे मुक्ति मिली थी।

अब वह अपने माँ-बापके साथ नहीं रह सकता था। वे उसे बिना यज्ञोपवीतके देखकर भयभीत हो जाते। वे उसे प्रायश्चित्त कराते और फिरसे उसका उपनयन संस्कार करते, क्योंकि वे अपनी प्राचीन परम्परासे कभी विचलित नहीं हुए। वे पहलेके समान ही अपना पूजापाठ करते थे। जो दुर्भाग्य उन्हें भुगतना पड़ा वह उनके इसी जन्मके या किसी पूर्व जन्मके कर्मोंका फल था। यही समाधान उन्होंने अपने हृदयमें कर लिया था। जिस गंभीर दुर्घटनाने पुत्रके मनका विश्वास नष्ट कर दिया उसने उनके विश्वासको और भी पक्का जमा दिया। धर्मके नियम और भी अधिक सावधानीसे पालन करने चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि फिर कुछ उनकी गलतियाँ या त्रुटियाँ रह जायँ जिनका बुरा फल उन्हें इसी जन्ममें या आगेके जन्मोंमें भोगना पड़े।

उसी रात्रिको वितेन घर छोड़कर कलकत्ता जानेवाली गाड़ीमें सवार हो गया। उस महानगरमें अब उसकी बहिन तो रही नहीं थी जिससे मिलने वह जाता। किन्तु कलकत्ता ऐसा शहर है जहाँ उसे कुछ जीविका मिल सकती है। वहाँ पहुँचकर वह बङ्गाल आटोमोबाइल्समें भरती हो गया। जेलमें बीता हुआ एक वर्ष उसके जीवनका एक क्षेपक था। अब वह पुनः अपनी उसी पुरानी जगहपर आकर ३७ फोर्डके वाल्वको घिस रहा था।

यह भी कैसी अद्भुत विडम्बना है कि जिसने अपना ब्राह्मणत्व तोड़कर बाहर फेंक दिया था, उसीके द्वारा एक नया ब्राह्मण उत्पन्न हुआ! इसका यथार्थ मतलब क्या है? नया ब्राह्मण अपनी एक योजनापर चल रहा था जिसका प्रयोजन था लोगोंसे अधर्म कराना और अपनी जाति-पाँतिमें कलंक लगवाना। किन्तु जो दूसरोंके विश्वासोंके आधारपर ही उनका सर्वनाश करा रहा हो, वह क्या स्वयं सीधे विश्वाससे प्रभावित

जिस वाल्वको वितेन विस रहा था वह उसके हाथसे छूट पड़ा। वह चौंककर जैसे जाग पड़ा। वह फिर विसने लगा और ,अपने मनके उतारको दूर हटानेका प्रयत्न करने लगा। किन्तु उसकी आन्तरिक पीड़ा बढ़ती प्रतीत हुई—एक नई स्पष्ट व्याधि! उसे इससे पूर्व ऐसा कभी अनुभव नहीं हुआ था। वह अकेला था। माँ-बापने उसे शाप दे दिया था। जिस वहिनको वह प्यार करता था वह रही नहीं। उसका कोई ऐसा सगा साथी नहीं था जिसके लिए जीनेमें उसे कुछ रस मिले। पाप बङ्गालपर छाया हुआ था। उससे संघर्ष करना व्यर्थ था! इससे तो वह जेलहीमें अधिक सुखी था। वहाँ उसे दिनभर कठोर परिश्रम करना पड़ता और रात्रिको अपने थके-माँदे शरीरको लोहेकी चारपाईपर फैलाकर वह सुखकी नींद लेता था। वहाँसे छूटनेके पश्चात् केवल दो ही दिनके अल्प कालमें उसके जीवनका रङ्ग ही वदल गया था। वह समझ नहीं पाता था कि कहाँसे उसमें ऐसी शून्यता आ गई, एक खालीपन, एक भयङ्कर नैराश्य। और इसीके कारण वह अपने-आपके साथ भी शान्तिसे नहीं रह सकता था।

१८

चन्द्रलेखा अपने हृदयमें उन शब्दोंकी गूँज सुन रही थी। संघर्षका मार्ग ही सच्चा मार्ग है। सबसे पहले भयके विरुद्ध संघर्ष।

भय!

उस दिन शामको, कुछ माह पूर्व, बाबा उसे एक नाटक देखने लिवा ले गये थे—टागोरका एक नृत्य-नाट्य। उन्होंने सबसे बढ़िया आसन सुरक्षित कर लिये थे। पर्दा उठनेसे खूब पहले ही वे अपने बाक्समें बैठ गये थे।

थोड़ी ही देरमें जब वह नाटकघरके आर पार देख रही थी तब अकस्मात् जोरसे चौंक उठी। एक दूसरे भागमें एक मोटी स्त्री बैठी थी जो दूरबीन लगाकर देख रही थी। उतनी दूरसे उसका मुख पहचानना तो कठिन था, किन्तु वह एक ऐसी स्त्रीसे खूब मिलती जुलती थी जिसे लेखा जानती थी।

हाँ, वह वही थी!

लेखाका हृदय जोर-जोरसे धड़कने लगा। क्या वह पापिनी उसे पहचान लेगी? दूरबीनमेंसे देखती हुई आँखोंसे अपनेको छिपाया कैसे जाय? उसी क्षण वह स्त्री उठ खड़ी हुई।

बाबा!

लेखाको वमन-सा होने लगा। क्या भाग जाऊँ? उसके मनमें यह हिलोर उठी।

"बाबा!"

"हाँ, लेखा!"

बस यहीं नाटकघरका प्रकाश गुल हो गया। खेल आरम्भ हो रहा था। दूरबीनवाली वह स्त्री अपनी जगहपर बैठ गई।

सारी खुशी, सारी प्रतीक्षा भंग हो गई। लेखाको नाटक देखनेकी कोई लालसा नहीं रही। वह अपने ही भयके नाटकका अनुभव कर रही थी।

जब एक अंकके पश्चात् फिर उजेला हुआ, तब उसने फिर नाटकघरके उस छोरकी ओर दृष्टि डाली। किन्तु उस स्त्रीने फिर उसकी ओर आँख नहीं उठाई। उसकी वह दूरबीन दूसरी ही ओर लगी थी। वह अपने पास बैठे एक छोटे बच्चेसे बातचीत कर रही थी, उसके बालोंको स्पर्श करती और अपनी उँगलियोंसे ऊँछ रही थी!

यह तो वह नहीं है!

लेखाने उसके बारेमें ऐसी गलती क्यों की? उस पापिनीसे वह स्त्री तो बहुत कम मिलती है। यह तो बड़ी अच्छी स्त्री है जो छोटेसे बच्चेको प्यार कर रही है। वह शायद उसका नाती होगा?

"चाकलेट" एक चैतन्य सा लड़का नीली वर्दी पहने और बड़ासा काठका ट्रे लिये हुए चिल्लाया।

"लेखा, खा यह अँग्रेजी मिठाई!"

लेखाने वह रङ्ग बिरङ्गा बाक्स खोला और कई टुकड़े निकाले। अपने निश्चिन्तताके सुखमें वह प्रत्येक चाकलेट मुँहमें डालती और तपाकसे कहती जाती, बादाम! वालनट!···कारामेल!

पश्चात् उसपर भयका भूत फिर आ सवार हुआ। हो सकता है वही वह पापिनी स्त्री रही हो! हो भी तो क्या, वह स्त्री उसका क्या कर सकती है! भयका कोई अर्थ नहीं। किन्तु था तो भय, अर्थ भले ही हो या न हो।

एक मनुष्य जेलसे बाहर आया। किन्तु लोहेकी छड़ोंके भीतर भी वह निर्भीक था। भयके घरमें भी वह निर्भय था। लेखाकी अपनी छोटीसी जीवन-परिधिमें उस जैसा कोई अन्य नहीं पाया गया था। बाबाने अपने जेलके दिनोंका वर्णन किया था—पशु जैसा रहना, सदा जैसे दम घुट रहा हो, सैकड़ों प्रकारके अपमान और तिरस्कार, शारीरिक और मानसिक।

बड़ा ही काला कथानक, जिसे भूल जाना ही अच्छा। उसकी कभी पुनरावृत्ति हो नहीं सकती। किन्तु यह पुरुष अपना जेलका नाम स्थिर रखनेपर ही जोर देता है ! वह वहाँके उस नम्बरके सिवाय अन्य कोई नाम रखना ही नहीं चाहता। लेखा अभीतक अपनी स्वच्छ आँखोंसे उसका मन नहीं देख पाई थी। वह असमंजसमें पड़ी थी और बेचैन थी। उसके बाबाकी भी यही दशा थी। बाबा अपने मित्रको मन्दिरकी आयमें हिस्सा देना चाहते थे, एक नया पद, वह सब कुछ जिसके लिए उन्होंने इतना परिश्रम किया था, वह सब कुछ जिससे उनके जीवनमें एक नई सार्थकता आई थी, एक नया रस। स्वप्नकी हिस्सेदारी साक्षात् सत्यके रूपमें।

किन्तु बितेनने साफ इन्कार कर दिया। इन्कार मुस्कराहटके साथ, आधी घृणा, आधी दयाके भावसे !

बाबा आँखें फाड़कर रह गये—पहले अविश्वाससे, पीछे आशंकासे। लेखाने कितनी अच्छी तरहसे उसके मुँहके भावको पढ़ लिया था; आँखें बालककी तरह स्पष्ट, चौड़ा कपाल, झाड़ी जैसे बालोंके नीचे जल्दीसे सिकुड़न लेता हुआ, नकुओंकी व्यंजक स्फूर्ति !

"मैं नहीं समझ पाता" उन्होंने अन्तमें कहा।

"समझेंगे, किसी दिन। तुम्हारे जैसोंके लिए मुक्ति सरल नहीं है।"

"मुक्ति नहीं है ?" उनका स्वर कठोर हुआ किन्तु उनकी आँखोंमें उदासी थी। "हम अपरिचितसे हो गये।" उन्होंने आगे कहा।

"तुम्हारे जैसा मनुष्य अपने आपको दीर्घकालतक धोखा नहीं दे सकता। किसी न किसी दिन हद आवेगी ही।"

दोनोंके बीचका यह तनाव आया और गया। वायुमंडलतकमें एक तनाव पैदा हो जाता, अगर बितेन अपने आकस्मिक स्वच्छ हास्य-द्वारा उसे ढीला न कर देता।

"जरा मेरी ओर तो देखो, जो मैं मुखसे वृद्ध ऋषिके समान वचन निकाल रहा हूँ ! और मैं हूँ तो इतना छोटा जो तुम्हारा पुत्र हो सकता हूँ।"

हृदयोंमें गर्मी आई।

काका विश्वनाथको उस जुलूसमें सम्मिलित होनेके एक दो दिन पश्चात् ही मन्दिरके पंचोंने काम परसे हटा दिया था। बाबा उसके हृदय-को जानते थे। उन्होंने उसे अपनी निजी लुहारी दुकान करा देनेकी बात कही। किन्तु काका विश्वनाथने उत्तर दिया, "लुहारी कुछ बादको भी की जा सकती है। अभी तो मेरे हाथमें उससे अधिक आवश्यक कार्य है।"

"कौन-सा कार्य ?" कालूने विस्मयसे पूछा।

"अन्नके लिए संग्राम" काका विश्वनाथने कहा। उसने हँसते हुए जोड़ा "मुझे बड़ा हर्ष है कि आपने बच्चोंके लिए दूध ले जानेको एक दूसरा मनुष्य लगा लिया है।"

"तुम्हारे बच्चे भूखों नहीं मरेंगे !" कालूने उसे वचन दिया। "उनकी मातायें भी चावलका रेशन पा रही हैं।"

'अन्न ! अन्न ! भूखोंको अन्न !' इस नारेसे उस महानगरका वायुमंडल गूँजने लगा। किसी बातने लोगोंको जकड़ लिया था जिससे उनकी जड़ता टूट गई थी। सड़कोंपर प्रतिदिन बड़े-बड़े प्रदर्शन दिखाई देने लगे। उनमें केवल नीच और बहिष्कृत ही हों, सो बात नहीं। बितेन जिन्हें भूखके घुमक्कड़ कहता था उनमें होते थे कारखानोंमें काम करनेवाले, कालेजोंके विद्यार्थी, दफ्तरोंके क्लर्क। स्वयंसेवक बारी-बारीसे सम्मिलित होते थे। बितेन दो-तीन प्रदर्शनोंमें भाग ले चुका था। ऐसा विदित होता था कि वह उनकी संचालक समितिका भी सदस्य था। उस कमेटीमें, उसीने बताया, दो ऐसे भी व्यक्ति थे जिनको उसने जेलमें भी देखा था। इस संघर्षकी जड़ें उन जेलोंतक भी जा पहुँची थीं जहाँ 'भारत छोड़ो' आन्दोलनवाले कैदी रखे गये थे। वे मनुष्य सभी सामाजिक स्तरोंके थे, नीचेसे नीचे तकके। वे उस महान् आन्दोलनमें पकड़े गये थे जिसने दो वर्ष पूर्व समस्त देशको हिला दिया था। वे पकड़े गये थे किसी अपराधके लिए नहीं, सिवाय इसके कि वे अपने देशको प्यार करते थे और उसके लिए अधिक अच्छे जीवनकी माँग करते थे—ऐसे जीवनकी जो भूख और अप-

मानसे रहित हो, जो आत्म-त्यागकी कठिन तपस्यासे निर्मित हो, जिसकी तपस्यामें भी सुख हो। क्योंकि आजका प्रत्येक दुख सुरक्षित और सुखमय कलके निर्माणकी ईंट है।

वितेन इस प्रकार बोला और लेखाने मोहित होते हुए सुना।

वितेनके जेलमें कई बीसी मनुष्य इस आन्दोलनके कलकत्ता जेलसे पहुँचा दिये गये थे, क्योंकि यहाँ एक दूसरे प्रकारके कैदियोंकी भीड़ हो गई थी। ये वे मनुष्य थे जिन्होंने अपनी भूख मिटानेके लिए कानूनको भंग किया था। आश्चर्य यह था कि इनमें 'भारत छोड़ो' वाली स्त्रियाँ भी थीं। जेलने पुरुष और स्त्रियोंको संख्यामें परिवर्तित कर दिया था, किन्तु वे संख्यायें ही उन कम्पनियों और प्लेटूनोंके सामुदायिक नाम बन गई थीं, जो देशके लिए युद्ध करनेको तैयार थीं। जो भी पुरुष लोहेके ऊँचे फाटकसे निकलते थे वे ही संग्रामके केन्द्र बन जाते थे और उन्हींके आस-पास उसी मतके और लोग जुटकर निपटारेके दिनकी तैयारी करने लगते थे।

वितेन अपनी योजनायें बनाया करता था। एक सीधा-सा नारा प्रत्येक कैदीके ओठोंपर था—'जय हिन्द—जय भारत।' कैदी परस्पर इसी प्रकार आगत-स्वागत करने लगे। जब सुपरिंटेंडेंट साहब प्रातः कैदखानेमें आये तब उनका स्वागत 'जय हिन्द' से किया गया। उसे सुनते ही वह महापुरुष क्रोधसे पागल हो गया। उसने घोर दंड देनेकी धमकी दी। कैदियोंमें फूट पड़ गई। जो अपराधी नहीं थे, किन्तु भूखके शिकार थे वे तुरंत अपने 'भारत छोड़ो' वाले भाइयोंसे मिल गये। अन्य जो कठोर अपराधी थे वे जेलके अधिकारियोंके कृपापात्र बन गये और उन्हें अनेक रियायतें मिलने लगीं। वे तमाखू भी पी सकते थे। उन्हें खानेको भी पकवान मिल जाते थे।

हाँ। 'जय हिन्द' का नारा जेल सुपरिंटेंडेण्टके कानोंपर दिन दूनी ठोकरें मारने लगा। तब उन्हें उसपर कार्रवाई करना पड़ी। उन्होंने उसके अगुआको 'अकेली कैदका' दंड दिया। कैदियोंने इसका उत्तर भूख-

"यह बात है !" बितेनने कहा।

एक दिन इतवारको सवेरे बितेनने पार्कमें ओक्टरलोने स्मारकके पास होनेवाली सभामें अपने साथ चलनेका चन्द्रलेखाको निमन्त्रण दिया। "वहाँ तुम कुछ सचाइयाँ देख सकोगी" बितेनने कहा।

लेखा तैयार हो गई। वे दो फरलांग पैदल चलकर एक सड़ककी मोटर-गाड़ियोंके ठहरनेके स्थानपर जा पहुँचे।

पार्कमें खूब भीड़ थी। वहाँ हजारों आदमी उपस्थित थे। ज्यों ही वे समीप पहुँचे त्यों ही लेखाको ऊँचे-ऊँचे झण्डे दिखलाई पड़े। उनपर वे ही सुपरिचित शब्द लिखे थे। बीसों झण्डे थे। पुलिसके सिपाहियोंके दलके-दल उपस्थित थे। उनके हाथोंमें पीतलकी मूठवाले डंडे थे। बायीं ओर कोई सौ गजकी दूरीपर, एक खुले स्थानपर सफेद पोशाकवाले घुड़सवार थे। यहाँ वहाँ सारजेंट भी घूम रहे थे। उनके कमरपट्टोंमें पिस्तौलें थीं और उनकी जाकटोंपर पीतलके बटन चमक रहे थे।

"हम सड़कपरसे ही देखेंगे" बितेनने चंद्रलेखासे कहा।

"कुछ और समीप चला जाय" लेखाने आग्रह किया। उसने देखा कि भीड़में बहुत-सी स्त्रियाँ भी हैं। उसकी हड्डियोंतक सनसनी फैल गई।

बितेनने मना करते हुए अपना सिर हिलाया "ऊँ हूँ! यह सभा गैर-कानूनी है। आपत्ति उठेगी।"

वह हँसने लगा।

"साहसी लड़की है! किन्तु तू मेरे संरक्षणमें दी गई है। मुझे तेरे पिताको सफाई देनी पड़ेगी।"

दस मिनट और लगे। फिर सभाकी कार्रवाई प्रारम्भ हुई। भीड़ बढ़ती गई। कुछ कोलाहल हुआ। कुछ नारे लगे। फिर एकदम सन्नाटा छा गया।

एक मनुष्य सीढ़ियोंसे चढ़कर मंचपर पहुँचा। ज्यों ही उसने बोलना आरंभ किया, त्यों ही हथियारबंद सिपाही उसपर टूट पड़े। उन्होंने उसके हाथोंमें कड़ियाँ डाल दीं और उसे वहाँसे हटा लिया। यह सब पलक

मारते ही हो गया।

किन्तु तुरंत ही हजारों कंठोंसे आवाज फूट निकली "अन्न! अन्न! भूखोंको अन्न!" मेघकी गर्जनाके समान इस नारेकी चारों ओर प्रतिध्वनि हो उठी।

अब एक स्त्री मंचपर चढ़ी।

"भाइयो! हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं यह तकाजा करनेके लिए कि···"

एक चमकमें पुलिसने उसे पकड़कर वहाँसे हटा लिया।

फिर आवाजें फूट निकलीं "अन्न! अन्न! भूखोंको अन्न!"

फिर बारबार उसी दृश्यकी पुनरावृत्ति हुई। पुरुष और स्त्रियाँ मंचपर चढ़े, कुछ बोले और गिरफ्तार होकर चले गये।

"यह ऐसा कब तक चलता रहेगा?" आवेगसे लेखाका गला रुँधने लगा।

"जब तक समस्त भारत जेलमें न पहुँच जाय! जब तक वे तीस करोड़ पुरुष और स्त्रियोंको लोहेके सीकचोंके भीतर बन्द न कर लें!" वितेनके मुखपर कठोरता छा गई थी। तथापि उसकी आवाजमें शान्ति थी।

"वे ऐसा कैसे कर सकते हैं? वे कितने जेलखाने बनावेंगे?" इन प्रश्नोंका उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं थी। लेखाने एक और प्रश्न उठाया "क्या कैदी जेलखानोंके द्वार तोड़कर नहीं फेंक सकते?"

"देशभरमें बड़ी हलचल मची हुई है। जो लोग शताब्दियोंसे सो रहे थे, वे अब जागकर उठ बैठे हैं। उन्हें अब अपने पैरोंकी बेड़ियाँ अखर रही हैं। जब वे पूर्ण रूपसे जागकर उठ खड़े होंगे और उनकी रग-रगमें अपनी शक्तिका संचार हो उठेगा, तब वे उन बेड़ियोंको एक महान् प्रयत्नसे तोड़कर फेंक देंगे।"

लेखाने देखा, वितेनकी आँखोंमें बिजली दौड़ रही है। वह कुछ डर गई। तत्काल ही उसके घुटनोंके गड्ढोंसे एक शीतकी लहर ऊपरको उठी। कहीं वह भी मंचपर जा खड़ा हो और फिर जेलमें वापिस पहुँच जाय, तो!

लेखाने एक संरक्षककी दृष्टिसे वितेनको पकड़ा। उसने शायद उसकी

बेचैनीको भाँप लिया। उसकी मुस्कुराहटमें गर्मी थी, आश्वासन था।

"देखा तूने! स्त्रियाँ भी हमारे साथ हैं! एक समान प्रयोजनकी सिद्धिके लिए हम साथ-साथ चल रहे हैं।" उसका स्वर धीमा पड़ा और उसने चुपकेसे कहा "तुम और मैं!"

इसी क्षण लेखामें बितेनके लिए एक तीव्र भावना जाग उठी। यह भावना इतनी प्रबल थी कि उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और वह अपनेको आपेमें सम्हाले रखनेका प्रयत्न करने लगी। एक क्षण पश्चात् जब उसने पुनः अपनी आँखें खोलीं तब देखा कि चारों ओरसे घुड़सवार दौड़ रहे हैं। वे चिल्ला रहे हैं "भागो! दौड़ो!" भीड़पर आक्रमण कर रहे हैं और उसे तितर बितर किये डालते हैं। क्रोधकी फुफकारें, गालियाँ और चीत्कार, भागते पैरोंकी फटफटाहट, घोड़ोंकी टपकार और इस सबके ऊपर वह नारा "अन्न! अन्न! भूखोंको अन्न!" गर्जनापर गर्जना।

"चलो, चन्द्रलेखा।"

सड़कपर पैदल चलते-चलते उन्होंने देखा, एक पुलिस लारी खचाखच भरी हुई खड़ी है। वे बहुत देरतक चुप रहे।

"देखा तूने।" अन्तमें बितेन बोला।

लेखाकी समाधि भंग हुई। उसने उसके मुखकी ओर देखा। उसे फिर उसी शीतकी लहरका अनुभव हुआ। क्या होता, यदि वे भी उनमें जा सम्मिलित होते और पुलिस उन्हें भी पकड़ ले जाती? किन्तु उसकी वह आशंका एक विलक्षण लालसासे सुमिश्रित थी। वह चाहती थी कि अपना मस्तक उसके चरणोंमें टेक दे। इस लालसासे उसे चोट भी पहुँच रही थी और सुख भी हो रहा था।

दूर बीते हुए भूतकालमें बाबा उसके हृदयमें कुछ ऐसी ही लालसा उत्पन्न करते थे—जब वे द्विज नहीं बने थे। अब फिर वह लालसा उसपर छा रही थी। वह चाहती थी कि जेलसे आये हुए इस अपरिचित व्यक्तिके चरणोंमें अपना सिर झुका दे और उसकी हृदयसे पूजा करे।

१९

अंग सब सुस्त थे। आँखें शून्यताभरी आधी रातकी अँधेरेमें गोता लगा रही थीं। सिर हथेलियोंके बीच थमा हुआ तड़क रहा था—फट रहा था। बिजलीके पंखेके सफेद पंखोंके झोंकोंके साथ चमड़ीके रोमोंतकका पसीना सूखता जाता था। छज्जेकी जमीनपर कालू अकड़ा हुआ भारी थकानका ढेर बना बैठा था।

चन्द्रलेखाने उसकी हँसी उड़ाई थी।

इन थोड़े-से बीते दिनोंमें बात उसके कानोंतक पहुँच गई थी। कुछ द्वेषभावसे कही गई होगी, किन्तु फिर भी उसमें सत्यका बीज तो था ही। खुराक देनेवाला था वह विवाहका दलाल।

"वह तो बिना पंखोंकी परी है। क्या आश्चर्य है जो विवाहके इतने बहुत-से प्रस्ताव आवें?"

"इतने बहुत-से?" कालूने दुहराया। उसका मुख चमक उठा।

"वर-पक्षवाले मुझसे जानना चाहते हैं: कन्याका ठीक स्वभाव कैसा है? क्या उसमें वे सब गुण हैं जिन्हें कोई अपनी पुत्र-वधूमें देखना चाहता है? वे लोग कुण्डमें अपना पाँव रखनेसे पहले उसकी गहराईका पता लगा लेना चाहते हैं। जब उनके मनका पूरा समाधान हो जायगा, तब आपको बहुत-से स्पष्ट प्रस्ताव मिलेंगे। आप उन्हें तौलकर अपनी इच्छानुसार चुनाव कर सकते हैं।"

"चुनाव कड़ाईसे किया जायगा, यह ध्यान रखिए।"

"एक माता बड़ी उत्सुकतासे कल मेरे पास आई थी। उस समयतक संध्या-पूजा नहीं हुई थी। कन्यापर अपनी आँखें गड़ाकर उसने अपने-आप कहा था 'लक्ष्मी, सुहागकी देवी, जो नवदल कमलपर खड़ी होकर मनुष्यके रूपमें भूतलपर उतर आई है। मुझे कितना आनन्द होगा,

यदि वह मेरे घरमें आ जाय !' उसका घर-द्वार बड़ा सम्पन्न है, यह मैं आपको बताये देता हूँ। यदि आप युवक वरको देखना चाहते हों तो···"

"सब कुछ अपने समयपर होगा" काल्लूने सिर हिलाते हुए कहा।

उसके मनमें एक बातका भरोसा था। उसने लेखाके लिए एक उत्तम जन्म-पत्री खरीद ली थी। उस पत्रिकामें उच्च ब्राह्मण कुलकी कन्याके उच्च ग्रह प्रकट हो रहे थे। उसका उसे सौ रुपया मूल्य चुकाना पड़ा था। किन्तु सौदा बढ़िया था।

विवाहका दलाल एक क्षण ठहरकर फिर बोलने लगा। उसके स्वरमें कुछ तनाव था।

"किन्तु समय रहते ही इस बातको दबा देना अच्छा है। नहीं तो बदनाम···"

"क्या कहा ?" काल्लूने विस्मयसे पूछा। "कैसा बदनाम ?"

"शिव ! शिव !" ब्राह्मणने उदास होकर कहा। "क्या मुझे दूसरेकी हाँड़ीमें अपनी नाक घुसेड़नेकी आवश्यकता है ?"

"तुम्हें किस बातकी पीड़ा है ?" काल्लूने झटसे कहा। "साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?"

ब्राह्मणने अपना गला साफ किया और उसकी अंगुलियाँ अपनी दाढ़ीमें जल्दी-जल्दी फिरने लगीं। बोला, लोगोंकी लम्बी जीभें हैं और जीभें चलेंगी ही। बात यह है कि कन्या बहुधा एक बितेन नामके युवकके साथ दिखाई पड़ती है। वह तो अबोध है। बहुत-सी बातोंमें वह अभी बच्ची ही है।

काल्लूने क्रोधसे अपनी भौंहें सिकोड़ीं।

"बितेन ? वह तो बड़ा भला मनुष्य है। वह ऐसी कोई बात नहीं करेगा जिससे हमारा अहित हो।"

"क्या आप उसके विषयकी सब बातें जानते हैं ? लोगोंकी विष-भरी जीभ कैसे पकड़ी जा सकती है ?"

"मुझे खबरें देते रहना।" कालू मुड़ा और चला गया।

इसलिए उस दलालने बातें इकट्ठी कीं—और मालिकको आ सुनाईं।

कालूको खेद हुआ। लेखाके लिए योग्य वर मिलनेके सुनहले योग थे। वह तब तक सगाईके शंख नहीं फुकवाना चाहता था, जब तक कि अन्तिम चुनावमें उसे कोई शक-सन्देह बाकी रहे। किन्तु यदि बदनामी-की बातें फैल गईं तब तो सब चौपट हो जायगा। वह ऐसा कभी नहीं होने देगा।

उसने एक गलती की थी। उसकी अपनी जातिमें मजदूरोंके समान, स्त्रियाँ और पुरुष आपसमें खुलकर मिला-जुला करते थे। यही बात शहरके शिक्षित वर्गमें भी पाई जाती थी। किन्तु ब्राह्मण वर्गकी अपनी चरित्रसम्बन्धी विशेष नियमावली थी। उस नियमावलीको उसे ध्यानमें रखना था। उसे बितेनको सचेत कर देना था।

किन्तु वह ऐसा कर कैसे सकता था? बितेनके सम्मुख तो यह बात बड़ी हलकी और अयोग्य दिखाई पड़ती!

बितेन अपने निजी मंचपर खड़ा था। धन्य है उसकी इस युवा-वस्थामें ही इतनी ऊँची समझदारीको! उसने भक्तोंके प्रवाहको देखकर कहा था: "आप केवल जातिके घमण्डियोंको ही नहीं, किन्तु अपने हाड-मांसके सगे साथियोंको भी धोखा दे रहे हैं!" उसने यह भी कहा था "आप उसी प्रकार मन्दिर बनाकर उसमें देवकी स्थापना नहीं कर सकते जिस प्रकार चौरंगी रोडपर एक चायकी दुकान या वस्त्र-भण्डार।" इन शब्दोंने तुरन्त कालूके मनमें उस भग्नहृदय गरीबकी स्मृति जागृत कर दी थी, जिसने शिवजीके लिए अपने पाँच पैसोंका दान दिया था—और यही उसकी समस्त सम्पदा थी—जिससे उसे यह वरदान मिल जाय कि उसके गुमे हुए बाल-बच्चोंमेंसे कोई एक भी उसे देखनेको फिर मिल जायगा।

उस युवकके हृदयमें इतनी गर्मी है, इतनी मनुष्योचित भावनायें हैं कि वह बेचारे भक्तोंको उनके अन्ध विश्वासके लिए कभी कोस नहीं

सकता । 'इस देशके विश्वासको यहाँकी महानदियोंकी उपमा दी जा सकती है ।' उन्होंने कहा था । 'नदियोंमें पानीका पूर चढ़कर किनारोंको काट डालता है, गाँवों और खेतोंको डुबा देता है, मनुष्यों और पशुओंको बहा ले जाता है, भूमिकी मिट्टीको धो फेंकता है, और स्वयं व्यर्थ बह जाता है । दूसरी ओर विशाल क्षेत्रोंमें सूखा पड़ता है और फसलें सूख जाती हैं । इस प्रकार भयंकर दुष्काल पड़ते हैं । यदि उन्हीं नदियोंकी सम्हाल की जाय और उनकी जलधाराका सदुपयोग किया जाय तो मन-चाही सिंचाई हो, शक्ति उत्पन्न हो तथा देशका उत्पादन और समृद्धि बढ़े । इसी प्रकार जनताका विश्वास भी एक महान् शक्ति है । उसका भलाईके कामोंमें सदुपयोग किया जा सकता है और उससे कल्याणका निर्माण हो सकता है । जब यह महान् शक्ति व्यर्थ जानेसे बचाई जायगी, तब वह शाप नहीं रहेगी, लोगोंको विनाशकी ओर नहीं ले जायगी । वही देशकी सच्ची पूँजी बनकर लोक-कल्याणकी सृष्टि करेगी ।'

ऐसे विचारों और भावनाओंसे ओतप्रोत पुरुष इस मन्दिरके काम-काजसे अपना हाथ साफ रखे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

कालूने दुःखकी साँस ली । उसमें बितेन जैसे दृढ निश्चयका सर्वथा अभाव था । उसे यह भी तो ज्ञात नहीं था कि बितेनमें इतनी दृढता आई कहाँसे ? अपने आपको उसने निस्सहाय अनुभव किया । किन्तु उसे चन्द्रलेखाकी चिन्ता तो करना ही है । यदि वह उसका विवाह करके भलीभाँति जमा देनेसे पहले ही कल मर गया, तो उस लड़कीका क्या होगा ?

कालूने अपना निश्चय कर लिया । वह लेखाको सब बातें खोलकर समझा देगा और उसे प्रेरणा देगा । और कोई मार्ग तो है नहीं ।

ब्यालूके पश्चात् जब लेखा हाथमें पुस्तक लिये छज्जेपर आई तब वह सीधा अपने विषयपर आया ।

"लेखा, मैं तुझसे एक बात कहना चाहता हूँ । ध्यानसे सुन । एक कुँवारी कन्याको बहुधा ऐसे मनुष्योंके साथ दिखाई नहीं देना चाहिए

जो उसके कोई सगे सम्बन्धी न हों।"

लेखा पिताकी ओर आँखें फाड़कर देखने लगी। "कौन गैर-सम्बन्धी?"

काल्लू ठिठक गया।

"मैं तो तेरे ही भलेके लिए कहता हूँ। तू समझती है न, लेखा?"

"किन्तु आपका मतलब क्या है?"

"सड़कोंपर वितेनके साथ फिरना ठीक नहीं!"

"क्यों, बाबा?" लेखा विस्मयसे उसकी ओर देखने लगी।

"गन्दी बातें हवामें उड़ती हैं।"

लेखाके मुखकी मुद्रा तुरन्त बदली। उसमें कठोरता आ गई।

"गन्दी बातें?"

"इसमें आश्चर्य क्या है?"

लेखा फिर कुछ देर चुप रही।

"इसकी परवाह किसे है?"

"चन्द्रलेखा!"

काल्लूने लेखाके मुखकी कड़ी सीधी रेखा देखी और समझ गया कि उसका क्या अर्थ है। कभी कभी उसमें ऐसा भाव आ जाता था—बहुत थोड़े बार—जब विवेक उसका साथ छोड़ देता था और वह हठीली, विचार-शून्य, वज्र-सी कठोर बन जाती थी। उसकी माँका भी यही स्वभाव था, काल्लूको याद आया।

"इस सुनहले पिंजड़ेमें मैंने बहुत रह लिया। आप तो इससे सन्तुष्ट हैं। किन्तु मैं और कहाँ तक इसमें पड़ी रहूँ?"

"सुनहला पिंजड़ा? क्या तू उसका अर्थ भूल गई? तू भूल कैसे सकती है?"

लेखाने अपना सिर हिलाया और बोली, "देशभक्त मनुष्य अपने देशके शासकोंकी आलोचना करता है। किन्तु ज्यों ही उसके हाथमें अधिकार आता है वह भी उन शासकोंका साथ देने लगता है।

यह साधारण कहानी है—संसार भरमें सब कहीं।"

"ये बातें तुझे बितेनने सिखाई हैं ?" कालूके स्वरमें तीक्ष्ण धार थी। "वह अभी युवक है और भावुक भी। उसे मेरी और तेरी परिस्थितिका पूरा ज्ञान नहीं है।"

"मेरा उसपर भरोसा है।"

बस यहाँतक ही। कालू लेखाको समझता था। उसे उसमेंके विरोधीका चित्र दिखाई पड़ गया। उसकी इच्छाका मेरी इच्छासे सामना है। विषय बड़ा मार्मिक है। उसे सख्तीसे काम लेना पड़ेगा।

"तू बहुत जल्दी भूल गई, मनुष्य कितना पशु हो सकता है। उस रात···वह घोर संकट···"

लेखाके मुखपर कालिख आ गई। उसकी वह कठोर मुद्रा लुप्त हो गई। वह अकथनीय वेदनासे आँखें फाड़कर रह गई। उसके ओंठ काँपने लगे। वह उठकर खड़ी हुई और वहाँसे भाग गई।

कालू बैठा रहा। उसे अपने आपपर घृणा हो रही थी। उसने उस रात्रिके संबंधमें उसके सम्मुख कभी एक शब्द भी अपने मुखसे नहीं निकाला था—इस क्षणसे पूर्व किसी समय भी नहीं।

"भगवान्" उसने कराहनेके स्वरमें कहा। शान्ति जीवनभर उसके भाग्यमें नहीं बदी। एकके पश्चात् दूसरी विपत्तिसे उसे चैन नहीं मिल पाता।

लेखाको बितेनपर भरोसा है। उसपर भला कौन भरोसा नहीं करेगा ? किन्तु यहाँ केवल भरोसेका ही तो सीधा-सादा प्रश्न नहीं है!

फिर उसके मनमें विचार आया। हो सकता है कि लेखाका मतलब उसके शब्दोंसे कुछ और अधिक गहरा हो।

उसे स्मरण आया। किस प्रकार लेखा शामको छज्जेपर खड़ी होकर उसके कामपरसे लौट आनेकी बाट जोहती रहती थी। या वह रेडिओ सुनने बैठ जाती, किन्तु फिर भी बेचैन रहती। द्वारपर खटका हुआ कि वह तुरन्त कूदकर खड़ी हो जाती। उसकी उपस्थितिमें उसका

मुख कितना चमकीला हो उठता और वह कितनी खुशीसे हँसती ! वह कितनी सावधानीसे रसोई-घरमें स्वयं उसका भोजन सजाती ! उसे अकस्मात् अपने कपड़ोंमें रुचि उत्पन्न हो उठी थी। वह गलेमें एक सोने-की माला और कानोंमें लटकन भी पहनने लगी थी। उसका भाल सिंदूर-से कितना सुन्दर दिखाई पड़ता था !

उसने यह सब चलती दृष्टिसे देखा तो था, किन्तु उसकी सार्थकता-पर इतना ध्यान नहीं दिया था।

यही बात है, कालूने अपने आप समर्थनमें सिर हिलाया।

कल्पना करो, उसने वितेनके साथ विवाह कर लिया। तब उसकी जाति तो गई, क्योंकि वितेन जनेऊ पहिन नहीं सकता या पहनना नहीं चाहता। तब उसके बापका क्या होगा ? अभी पूरे दो माह भी तो नहीं हुए, जब वह शिवाभिषेकसंबंधी कठिन युद्ध जीतकर निवृत्त हुआ है। जो लोग उस युद्धमें हारे हैं उनके मनमें अब भी कड़ुएपनकी ठेस है। वे बदला लेनेका यह अच्छा अवसर पा जायँगे। वे मन्दिरके स्वामीको उसके ऊँचे आसनसे खींचकर नीचे गिरा डालेंगे, उसकी छातीपर चढ़ बैठेंगे और उसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देंगे।

"जिस मनुष्यने गंगामाताका दूध छीन लिया, उससे तुम और दूसरी आशा ही क्या कर सकते हो ?" वे चिल्लायेंगे, "अरे, हम तो पहलेसे ही उसे उसकी मुखमुद्रासे पहचानते हैं !"

इस प्रकार उसका सब बना-बनाया काम कोरे स्वप्नके समान चौपट हो जायगा।

और फिर चन्द्रलेखाकी भी क्या दशा होगी ? वितेनके पास रखा ही क्या है, जो वह बटा लेगी, सिवाय कंगाली, बदनामी और दुःखके ?

वह उससे अनुरोध करेगा। विनयसे, हाथ जोड़कर वह, उसका बाप, उससे भीख माँगेगा कि वह सारा बना-बनाया काम बिगाड़ न डाले।

एक दिन, जब उसका रोजगार-धंधा ढीला पड़ना आरंभ नहीं हुआ था तब, उसने फुँकनीकी अग्निमें अपनी एक अँगुली जला ली थी। लेखाने

२०

नींद उसे रात भर रुक रुक कर आई। दुखदाई गरमी घनघोर वर्षाके झलेसे धुल कर दूर हो गई थी। खाड़ीसे आनेवाली हवा शोर मचाती हुई सड़कोंको चीर कर चल रही थी। वर्षाके पल्लड़ आ रहे थे। रात्रिके अन्तिम भागमें अच्छी तरह जागता हुआ काल्‌ अपनी पीठके बल लेटा विचारोंमें डूब रहा था।

लेखाका बितेनसे विवाह—यही चित्र उसके मनमें आकार ग्रहण कर रहा था। कोई बुरा चित्र तो नहीं था वह। बितेन जनेऊ पहन लेगा। बस, इसीसे तो आकाश पातालका भेद पड़ जायगा।

सच्चे प्रेमने जादू कर दिखाया। उसने अन्तमें उस हठी युवकको विवेकसे काम लेनेके लिए विवश किया। बितेनके सामने दो मार्ग थे। या तो वह कुछ कड़ी शर्तोंके साथ लेखासे विवाह कर ले, या उसका विचार छोड़ दे और उसका किसी अन्यके साथ विवाह होता देखे।

बितेनको चिन्ता ही क्या थी? पुराने आचार नियमोंका तो उसके मनपर कोई बन्धन था नहीं। भूमि उसके सम्मुख साफ थी। उसे केवल उसपर पैर जमाकर खड़े होना भर था। उसके लिए जनेऊ पहनना या सिरपर टोपी लगाना एक-सा ही सरल था। उसे डर ही किस बातका?

काल्‌ने भविष्य सोच लिया था। लेखाको उतना अच्छा जीवन तो नहीं मिल पायगा जितनेकी उसने योजना बनाई थी और जो उसे सहज ही इच्छामात्रसे मिल सकता था। तथापि बितेनके साथ कुछ बुरा भी नहीं रहेगा। वह मन्दिर तो था ही।

"तुम केवल उन जातिके घमण्डियोंको ही नहीं छलते, किन्तु अपने हाड़ मांसके सगे सम्बन्धियोंको भी धोखा देते हो।" यह एक व्यथा थी। किन्तु उस विषयमें कुछ न कुछ तो किया ही जा सकता है। यह विचार

घोषित किया जा सकता है कि इस मन्दिरमें गरीबोंको बिना किसी प्रकारकी कोई चढ़ोतरीके पुण्य मिलेगा। केवल धनी लोगोंको ही दक्षिणा देना आवश्यक है। लोगोंके हृदयोंमें यह विचार बैठ जाय, इसमें समय लगेगा। किन्तु अन्तमें बात उनकी समझमें आ तो जायगी ही।

क्या वही स्वप्नकी चाल फिर एक बार नहीं चली जा सकती? शिवजी आये। मंगल अधिकारी सो रहे थे। उन्होंने उससे कहा "मैं गरीबों-का ईश्वर हूँ। मुझे उनकी कड़ी कमाईके पैसे नहीं चाहिए। मुझे केवल उनके हृदयकी भक्तिके पुष्पोंसे प्रेम है।" यह तो निश्चयतः अच्छी तरह चल जायगी।

बितेन मन्दिरसे बहुत लाभ उठा सकता है। कालूने उसकी आय बढ़ानेका एक उपाय सोचा था। वह किसी उत्सवके सप्ताहमें मन्दिरकी खुली भूमिपर एक वार्षिक मेला भरवायेगा। थोड़ी-थोड़ी भूमि प्रत्येक स्टालके लिए भाड़ेसे दी जायगी। दस बारह पंक्तियोंमें कोई डेढ़ सौ स्टाल बनाये जा सकते हैं। पच्चीस रुपया प्रति दुकान तो कोई मँहगा नहीं होगा? व्यापारी अवश्य आकर्षित होंगे। एक सप्ताह भरमें कमसे-कम दस हजार दर्शक तो अवश्य आयेंगे। वे सभी मन्दिरमें कुछ-न-कुछ दान-दक्षिणा चढ़ावेंगे ही। इस अधिक आयमें मन्दिरका कोई हिस्सा नहीं रहना चाहिए। कालू अब भी पंचोंके सम्मुख कुछ सहमता था। किन्तु बितेन तो सीधे उनकी आँखोंसे आँखें मिला सकेगा और उनसे दृढ़तापूर्वक बातें कर सकेगा। "यह तो हमारी कल्पना है। तुम्हें हमारी गाय दुहनेका कोई अधिकार नहीं।"

किन्तु दूसरे ही क्षण वह इतनी स्पष्ट बातचीतकी चतुराईमें सन्देह करने लगा। पंचोंको प्रसन्न रखनेमें ही भलाई है, उन्हें चिढ़ा देनेमें नहीं। जहाँ कड़ाईकी बातचीत असफल हो जाती है, वहाँ कुशलतासे काम अच्छा बन जाता है। और फिर उनका हितचिन्तक मोतीचन्द भी तो है!

यह सच है, किन्तु गये सप्ताह मोतीचन्दने भी तो लेखाके विवाहकी

बातको तुरन्त टाल दिया था। उसका स्वर भी विलक्षण था।

"किसका साहस है जो उससे विवाह करे?"

काल्लू साँस रोककर रह गया था। मोतीचन्दका क्या मतलब हो सकता है?

"अरे! कौन उससे विवाह करनेके योग्य है!" मोतीचन्दने समझाया था।

काल्लूको फिर समाधान हो गया।

"विवाहके कुछ अच्छे-अच्छे प्रस्ताव आये हैं। यदि आप उन पक्षवालोंसे मिलना चाहें तो······" उचित तो यही है कि अपने हितैषीको बता दिया जाय कि अपनी हण्डीमें क्या पक रहा है।

"उतावली मत कीजिए। मुझे ऐसा लगता है कि चन्द्रलेखाका भाग्य चमकनेवाला है।"

"भाग्य चमकनेवाला है?"

किन्तु अब मोतीचन्दने छिपाकर बात की, "मुझे ऐसा लगता है। बस, इतना ही। उसका समय आने दो।" और फिर कुछ खिलखिलाते हुए उसने कहा "उसके विवाहकी तुम बिलकुल चिन्ता मत करो। मेरी दृष्टिमें एक वर है।"

"वह कौन-सा है?"

"अभी मैं तुम्हें बतला नहीं सकता। सब कुछ अपने समयपर होगा।"

मोतीचन्द काल्लूकी समस्याको अवश्य ही समझ जायगा और उसके निर्णयको पसन्द करेगा। मुख्य बात तो कन्याके सुखकी ही है। उसे सच्चा प्रेम है···

और चूँकि सच्चा प्रेम बितेनको भी है, इसलिए वह भी अपनी उग्र भावनाओंको दबा लेगा और उसकी लोहे जैसी कठोर शर्तोंको झुककर स्वीकार करेगा।

तो अब बितेनसे बातचीत कर ली जाय। जब उससे बात तय हो जाय तभी बेटीको कहना ठीक होगा।

"चन्द्रलेखा ! पंचांगसे लग्नका मंगल-दिवस खोजा जा रहा है।"

लेखा चकित होकर, घबराकर उसकी ओर देखने लगेगी।

"मैंने तेरे लिए वर पसन्द कर लिया।"

और तब उसका मुख कैसा दिखेगा !

मैं उसके कौतुकको बढ़ने दूँगा, किन्तु बहुत देरतक नहीं।

"निश्चय ही वितेन वर अच्छा रहेगा।"

उसके यह कह देनेके पश्चात् उसका मुँह !

कालूके आँखें बन्द करने, खुशीसे खेल खिलाने और उथल-पुथल होनेसे उसके पलंगके पेंच चर्रा उठे।

उस रोज दिनभर अपना दैनिक काम करने और आराम करते भी कालूको अपने इस निर्णयका मीठा स्वाद आता रहा और उसका निश्चय बढ़ता गया। जब उसने अपनी बेटीको रसोईघरमें देखा तब तो उसके मुँहमें मिश्री-सी घुलने लगी। लेखा चुपचाप एक चटाईपर हाथपर हाथ रखे बैठी थी। उसका मुँह नीचेको झुका था और आँखें अपनी एक चूड़ीपर या उसके नीचेके एक काले धब्बेपर जमी हुई थीं। वह कोई सोना नहीं पहने थी, कोई आभूषण नहीं, सिवाय उन सीधी-सादी लाल चूड़ियोंके जो उसकी माँके हाथोंकी थीं।

लड़कीकी बाढ़ भी विलक्षण होती है। और फिर उसके प्रेमकी पीड़ा ! कालूकी स्मृति पीछेकी ओर उन दिनोंतक दौड़ गई जब लेखाकी माँ थी, जब उनका विवाह हुआ ही था। वह सोलह वर्षकी थी और वह उससे दस वर्ष जेठा। उसे उसके सौन्दर्यका गर्व था और इस बातको भी वह धन्य समझता था कि स्वयं उसकी पत्नीको अपने रूपका कोई भान नहीं था। वह कमारकी बहूके सैकड़ों काम-काज अपने हाथों करती और बहुधा उसके ओंटोंपर एक मुस्कुराहट आ जाती, वह मधुर मुस्कुराहट, जो उसकी अपनी ही थी। उस मुस्कुराहटमें उसका मुँह कुछ थोड़ा-सा खुल जाता और कोने नीचेको ढल जाते।

एक दिन उसपर एक सनक सवार हुई। नगरमें जत्रा थी—एक

लोक-नाट्य-मंडली जो एक स्थानसे दूसरे स्थानको देश भरमें घूमती फिरती थी। उस रात्रिको उनकी लीला होने वाली थी। वह स्कूलके पास खुले मैदानमें रातके साढ़े-नौ बजेसे आरंभ होकर रात भर, सवेरा होनेतक, चलनेवाली थी। अपनी सनकमें कालूने अपनी पत्नीसे उस संबधमें एक शब्द भी नहीं कहा। वह सूर्य डूबते ही चुपचाप घरसे खिसक गया। उसने एक पाकशालामें अठन्नीकी पूड़ियाँ और शाक लेकर खाई और अपने तीन हँसते-खेलते मित्रोंके साथ चमारोंकी झोपड़ियोंके पास एक नीचे छप्परकी ताड़ीकी दुकानपर बैठकर ताड़ी पी। जब खेल आरंभ हो गया तब वे लीलामें पहुँचे। नशा आने लगा था। मैदानमें गैसकी चलती-फिरती लालटैनोंका उजेला था। मेलेके समान खूब भीड़ थी। लोग मंडल बाँधकर बैठे थे, केवल लीलावालोंको आने जानेके लिए कुछ रास्ता छूटा था। मंडलके बीचमें तख्तोंका एक मंच-सा बना लिया गया था, जिसपर लीला हो रही थी।

लीलाका कथानक सुपरिचित था—वही युगों पुरानी राधा-कृष्णकी कहानी। कृष्णकी मोहन बाँसुरीको सुनकर उनपर राधिका कैसी मोहित हुई, उसके हृदयमें कैसा प्रेमका तीर लगा! लीला करनेवाले कुशल थे। उनके शब्दों, हाव-भावों और गीतोंका दर्शकोंपर खूब प्रभाव पड़ा। वे आँखें फाड़-फाड़कर देखते, कान लगाकर सुनते और चुपचाप अपनी गीली आँखोंको पोंछ लेते।

दिनकी पौ फूटनेपर कालू घरको लौटा। उसके मनपर अपराधका बोझा था। किन्तु उसको छिपानेके लिए उसे अकड़ और ऐंठकी आवश्यकता पड़ी। मैं पुरुष हूँ। सफाई देनेकी मुझे क्या जरूरत! मैं पुरुष होकर अपनी स्त्रीके आँचलमें चाबियोंके गुच्छे जैसा बँधा तो नहीं रह सकता! मुझे मनचाहा करनेकी छूट है!

घरका द्वार खुला पड़ा था और वह द्वारके पास ही माटी की छपी भूमिपर सुस्त बैठी थी। उसकी आँखें सूज आई थीं और मुँहपर आँसुओंके दाग थे। वह दुःखकी मूर्ति जैसी दिखाई पड़ रही थी। कालूके हृदय-

में पीड़ा हो उठी।

उसे देखते ही पत्नीके शरीरमें प्राण लौट आये, वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फाड़े अपने आप देखने लगी। वह उठी और अपना मुँह उसके पैरोंपर रखकर रोने लगी।

कुछ पश्चात् उसने धीरेसे बतलाया कि वह रात उसने कैसे बिताई। वह रातभर उसकी राह देखते बैठी रही। उसे नाना प्रकारकी भयंकर कल्पनायें उठती रहीं।

"तुम मुझे छोड़कर कहीं चले गये''तुम मोटरके चक्कोंके नीचे दब गये''तुम्हारी मृ''"

भय उसकी आँखोंपर इतना छा गया कि वे आँसुओंसे धुली आँखें सफेद पड़ गईं; तारोंकी काली भी नहीं रही।

वह जोरसे हँसने लगा था।

"मैं मर ही जाता तो क्या था?"

उसका मुँह काला पड़ गया, मानों उतने आवेगको वह अपनेमें भर ही नहीं पाता था। उसे खाली करके कुछ देरतक रीता रखनेकी आवश्यकता थी। वह सन्न होकर बैठी रही। उसकी दृष्टि नीचेको भूमिपर थी। अन्ततः उसकी आवाज फूटी। वह ध्यान-मग्न और तल्लीन होकर बोली—

"प्रतिदिन, संध्याके समय, जब सैकड़ों देवी-देवता आते-जाते हैं, तब मैं यही प्रार्थना करती हूँ: हे भगवान्! मेरे पतिके जीते जी ही मेरी इस देहका अन्त हो जाय! हे स्वर्गभरके देवी-देवता! बस, मैं तुमसे इतना ही वरदान माँगती हूँ।"

उसने ऐसा कहा था। सोलह वर्षकी नई बहू! लड़कही स्त्री!

क्या यह उसकी कल्पनामात्र थी, राधिका-वियोगकी एक प्रतिध्वनि? वही युगों पुरानी कहानी और गीत?

केवल उसके मुँहकी ही बात नहीं। उसके शब्दोंकी भी नहीं। हाँ, कुछ यह भी, और कुछ वह भी, और भी बहुत कुछ, जो देखा-सुना

नहीं जा सकता, किन्तु अनुभव किया जाता है।

मैं भी वहाँकी सोचने लगा ! वह अपने-आप मुस्कुराया। स्कूलके मैदानकी उस राधिकाने अद्भुत गीत गाया था, और वही गीत उसके मनमें अब भी गूँज रहा था। यही बात है ! सब बस कुछ उसीकी करामात है !

तब भी वह अद्भुत विचार उसके मनमें भरा ही रहा। उसके आश्चर्यका उसपर ऐसा प्रभाव था कि वह उसे निकालकर बाहर नहीं कर सका।

उस दिनके पश्चात् कालूका अपनी पत्नीके साथ सम्बन्धका एक नया विकास हुआ। और ऐसा ही हुआ कि उस ऐंठबाज कमारने अपनेको एक स्त्रीके आँचलके छोरमें चाबियोंके गुच्छेके साथ-साथ बँध जाने दिया। इसकी उसे कुछ लज्जा भी नहीं रही।

किन्तु ऐसा बहुत समय नहीं रह पाया। वे सैकड़ों देवी-देवता जो संध्याके समय आते-जाते हैं, उसे बहुत प्यार करने लगे और उन्होंने ही एक दिन उसका भ······।

कालू फिर उस समयकी दूरीसे मुड़कर वापिस आया। उसके हृदयमें उदासी बैठ गई थी।

क्या चन्द्रलेखाको बता दिया जाय ? अभी ? इसी वक्त ?

तो क्या हाँ ?

ठहरना अच्छा है। पहले बितेनसे दो बातें कर लेना ठीक होगा।

कालू बड़े तड़के उठा, जिससे वह पैरेडाइज लॉजमें जाकर बितेनसे मिल ले, उसके कामपर जानेसे पूर्व ही।

"बितेन, मेरी बात पूरा ध्यान देकर सुनो।" उसके पलँगपर बैठते-बैठते ही कालूने कहा।

"हाँ, कहिए।"

"मुझे चन्द्रलेखाके बारेमें बिना नींद रातें बितानी पड़ रही हैं। उसकी माँ नहीं है, और·····"

वितेन भावावेगसे चिल्ला उठा "मैं कैसे सहायता करूँ ?"

"मंगल अधिकारीने उसे इतना दे दिया है जितना कभी उसकी पहुँचके बाहर था। अब उसके पतिका कर्तव्य है कि वह उसे जीवनके सुख दे।"

वितेन आँखें फाड़कर देखने लगा "जीवनके सुख ?"

काळूने सिर हिलाया "हाँ, हाँ। अच्छा-सा घर, बँधी आमदनी, निश्चिन्तता।"

वितेनने अपना सिर नीचा कर लिया।

"उसने बहुत दुःख भोगा है।" काळू कहता गया। "उसने सुखका थपेड़ा खाया। उसके मनमें गड़े हुए इस दुःखको कभी मत उखाड़ना।" काळूके स्वरमें विनय और प्रार्थनाका भाव था। "इसे याद रखना। रखोगे न ? ऐसा करना जिससे वह केवल आगेकी ही बातें सोचे। उज्ज्वल, सूर्यप्रकाश जैसा भविष्य ! वितेन, तुम्हीं उसे जैसी चाहिए वैसी सुखी बना सकते हो।"

"मैं ?" बितेन चौंक उठा।

काळू जोरसे हँस पड़ा।

"मैंने तुम्हारे मनपर लिखी हुई बात पढ़ ली है और उसके मनकी भी। मैं अनुमति देता हूँ। मेरा तुम दोनोंको आशीर्वाद है।"

"आपका मतलब है कि···" युवकका मुख चमक उठा।

"मेरा वही मतलब है।"

"किन्तु आपने कहा"—उसके मुँहसे निकला, "जीवनके सुख !"

"अरे बेटा ! घर, पैसा, निश्चिन्तता—यही तो। तुम यह सब उसे दे सकते हो। डरते क्यों हो ? वह मन्दिर खड़ा है। वह तुम्हारा ही तो जादू है, मेरे बेटा ! तुमने ही तो मुझे इस व्यापारमें लगा दिया। यह सच है कि जिन बातोंके पीछे लोग पागल होकर पड़ते हैं, उनमें तुम्हें कोई रुचि नहीं है। किन्तु तुम्हें चन्द्रलेखाकी भी तो सोचना है। तुम्हें अपने आगे आनेवाले बाल-बच्चोंका भी ध्यान रखना है। जीवनमें, कभी-कभी, कोई-

कोई बड़ा समझौता भी तो करना पड़ता है।"

बितेनके मुखका रंग उड़ गया।

"मैं उस मन्दिरसे अपना कोई संबंध नहीं रख सकता।" उसने फिर अपना सिर झुका लिया। "मैं पहले भी आपको यह बात बतला चुका हूँ।"

"क्या?" काल्रू चिल्लाया। "मैंने जो कुछ तुमसे अभी कहा, उसके पश्चात् भी···"

बितेनने आँखें उठाईं। "और आपने अभी कहा क्या है? यही न, कि वह जादू मेरा ही था?"

"मेरा मतलब है कि···" काल्रू हकलाने लगा। उसने बितेनके स्वरकी अकस्मात् तीव्रता देख ली थी।

"किन्तु तुमने ही तो मेरी उस कल्पनाको यह रूप दिया, बदला लेनेके लिए, जिन लोगोंने हमें तथा हम जैसे अन्य सैकड़ों हजारोंको लातोंसे कुचला है, उनपर बदलेकी चोट करनेके लिए।" बितेनने अपने इन शब्दोंको छुरीकी पैनी धार जैसी मार करनेके लिए चुना। "या हो सकता है कि उस जादूका और कोई प्रयोजन न रहा हो, सिवाय अपना पेट और अपनी थैली भरनेके!"

बितेनको कठोर बनना पड़ा। काल्रूने काफी दिनोंतक अपनेको भ्रममें रखा। अब समय आ गया है कि उसे अपना सच्चा उद्देश्य समझ जाना चाहिए। उस उद्देश्यमें अब कोई लाग-लपेट नहीं रहनी चाहिए, कोई काट-छाँट नहीं होनी चाहिए।

बितेनकी चोट काल्रूके हृदयके अंतरंगमें मार्मिक स्थलपर बैठी। किसी दिन मैं बितेनको बतला दूँगा कि इस जादूको खड़ा करनेसे पूर्व मुझे कैसी-कैसी यातनायें सहना पड़ी थीं। क्या उन्हें सुनकर बितेन अपना निर्णय फेरेगा, कुछ समझदारीसे, कुछ दयालुतासे? किन्तु आज तो बितेनको मेरी बात मानना ही पड़ेगी। यह तो चन्द्रलेखाके भाग्यका प्रश्न है!

इस कारण काल्रूने अपनेको रोका। उसने बड़ी सावधानीसे उस

भूमिपर अपने कदम बढ़ाये।

"मैंने तुम्हारे मनपर लिखी हुई बातको कुछ गलत पढ़ लिया। तुम्हारा मेरी पुत्रीके प्रति कोई सद्भाव नहीं है, क्या यही बात है?"

"मैं मर भले ही जाऊँ, किन्तु कभी उसका लेशमात्र भी बुरा नहीं करूँगा।"

उसके स्वरकी वह भावपूर्णता! काल्कको भरोसा बँधा। इसी भावुकताको अब मैं अपने प्रयोजनका साधन बनाऊँ, इसमें ढिलाई करना ठीक न होगा।

"एक बात तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी। मैं अपनी बेटीको उसीसे व्याहूँगा जो ब्राह्मण हो—सच्चा या झूठा, इसकी मुझे कोई परवाह नहीं।"

"तो क्या आप अपने ही लोगोंको धोखा देते चले चलना चाहते हैं? और इस पापमें मुझे भी भागीदार बनाना चाहते हैं? ऐसी स्थितिमें चन्द्रलेखाका मेरे प्रति क्या आदर भाव होगा?"

काल्क कुछ काँपा।

"किन्तु चन्द्रलेखाने तो अपनेको सब तरहसे ब्राह्मण-कन्या बना लिया है?"

"इससे उसके हृदयका स्पर्श भी नहीं हुआ।"

"अच्छा, अब हम एक दूसरी दृष्टिसे विचार करें।" काल्कने कहा। "तुमने कुछ बचत करके रखी है?"

"बचत? मेरे पास कुछ नहीं है।"

"तुम्हें भविष्यमें अच्छी आमदनीका भरोसा है?"

"मैं जीविका-भरके लिए पर्याप्त कमा लेता हूँ। और यदि मैं नियत समयसे ऊपर काम करूँ तो···"

"चन्द्रलेखाको एक विशेष प्रकारसे रहनेका अभ्यास हो गया है। उसे छोड़नेसे उसका सुख भी छूट जायगा। तुम यह नहीं देखते?" काल्कने चुभता हुआ प्रश्न किया।

बितेनने चुपचाप एक भावपूर्ण दृष्टिसे उसकी ओर देखा और काल्हूने उस दृष्टिको सहन न करके अपना मुँह फेर लिया। उसे प्रतीत हुआ कि उस दृष्टिने उसके भेषको चीर डाला, उसके भीतरके लुहारको गली धातुके समान छू लिया, पी-१४ का भी स्पर्श किया और जादूगरको भी हिला दिया।

"सुख ?" बितेन बोला। उसके मुखपर कुछ घृणाका भाव था। "क्या आप बिलकुल आँखें बन्द किये हैं ?"

"जान पड़ता है तुम मेरी पुत्रीको मुझसे अधिक अच्छा जानने लगे हो !" काल्हूके शब्दोंमें कुछ व्यंग था। किन्तु ज्यों ही वह फिरा त्यों ही उसके मुखपर आशंकाका भाव आ गया था। "जो कुछ भी हो, लेखा अभी इतनी छोटी है कि उसे अपने मनका पूरा-पूरा बोध नहीं।" उसका स्वर काँप रहा था।

"तो यही आपका पूरा उत्तर है ?"

"वह सुखी नहीं है। किन्तु इसका कारण यह है कि उसने उस संकटके दिनोंमें दुःख-ही-दुःख भोगा है। जब एक लड़की······" काल्हू रुका। वह सावधान हुआ। "जब एक लड़की एक बार आगमेंसे निकल चुकी है, तब वह अन्य सब बातोंसे ऊपर सुरक्षा चाहती है।"

"आग अन्य धातुओंको जला डालती है। वह सोनेको नहीं जलाती।"

"क्या तुम सचमुच सोनेकी कदर करते हो, बितेन ?"

"हाँ, किन्तु तभी जब वह आगसे नहीं डरता।"

काल्हूने मुँह बाकर साँस ली। निराशाका प्रवाह क्रोधमें फूट निकला।

"यह विवाद व्यर्थ है।" उसने अपना हाथ जोरसे बिस्तरकी गद्दीपर पटका। "मेरी लड़कीके लिए क्या अच्छा होगा, यह मैं जानता हूँ। छोड़िए अपनी फजूलकी बातें। मैंने अपनी शर्तें आपके सम्मुख रख दी हैं। उन्हें कुछ दिन अपने हाथमें रखिए, ध्यानसे देखिए, समझिए और सोचिए। फिर मुझसे कहिए कि आपका क्या विचार है। बस, मुझे और

कुछ नहीं कहना।"

"यदि आपकी लड़की···" क्रिटेनकी आवाज हिचकिचाई और रुक गई।

काल्लू गुस्से भरी आवाजमें, अपने भयको छिपाता हुआ बोला "मुझे और कुछ भी नहीं कहना है।"

वह मुड़ा और वहाँसे चल दिया।

२१

"आपको ये पसन्द नहीं हैं ?" वह दीवालमें पीछेकी ओर झुक गई और उसने अपना सिर बाँसकी टेबिलपर रखे हुए फलोंकी ओर झटके-से हिलाया। "लीची ?"

किन्तु उसका ध्यान कहीं और था और उसके मुखपर कुछ दूरकी ध्वनि सुननेका तनाव था। एक क्षणमें लेखा समझ गई कि बात क्या है। सड़कपरसे रोने और चिल्लानेकी सम्मिलित आवाज आ रही थी। पुरुषों और स्त्रियोंके कराहनेकी ध्वनि पास आती गई और जोर-जोरसे सुनाई देने लगी। उस रोने और चिल्लानेकी मिश्रित ध्वनिमें एक विलक्षण चीत्कार बार-बार सुनाई दे रहा था। वह किसी ऐसे व्यक्तिका प्रतीत होता था जो जीवनकी आशा छोड़ चुका हो।

"अरे, इस प्राणघातसे हमें बचा लो···अरे बचा लो हमें इस प्राणघात से···बचा लो···"

वह रोना और चीत्कार एक क्षणमें धीमा पड़ गया और फिर शान्ति हो गई।

"आज तड़केसे जानेवाली यह पाँचवी लॉरी है, जो इस प्रकार लदकर जा रही है। जब मैंने पहली बार यह चीत्कार सुना था और मैं दौड़कर छज्जेपर गई थी, तब तक अँधेरा ही था···" लेखा काँप उठी।

"यह गली पूर्वकी ओर जानेवाली सड़कसे मिली है। अब तुम दिन भर, कई दिनोंतक, इसी प्रकारकी भरी लॉरियाँ देखोगी। हमारे क्रियाशील शासकोंको नगरसे इस भुखमरीको निकाल फेंकनेके लिए एक सप्ताह भर-का समय तो दो।" बितेन घृणासे मुस्कुराया। "एक सप्ताहमें नगर फिर-से अपनी उसी चमकदार शान्ति और समृद्धिकी छटा प्राप्त कर लेगा ऐसा आश्वासन मिला है।"

"तो क्या यह काम सेनाको सौंप दिया गया है ?"

"बिलकुल ऐसी बात नहीं है। नगरके अधिकारियोंने सेनाकी लारियाँ और ट्रकें उधार ली हैं और जिन्हें वे निकाल बाहर करनेवाले दल कहते हैं उन्हें नियुक्त कर दिया है। उनकी ओरसे हमारी माँगोंका यही उत्तर है। भुखमरीको नगरसे निकालकर पुनः गाँव खेड़ोंमें जा फेंको। वहाँ वह आँखोंसे ओझल रहेगी।"

"उन गरीबोंका विश्वास है कि वे नदीमें फेंककर डुबा दिये जाने वाले हैं, ऐसा हमारी बाम्हनी बता रही थी। वे छटपटाते और भाग बचनेका प्रयत्न करते हैं। इसलिए उनका पीछा करना पड़ता है। बाम्हनी मसाला लेने दूकानपर गई थी, तब उसने अपनी आँखों यह सब देखा था।" लेखाके मुखपर शोक छा गया।

"क्या वे उन्हें अपने-अपने गाँव नहीं पहुँचा रहे हैं ?" लेखाने पूछा।

बितेनने अपना सिर हिलाया "पहुँचा तो रहे हैं, क्योंकि मजदूर न मिलनेसे वहाँके सब खेत बिना जोते-बोए पड़े हैं। किन्तु इनमेंसे अधिकांश तो अपने निकलनेसे पूर्व ही अपनी जमीनें बेच चुके हैं। अब वे केवल बिना अपनी भूमिके मजदूरोंकी संख्यामें ही वृद्धि करेंगे।" उसका स्वर बदला। "ठीक ही तो फल मिल रहा है, अपनी पैतृक भूमिको बेच खानेका।"

"किन्तु वे भूमिको खाकर तो अपना पेट नहीं भर सकते थे ?" लेखाने कहा।

बितेन फिर हँसा। " परन्तु वे उस भूमिपर मर तो सकते थे, नहीं क्या ? वापिस जाओ—केवल जो खेत तुम जोतोगे वे तुम्हारे अपने नहीं होंगे। किन्तु हिम्मत मत हारो, किसान भाइयो ! तुम्हें मजदूरी मिलेगी, कारखानेके कुलियों जैसी। तुम्हें एक नई स्वतन्त्रता मिलेगी, एक स्थानसे दूसरे स्थानको जानेकी, एक गाँवसे दूसरे गाँवमें जा बसनेकी। समझते हो न यह लाभ ? तुम सारा देश देखोगे, अपने सोनेके बंगालमें चारों

ओर चलोगे-फिरोगे और जहाँ तुम्हें अच्छा लगे वहाँ रह सकोगे।"

चन्द्रलेखा चुपचाप नीची दृष्टिसे भूमिकी ओर देखती रही।

"तुम्हें भी तो भूखकी चोटें सहनी पड़ी थीं, लेखा, नहीं क्या?" वितेनके स्वरमें स्नेह था।

"हूँ !!!" कुछ भूले मनसे उसने कहा।

"क्या वहाँ बुरी दशा न थी, जब तुम्हारे पिता झरनासे चले आये?"

"बहुत बुरी। क्या ये भूखकी फेरियाँ अब भी चालू रहेंगी?" लेखाने गम्भीर चिन्ताके साथ पूछा।

"अवश्य।"

"किन्तु ये बे-घर-द्वारके लोग तो कलकत्तेमें रहेंगे नहीं?"

"तथापि उनकी समस्या तो रहेगी ही!" हमारा नारा सम्भवतः बदल जायगा। यह आन्दोलन अब सुसंघटित होता जाता है। हमारे आगे बहुत काम पड़ा है। तुम्हें हमारी योजनाओंका तब पता चलेगा जब तुम भी किसी समितिमें सम्मिलित हो जाओगी।"

"मैं?" लेखा आँखें फाड़कर देखने लगी।

"जो काम हमारे सामने पड़ा हुआ है, उसे तुम्हें स्पष्ट समझ लेना पड़ेगा।"

"मैं तो इतना कम जानती हूँ। इतना थोड़ा समझती हूँ।"

विचारमग्न रहते हुए ही वह उसके मुखकी ओर देखता रहा। लेखाके मुखपर भी उसके भोलेपनकी एक विशेष शोभा छाई हुई थी। अकस्मात् वितेनका हृदय उछलने लगा।

"मैं जो हूँ नहीं, वह कैसे बन सकती हूँ?" लेखाने पूछा।

"तुम जो हो वही बनी रहो, न कुछ अधिक, न कुछ कम।"

"मैं कुछ समझती भी तो नहीं।"

"लेखा, तुम्हारे पिता मेरे पास आये और बोले..."

"हाँ।"

वितेन हिचकिचाया। उसके मुखपर हैरानी छा गई।

"बेचारे बाबा !" लेखा बोली, "उनके विषयमें तुम कोई गलत धारणा मत बना लेना। उनका सच्चा हृदय तो गरीबों और दुखियोंके साथ ही है। क्या उन्होंने दुख भोगा नहीं?...हो सकता है उन्होंने आपसे कहा हो कि उन्हें किस प्रकार एक रुपयाके लिए सड़कोंपरकी लाशोंको उठाना पड़ा था और किस प्रकार एक बालकके हाथ-पाँव, उनके उसे उठाते समय भी गरम थे।"

"लेखा, उन्होंने मुझसे तुम्हारे विषयमें बातचीत की और उन्होंने मुझे बतलाया कि तुम्हें भी दुख उठाना पड़ा, भयंकर क्लेश। उन्होंने मुझे इसके लिए भी सावधान किया कि मैं तुम्हारे मनमें उन बातोंको कभी जाग्रत न करूँ। किन्तु वही तो मैं करना चाहता हूँ, लेखा, भले ही तुम्हें उससे दुख हो। क्या तुम मुझे बताओगी?"

लेखा चौंक उठी। वह उसकी ओर देखने लगी। और देखती रही घूर-घूरकर, कुछ देरतक।

"जो क्लेश मैंने भोगा है?"

"जो कुछ तुमने भोगा हो, वह सब मुझे बतला दो। प्रत्येक बात। मैं तुम्हें गत वर्षभरकी तुम्हारी प्रत्येक परिस्थिति देख लेना चाहता हूँ।"

कुछ देर सन्नाटा रहा। फिर वह बोली। "क्लेश?" उसकी आवाज रुक गई। और उसके मुखपर विषाद छा गया। उसने फिर अपना सिर नीचेको झुका लिया और ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके आँसू निकलनेवाले ही हैं।

"मैं जानना चाहता हूँ, अनुभव करना चाहता हूँ, जो कुछ तुमने भुगता हो, जिससे कि......" वह रुक गया?

वह उसके मुखकी ओर देखने लगा, सन्नमुग्ध-सा।

और वह उस मुखमें, उन आँसुओंभरी चमकती आँखोंमें अपनेको खो बैठा। वह उठा और अपने हाथ उसके कन्धोंपर रखकर खड़ा हो गया। उसने उसके मुखको ऊपर उठाया और साथ ही साथ उसे अपनी बाँहोंमें खींच लिया। वह उठकर खड़ी हो गई, उसने उसे अपनी बाँहोंमें

भर लिया। उसकी साँस जल्दी-जल्दी चलने लगी।

"चन्द्रलेखा !" उसकी आवाजमें कंप था। उसने उसका और भी तीव्र आलिंगन किया।

कुछ क्षणोंके लिए वह बिलकुल शून्य और निश्चेष्ट हो गई। भाव और विचार दोनों ही स्तब्ध हो गये, जैसे वे बरफकी चट्टानके नीचे दब गये हों। फिर वे अकस्मात् फूट निकले और मनके बाहर एक कुटिल लहर-जैसे कंठतक आ गये।

"ना···ना···"

यह ध्वनि उसके अंतरंगको चीरकर निकली और साथ ही उसने उसे अपने हाथोंसे ढकेलकर अलग कर दिया।

वह उसके रोपको देखकर दंग रह गया। उसने देखा कि उसकी छाती धड़धड़ा रही है और मुखपर भय छा गया है।

"चन्द्रलेखा !" वह फिर चिल्लाया। वह उससे दूर भाग गई और अपने सोनेके कमरेमें घुसकर उसने भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया।

बितेन खड़ा-खड़ा देखता रह गया। वह चकित था। उसके मुख-परका भय वह अब भी देख रहा था। उस भयकी मुद्राने उसके स्वप्नको एक सघन अन्धकारसे आच्छादित कर दिया। वह वही विषादकी छाया थी, जिसे उसने एक बार पहले भी पूर्णिमाके मुखपर देखी थी। वह उसके मनपर तीव्रतासे अभीतक छाई हुई थी। 'एक दिन ऐसा आवेगा जब मैं और अधिक उसे सहन न कर सकूँगी, और ; तब मैं उससे अपने प्राण छुटाऊँगी।'

"एक ग्लास छाँछ, बाबूजी ?" रसोइन बाम्हनीकी आवाजने उसके ध्यानको भंग किया।

बितेनने सिर हिलाकर मना कर दिया और वह वहाँसे चल पड़ा। सीढ़ियोंपर पहुँचकर वह ठहर गया, कुछ हिचकिचाया और इधर-उधर देखने लगा। बाम्हनी पास ही खड़ी थी और विस्मयसे देख रही थी। बितेन घूमकर धीरे-धीरे सीढ़ियोंपरसे उतर गया।

× × ×

जब लेखाके हिस्टीरियाका यह दौर समाप्त हुआ, तब उसने अपना वह अनुभव अपनी स्मृतिमें तबतक दुहराया, जब तक कि खुमेर पुनः उसके गलेमें न भर आई। उसे उस खुमेरका आदिस्रोत ज्ञात था। किन्तु फिर भी उसे अपने मनमें स्पष्ट करनेके लिए वह जोर लगाकर क्रमसे एक-एक दृश्यकी पुनरावृत्ति करने लगी। इसमें उसने किसी भी भीषणता या क्लेशकारी छोटी-मोटी बातोंसे भी बचनेका प्रयत्न नहीं किया।

...वह पापिनी द्वार बन्द करके चली गई और उस मनुष्यको मेरे ही कमरेमें छोड़ गई। वह मनुष्य मेरी ओर बढ़ा और घूर-घूरकर मुझे देखने लगा। मैं घबराई, मेरी छाती धड़कने लगी और मैं दीवालसे जा लगी। वह मेरी ओर बढ़ता ही चला आया। मेरी आँखें मिच गईं और मैं भय-से काँपने लगी। "मैं समझ गया" उसने धीरेसे कहा और घूमकर उसने स्विच दबाकर प्रकाश बन्द कर दिया। "अब कोई भय नहीं है" उसने फुसफुसाते हुए कहा। उसकी साँस मेरे मुखपर आ लगी। फिर वह साड़ी खींचकर मुझे उघाड़ी करने लगा। मैंने उसे पीछेको ढकेल दिया, कुछ चिल्लाते हुए "ना...ना...।" बस, मेरे मुँहसे इतना ही निकल सका, क्योंकि मेरा गला रुँध रहा था। "ना...ना...।" उसने फिर कुछ कहा जो मैं सुन नहीं पाई। उसके हाथ मेरी देहपर इधर उधर फिरे। और साड़ीके भीतर जा पहुँचे। एक हाथसे मेरी छातीका स्पर्श भी हुआ। मेरे हृदयको जो धक्का लगा, उससे मुझमें अग्निकी ज्वालाके समान अपूर्व शक्ति जाग उठी। मैंने जोरसे उसके हाथोंको हटा दिया और मैं छलाँग मारकर दरवाजेपर पहुँच गई।

"दरवाजेपर तो ताला पड़ा है।" उसने धीरेसे ठंडे स्वरमें कहा।

मैं दरवाजेसे झुककर खड़ी हो गई। उसने सिगरेट सुलगाई जिसके उजालेमें मैंने देखा कि वह पलंगपर बैठ गया है। वह बोलने लगा। उसकी पूरी बात मेरी समझमें नहीं आई। किन्तु एक अच्छे घर और बगीचेकी बात कह रहा था, जो वह मुझे देना चाहता था, तथा जेवर, कपड़े और-और भी बहुत कुछ।

"समझदारीसे काम लो" उसने धीमे स्वरमें कहा, "रानी बनकर रहो।"

मैं जहाँ थी वहीं खड़ी रही। मुझे बहुत सुस्ती आ रही थी, मेरी शक्ति क्षीण हो रही थी और पीठ कोड़ेकी मारसे दुख रही थी। मैं चाहती थी सो जाऊँ या मर जाऊँ। मेरे घुटने काँप रहे थे।

उस मनुष्यकी तेज और गहरी साँस मुझे फिर जलाने लगी। उसने मुझे पागल जैसे पकड़ लिया और इतने जोरसे दबाया कि मुझे साँस लेना कठिन हो गया। उसका मुख मेरे मुँहपर आ लगा, मेरी आँखोंपर, गालोंपर, गलेपर और ओंठोंपर। मैं अशक्त थी, असहाय थी। मेरा दम घुट रहा था। मैं रो रही थी। उससे अपना मुँह छुड़ा नहीं पा रही थी।

"ना...ना..." मैं अन्तमें चिल्ला उठी। मैं पीछेको हटी। मैंने उसके मुँहपर थूक दिया, एक बार नहीं अनेक बार, पागल-सी होकर। थू! थू! थू!

फिर मेरे पेटमें उमेड़ उठी और मुझे बमन हो आया। मेरा मुँह खट्टे स्वादसे भर गया।

"क्या यह भी हो सकता है कि उस रातके चिह्न मेरे शरीरपर, अब भी शेष हों और दिखाई दे रहे हों?" वह इसका निश्चय करनेके लिए शीशेके सामने जा खड़ी हुई।

किन्तु वैसा कोई चिह्न उसे दिखाई नहीं पड़ा। मुखमें कोई परिवर्तन नहीं था। मुख जैसा-कुछ सबका होता है वैसा ही था।

लेखा अपनी दृष्टि शीशेपर जमाये रही और उसने धीरे-धीरे अपनी जाकेटके बटन खोले। उसकी छाती सुनहली और भरी हुई, उसे सम्मुख प्रत्यक्ष दिखाई दी। एक घंटा भी पूरा नहीं हुआ जब उसने पुरुष-शरीरके कठोर आलिंगनका अनुभव किया था। कहाँ, उसका कोई चिह्न शेष था?

मांसकी शुद्धि बनी हुई थी, केवल मनमें ही विकार उत्पन्न हुआ था। मन विकृत होनेके कारण ही वह अन्य स्त्रियों जैसी नहीं थी। वह

एक विलक्षण स्त्री, बन गई थी।

उन्होंने क्यों सारी बात बिगाड़ दी? उसने तो उन्हें अपने अन्तर्तम हृदयकी पूँजी अर्पण की थी। उसने उनके लिए अपने भीतर एक मन्दिर निर्माण कर लिया था। वे तो सामान्य मनुष्यों जैसे नहीं थे!

"सावधान रहना" बाबाने चेतावनी दी थी। "मेरा उनपर विश्वास है।" मैंने उत्तर दिया था।

"तो तू इतने जल्दी भूल गई कि मनुष्य कितना पशु हो सकता है? उस रात...वह भयंकरता..."

एक क्षणमें, जैसे किसी भूतके वशीभूत होकर, वह उसे उस राततक वापिस ले गया था। उसे अपने मन्दिरका कोई ध्यान न रहा!

लेखाने शीशेसे अपना मुँह फेर लिया और वह बेचैनीसे कमरेमें ओरसे छोरतक टहलने लगी। उसकी खुली जाकेटके पल्ले उसकी छातीपर थपेड़े दे रहे थे।

साहसी लड़की! किन्तु मेरे ऊपर तेरा उत्तरदायित्व है। सुखदरकी वह कोमलता! वे एक जोरके प्रयाससे उन बन्धनोंको तोड़ डालेंगे: आँखोंमें वह युद्धकी भावना। हम साथ ही आगे बढ़ेंगे, तुम और मैं: वह सुखका साथ। एक नये जीवनका निर्माण! तुम जैसी हो, वैसी ही बनी रहो, न कुछ अधिक, न कुछ कम। एक अयोग्य भी तो अपने रूपमें स्थिर रह सकती है। और अपना स्थान रख सकती है।

एक क्षण, एक पलमें ही तो धितेनका रूप-परिवर्तन हो गया था। मुखपर तनाव, आँखोंके गोलकोंमें चमक और हाथोंके स्पर्शमें वही, उस अन्य पुरुषकी सनक। मानो अभीतक वे ढोंग ही बनाये रहे हों। मानो वे अभीतक नाटक ही करते रहे हों। मानो वे अभीतक अपने सत्य रूपमें नहीं थे, किन्तु झूठी कल्पनाकी मिट्टीसे गढ़े हुए थे।

"तू इतने जल्दी भूल गई कि मनुष्य कितना पशु हो सकता है...!"

उसने जो उसके लिए मन्दिर बना लिया था, वह हवामें उड़ गया, जैसे वह उसकी भ्रान्तिमात्र रहा हो।

और फिर वह दूसरा मन्दिर जहाँ पत्थरका देवता स्थापित था ?

बस, इसी-विचारको लेकर वह खिड़कीके पास खड़ी हो गई। उसकी आँखोंमें एक निश्चय था। मन्दिरपरका वह पीतलका ऊँचा त्रिशूल सूर्यके प्रकाशमें चमक रहा था, जैसे एक जलती हुई मसाल हो। क्या वह अपने भीतरकी उस आकस्मिक भयंकर शून्यताको भर सकती है, जो अब उसे असह्य हो उठी थी ?

देखते-देखते, तल्लीन भावसे, वह मन्दिर उसे एक अद्भुत मेलके साथ, अपनी ओर खींचने लगा। उसका वह सफेद, सूर्यसे प्रकाशित ढेर उसके ऊपर छा रहा था, उसे स्पर्श कर रहा था। यह उस रूप हो रही थी और वह इस रूप हो रहा था। वह स्वयं मन्दिर बन गई थी।

वह मन्त्रमुग्ध-सी बिलकुल निश्चल खड़ी रही। उसने अपना सर्वस्व उस अद्भुत अनुभवपर ही न्योछावर कर दिया था।

वसन्तकी वायुसे उसके केश लहरा-लहराकर, उसके गालोंपर पड़ने लगे। खिड़कीकी चौखटपर उसके हाथ चलायमान हो उठे। 'ऐसा ही हो', उसका हृदय बोल उठा, 'हो अब ऐसा ही।'

उसके हृदयकी वह पुरानी जलन, जो दब गई थी, अब पुनः उसकी आँखोंमें प्रतिविम्बित हो उठी। किन्तु उसके ओंठोंका सम्पुट बँधा हुआ था।

२२

दो सप्ताह हो गए, तब लेखाको एक अनिमंत्रित मित्र मिला ।—घरोंकी छतोंके समूहसे परे सूर्य लाल ज्वालामें डूब रहा था । लेखा अपने सोनेके कमरेकी खिड़कीपर शून्य भावसे खड़ी, बाहरको देख रही थी । उसकी दृष्टि सड़कपरके एक बालकपर पड़ी । उसका पेट बढ़ा हुआ था और वह प्रायः नंगा था, केवल उसकी कमरपर छोटी सी लँगोटी थी । उसके गलेमें तॉबेका तावीज लटक रहा था । वह अपने पैरों लड़खड़ाता हुआ चला जा रहा था । अकस्मात् वह अपने सामने कचरेके ढेरको देखकर रुक गया और भयभीत होकर इधर-उधर देखने लगा । जब उसे कोई दिखाई नहीं दिया, तब उसने आगेको झुककर अपना हाथ उस कचरेमें डाला ।

जब उन गरीबोंको शहरसे निकालकर बाहर किया गया, तब वह बालक उनकी दृष्टिसे कैसे छूट गया ? लेखा कुछ देर उसकी ओर देखती रही । फिर वह उस खिड़कीसे मुड़ी और सीढ़ियोंसे उतरकर, घरके बाहर चली गई । उस बालकको एक आधा खाया हुआ, आम मिल गया था । उसका पीला छिलका सड रहा था । उसने लेखाको अपनी ओर आते देखा और वह निःस्तब्ध खड़ा हो गया । उसने आमको उसी कचरेके ढेरमें डाल दिया और ऑख जमाये देखता रहा । उसका मुँह खुला, किन्तु उससे कोई आवाज नहीं निकली । वह रो, चिल्ला भी नहीं सका, न और किसी प्रकारसे क्षमा-याचना कर पाया ।

लेखाने बहुत धीरे-धीरे उसके सिरपर अपना हाथ फेरा । उसके बाल उलझे और धूलसे भरे हो रहे थे ।

"तेरा क्या नाम है, भैया ?"

बालक पॉच-छः वर्षसे अधिक बडा नहीं था । अभी तक उसकी बोली नहीं फूट रही थी । किन्तु लेखाके प्यारसे उसे सुख हुआ । उसकी ऑखोंमें

आँसू आ गये।

"कोई नाम नहीं" उसने तुतलाते और सिर हिलाते हुए कहा।

"तेरी माँ, बाबा? वे तुझे कैसे बुलाते हैं? माँ, बाबा?"

"कोई बाबा नहीं" उसने फिर अपना सिर हिलाया।

"माँ?"

"माँ! माँको वे मोटर गाड़ीमें ले गये।"

"कौन?"

"सिपाही। वे माँको ले गये।"

लेखा समझ गई। "और तुझे? वे तुझे भी माँके साथ क्यों नहीं ले गये?"

"मैं? मैं लुक गया—उस कचरेके डब्बेमें।"

लेखाने उसकी अँगुली पकड़ी और उसे घरमें ले आई। "तुझे भूख लगी है? खा ले, फिर बातें करेंगे। तुझे मुझसे डर तो नहीं लगता, खोका?"

बालकने लेखाकी ओर विश्वासकी दृष्टिसे देखा।

"माँ मुझे इसी नामसे बुलाती है—खोका। माँ बुलाती है। कोई नाम नहीं।"

वह जमीनपर बैठ गया और चुपचाप खाने लगा। लेखा देखती रही। वह जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कौर खा रहा था, जैसे उसे भय हो कि कोई छीनकर न ले भागे। एक बार वह ठहरा और बोला "माँ मेरे पास आ जायगी?" उसकी आँखें आशंकासे फैल रही थीं।

"माँ तेरे पास आ जायगी।" लेखाने उसे भरोसा दिलाया।

"जल्दी?"

"हाँ, जल्दी।"

लेखा उसे स्नानघरमें ले गई। उसने उसकी हाथ-करघेकी लंगोटी खोलकर अलग कर दी। फिर उसने फव्वारा छोड़ा। बालक पानीकी धीमी झड़ीके नीचे मुँह बाये साँस लेने लगा। उसने ऐसा फव्वारा पहले

कभी नहीं देखा था। लेखाने उसे एक चौकीपर पैर लटकाये बिठलाया और उसे साबुनसे नहलाने लगी। उसने उसकी पूरी देह, साबुनसे खूब मली, जिससे उसकी चमड़ीपरकी सब धूल और दुर्गन्ध धुल जाय। किन्तु उसने इतनी सावधानी रखी कि उसकी करधनीके लाल धागे टूट न जाँय, क्योंकि वह ग्रामके बालककी भयसे रक्षाका चिह्न है।

"हाँ, अब बतला, क्या हुआ?"

बालक घबरा-सा गया। आवेगसे उसका हृदय भर गया था। अभी-तक कभी किसीने उसकी इतनी परवाह नहीं की थी। जब उसे नहानेकी आवश्यकता होती, तब वह उसी तालाबमें जाकर डुबकी लगा आता था, जहाँ गाँव भरके सभी लोग नहाते थे। साबुन उसने एक-दो बार देखी भर थी। वह तब, जब गाँवके जमींदारका दूसरा लड़का वहाँ आता। उस समय उसका आदर करनेके लिए, अन्य सब लोग तालाबमेंसे बाहर आ जाते थे। किन्तु खोकाने कभी साबुन छूकर नहीं देखी थी। उसने यह कभी नहीं जाना था कि साबुन लगानेसे शरीरसे फूल जैसी सुगन्ध आने लगती है। उसकी आँखें उसी अपरिचित स्त्रीपर ही जमी थीं, जिसके हाथोंमें उसकी माँकी कोमलता थी। वह अन्ततः रुकते-रुकते बोला।

"मोटर गाड़ी आई। उन्होंने माँको उठाकर उसमें डाला। माँ चिल्लाई 'खोका, भाग; खोका छिप जा।' मैं भागा। मैं उस कचरेके खाली डब्बेमें छिप गया। मैं हिला डुला नहीं। मैंने साँस भी नहीं ली। वे मुझे नहीं देख पाये। वे चले गये। गाड़ी खूब जोरसे चल पड़ी।"

उसकी माँने सोचा वह अपने खोकाको मृत्युसे बचा रही है। उस कचरेके डब्बेसे निकलकर वह अपनी माँके लिए रोने लगा। उसे इच्छा हुई कि वह उसीके साथ चला जाता तो भला था। जब अँधेरा हो गया तब वह अकेला सड़कके किनारेपर सोनेसे डर रहा था। वह आसपास चलता फिरता रहा। अन्ततः वह एक आदमीके पास पहुँचा जो गर्मीके कारण अपनी जेवरीकी खाट सड़कपर डाले सो रहा था। वह पानकी दुकानमें काम करता था। वह पड़ा-पड़ा राम और उनकी रानी सीताके

गीत गा रहा था।

खोका उसीके पास जा सोया। किन्तु वह मनुष्य उसे देखकर गुस्सेसे चिल्ला उठा। इसलिए खोका वहाँसे उठकर उससे कुछ और दूरीपर शान्तिसे जा सोया। जब उसके पेटमें डर उठता था, तब वह उठकर बैठ जाता और अँधेरेमें ही उस खाटपर सोये हुए मनुष्यको देख लेता था। उस मनुष्यके डुरकनेकी आवाजसे उसे भरोसा होता था। इस तरह वह कई रातों वहींपर सोता रहा। फिर हवामें ओस पड़ने लगी, जिससे उस मनुष्यने बाहर सोना छोड़ दिया। खोका फिर अकेला पड़ गया और उसके पेटमें डर उठने लगा।

"एक बड़े लड़केने मुझसे कहा—'उन्होंने तेरी माँको गंगामें डुबा दिया।' वह लड़का उस पानवालेका भाई है। मैंने कहा, 'नहीं, माँने उनका क्या बिगाड़ा है? माँ फिर मेरे पास आ जायगी। देख लेना।' वह लड़का बड़ा गुस्सा हुआ। उसने मेरे गालपर एक तमाचा लगाया।"

खोकाने अपने गालपर हाथ फेरा, मानों वहाँ अब भी तमाचेकी चोट बनी हुई थी। लेखाको प्रतीत हुआ उसकी आँखोंमें आँसू भरे आ रहे हैं। उसके हाथ और अधिक तेजीसे चलने लगे। उसने उस छोटे-से बालकके हड्डियों-भरे अंगोंको, बार-बार मल-मलकर धोया और उसके रूखे उलझे बालोंको, अपनी हथेलियोंके बीच मल-मलकर साफ किया। फिर उसने खोकाको पुनः एक बार फव्वारेके नीचे खड़ा किया।

अब कपड़ोंकी समस्या उठी। लेखाने बाबाके एक रेशमी पिछौरेके द्वारा उस समस्याको हल किया। उसने उस पिछौरेको दुहरा-तिहरा किया और उसे पहना दिया। वह उस ड्रेसमें विचित्र-सा दिखाई देने लगा। उसका मुख कुछ चपटा-सा था और नाक छोटी ऊपरको उठी। उसकी ओर देखते-देखते लेखाका हृदय भर आया।

क्या बाबा इसे पसन्द करेंगे? यही उसकी एक चिन्ता थी।

"लेखा!" उसे बाबाकी आवाज सुनाई दी। वह खोकाका हाथ

पकड़कर उसे झकोर ले गई। कान्‍हू उसकी ओर घूर-घूरकर देखने लगा।

"यह कौन है?" वह विस्मयसे चिल्ला उठा।

"यह मुझे मिला है। आकाशका वरदान है।" लेखाने सारी कथा कह सुनाई।

"चलो, पूजाके लिए मन्दिरमें चलें।" कान्हूने कहा। "और बातें हम पीछे करेंगे। एक साँसमें इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। हमें इस छोटे-से लड़केके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं है।"

कालूने ध्यानसे उस लड़केकी ओर कुछ देरतक देखा। जब वह वहाँसे चला, तब फिर, एक बार उसने मुड़कर उसकी ओर देखा।

गत पखवाड़े-भर लेखाने मन्दिरमें अपनी अधिकाधिक भक्ति लगाई थी। वह आरतीमें भी भाग लेने लगी थी। जब बूढ़ा पुरोहित पंचज्योति आरती उतारता, तब वह चँवर डुलाती रहती। वह तन-मनसे विधिके अनुसार तल्लीन हो जाती। उसके इस अविश्वसनीय परिवर्तनसे बाबाको आश्चर्य हुआ। उन्होंने सख्तीसे उसे मना भी किया। तथापि वह अपनी बातपर जमी रही। उन्हें सन्देह था कि उसकी इस नई रुचिका सम्बन्ध उस दिन बितेनके अकस्मात् चले जानेसे है। लेखाद्वारा दुतकारे जानेपर वह, बिना राम रहीम किये ही चला गया और शहरके लाखोंमें विलीन हो गया।

लेखा, घड़ीके लटकनके समान, एक छोरसे दूसरे छोरको झूल गई। क्या मन्दिरसे उसे शान्ति मिलेगी? क्या उसकी भक्ति भी उसी ब्रह्म-मंत्रके समान शक्तिमान होगी, जिसके द्वारा एक [illegible] उतना सार्थक हो गया था और असत्यका सत्यमें परिवर्तन हो गया था?

पूजा चालू थी। लेखा ध्यान लगाये, आँखें बन्द किये बैठी थी। कालूने उसकी ओर मुड़कर धीरेसे पूछा "तूने उसे अच्छी तरह खिला-पिला तो दिया है?"

लेखाने थोड़ा-सा सिर हिलाकर, 'हाँ'में उत्तर दिया।

पुनः कुछ देर पश्चात् जब पुजारी मंत्र पढ़ रहा था, तब कालूने एक

बार फिर उसकी ओर मुड़कर पूछा "तूने उसके बाल धोये? उसकी जुँएँ लीखें बीनीं?"

लेखा आँखें मूँदे और ओंठ बन्द किये, ध्यान-मग्न चुपचाप बैठी रही। कालूने लज्जित होकर अपना मुँह फेर लिया।

पूजा समाप्त होते ही लेखाने कहा, "उसकी खोपड़ीको खाते हुए इक्कीस जुँएँ बीनकर मैंने अलग किये, इक्कीस!"

जब वे वापिस घर गये तब उन्होंने देखा कि वह बालक घूँटोंके आसपास हाथ किये जमीनपर उकरूँ बैठा है।

बाबा उसके पास खड़े होकर नीचेको उसकी ओर देखने लगे। बालक सिटपिटाया। "डरनेकी क्या बात है?" बाबाने पूछा। वे उसकी ओर झुक गये और उसके सिरको अपने हाथसे थपथपाने लगे। "इतना छोटा और हलका?" उन्होंने कहा। "तेरा वजन तो दो सेर या उससे भी कम होगा!" मानो वे उसके वजनका निश्चय ही कर लेना चाहते थे, उन्होंने बालकको अपनी बाँहोंमें उठा लिया।

"खाली चमड़ा और हड्डी भर है।" कालूके स्वरमें शोक था।

बालक उसकी बाँहोंमें ढीला पड़ रहा। कालू उसके तुचके मुँहकी ओर घूर-घूरकर देखने लगा। उसने बार-बार अपना गला साफ किया।

लेखाकी चिन्ता मिटी। छोटा बालक युद्ध जीत गया था।

"यह मेरे कमरेमें सोयेगा।" बाबाने कहा।

"नहीं, मैंने अपने पलंगके पास ही, उसकी खाट लगवा ली है। यहीं ठीक रहेगा।"

"किन्तु लेखा···" कालू आग्रह करने लगा।

"वह आपको तंग करेगा।" लेखा स्थिर थी। "उसे मेरे ही कमरेमें सोने दीजिए।"

"हाँ, हाँ," कालू बोला। उसके मुँहपर एक चोट खानेकी छाया थी। "वह तो गहरी नींद सो ही गया, देख!"

"अब वह आपको भी नहीं डरता" लेखाने उत्तर दिया। बालक

"अरी, पूरी अनुहार नहीं। एक कहनेकी बात है! तेरे जैसा रूप किसका हो सकता है? बात ऐसी है। जब मैं तुझे देखता हूँ, तो मेरा हृदय किसी चीजसे भर आता है। जब मैं इस बालककी ओर देखता हूँ, तब भी भर आता है, कुछ-कुछ वैसा ही। बिलकुल वैसा नहीं। वह बात तो हो नहीं सकती। लगभग—मेरा मतलब समझ गई न, चन्द्रलेखा?

"बेचारा बालक, उसका अपना कोई नाम भी तो नहीं है?"

"उसके भाग्यमें अपना नाम ठहरकर पाना बदा था। उसे अभिजित होना था। और कुछ नहीं। देखा तूने?"

इस प्रकार अभिजितका प्रारम्भ हुआ—एक भावनाके विचारसे।

२३

"बस एक और !" फोटोग्राफरने प्रार्थना की और उसने जल्दीसे प्लेट बदले।

"तुमने बहुत-से तो ले लिये। क्या मैं कोई सिनेमा स्टार हूँ ?"

"मुझे आदेश मिला है—बड़ी जगहसे।"

"कौन-सी बड़ी जगहसे ?" लेखाने पूछा।

फोटोग्राफरके मुखपर कुछ घबराहट छा गई, मानो वह बोलनेमें एक गलती कर बैठा हो। उसने अपनी तिपाईको हिलाकर, फिरसे दूसरी जगह जमाया। 'यह !" उसने बात जमाकर कहा "यह सच्चा फोटो होगा।"

लेखाने अपनी कई मुद्राओंमें फोटो उतारने दिया था। हाथमें बेंतकी टोकरी लिए बगीचेमें फूल तोड़ती हुई, पद्मासन बैठकर, आँखें नीचे किए हुए, ध्यानकी कमलमुद्रामें तथा रसोईघरमें साग-भाजी सँवारते हुए गृहस्थीके कामकाजमें व्यस्त। किन्तु सच्ची मुद्रा तो अभी अनेको थी।

"मैं एक ऐसी फोटो लेना चाहता हूँ, जिसमें आपकी अन्तरात्माका प्रतिबिम्ब आ जाय।" फोटोग्राफरने अपनी बात समझाई। "आपका सच्चा अन्ततम सौन्दर्य। ऐसा फोटो, जो सचमुच आप ही हों।"

लेखा उदास हो उठी। मुझमें अन्ततम सौन्दर्य क्या है ? उसे वे शब्द याद आये, जो उसके सम्बन्धमें दैनिक 'स्वदेश'में छपे थे। यह दूसरा अवसर था, जब उसका उल्लेख एक समाचारपत्रमें आया था। प्रथम अवसर वह था, जब उसने पदक जीता था। स्वदेशके उन शब्दोंसे उसे बड़ा आश्चर्य और बड़ी हैरानी हुई थी। उस पत्रमें लिखा था, दैवी अभिव्यक्ति उसी प्रकार अज्ञेय है, जैसी प्रकृतिकी प्रक्रियायें और उसकी विलक्षणता। क्या कारण है कि एक सीधे-सादे बेलाके फूलमें उतनी

सुगन्ध होती है, जब कि बड़े-बड़े पत्रमय फूल बहुधा गंधहीन होते हैं? सच्ची आध्यात्मिक खोजवाले इस देशमें दैविक अभिव्यक्तिका प्रकाश एक सामान्य पुरुषपर पड़ा और एक साधारण स्त्रीपर। यह प्रकाश एक बत्तीकी ज्योति मात्र भी हो सकता था, या एक विशाल प्रभा। यह महानगरी इस दैवी घटनासे अपरिचित नहीं है। नये शिव मन्दिरकी वह युवती कन्या दर्शन करने योग्य है। गत माहकी वे सब घटनायें बिना किसी उद्देश्यके तो नहीं हो सकतीं।

उन घटनाओंसे लेखाको बड़ा विस्मय हुआ था। उसके हृदयको धक्का भी लगा था।

एक दिन दोपहरके लगभग एक भूरे सिरका संन्यासी परिव्राजक भजन गाता हुआ वहाँसे निकला। मन्दिरके समीप आकर वह ठहर गया और तीव्र उत्सुकतासे इधर-उधर देखने लगा। उसने एक मनुष्यसे पूछा—

"वत्स, वे कहाँ हैं, सतानन्दमयी माता?"

पागल, पूरा पागल! उस मनुष्यने सोचा और जल्दी-जल्दी अपनी राह चला गया।

उस संन्यासीने, एकके पश्चात् दूसरा दरवाजा खटखटाना आरम्भ किया। वह और भी अधिक आग्रहके साथ पूछने लगा "कहाँ हैं वे, सतानन्दमयी माता?"

लोग उसे घेरकर खड़े हो गये और उस अपरिचित संन्यासीको देखने लगे, जिसपर एक अजीब सनक सवार थी।

अन्तमें वह उस मन्दिरपर पहुँचा। फाटकसे प्रवेश करते ही उसकी आँखें चमकने लगीं। उसके कण्ठसे जय-जयकी ध्वनि निकल पड़ी।

"मुझे वे मिल गई। मैंने माताजीको पा लिया।"

लेखा उस कमल-मण्डपमें बैठी थी और एक पुस्तक पढ़ रही थी। संन्यासी उसकी ओर दौड़ा और उसके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करने लगा। उसने अपना सिर संगमर्मरकी भूमिपर पटक दिया।

आश्चर्यसे स्तब्ध होकर लेखा उसकी ओर घूर-घूरकर देखने लगी। अब वह क्या करे? अन्यागतने अपना सिर उठाया और स्तुति करने लगा।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

संन्यासी इन पंक्तियोंका बार-बार पाठ करने लगा। उसकी तल्लीनता बढ़ती ही गई, यहाँतक कि उसकी आँखोंसे एक ज्योति निकलने लगी और अंग-प्रत्यंग काँपने लगे।

यही वह घटना थी, जो स्वदेशके समाचार-विभागके अन्तर्गत एक-चौथाई स्तम्भमें प्रकाशित हुई थी।

लेखा उस हैरानीसे अपनेको पूरा मुक्त भी न कर पाई थी कि एक सप्ताह पश्चात् ही दूसरी विलक्षण घटना घटी।

गेरुआ वस्त्र पहने एक स्त्री उस सड़कपरसे चलती दिखाई दी। वह शैव सम्प्रदायकी एक भैरवी थी। वह एक लम्बा त्रिशूल धारण किये हुए थी, जिसके ऊपरके तीनों काँटे सिन्दूरसे रंगे हुए थे। उसकी आँखोंमें एक भीषणता थी। जिन लोगोंकी दृष्टि उसपर पड़ी, वे ठिठककर उसे देखने लगे। वह मन्दिरतक आई और वहाँ पहुँचकर मधुर स्वरसे चिल्ला उठी, 'नमो शिवाय'। वह फिर एक अद्भुत प्रकारसे इधर-उधर भटकने लगी। उसकी चाल-ढाल एक शिकारी कुत्ते जैसी थी। सहसा वह घूमी और जल्दी-जल्दी फाटकसे बाहर हो गई, मानो उसको अपनी इष्ट गन्ध मिल गई हो। वह सड़कको पार करके लेखाके द्वारपर जा पहुँची।

लेखा उस समय छज्जेपर खड़ी थी।

"स्वागत है तुझे, माता!" भैरवी चिल्ला उठी। वह सिर ऊपरको उठाये, हाथ जोड़े देख रही थी। लेखा अनिच्छासे ही उतरकर नीचे आई। भैरवीने त्रिशूल एक ओर रक्खा और घुटने टेककर खड़ी हो गई। उसकी आँखोंमें भीषणताका स्थान अब एक भक्तकी श्रद्धा और शान्तिने ले लिया था!

या देवी सर्वभूतेषु दीप्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

वह उन्मत्त होकर स्तुति करने लगी। मेघाच्छन्न दिनके धुँधले प्रकाशमें उसके मुखपर ऐसी ज्योति छा गई थी, जो न आकाशकी थी और न पृथ्वीकी ही थी।

दर्शकोंकी भीड़में एक मनुष्य कैमराधारी भी था। वह आगे आया और उसने व्यावसायिक तटस्थताके साथ फोटो खींच ली। वह चित्र दूसरे दिनके समाचारपत्रोंमें विस्तृत विवरण सहित प्रकाशित हुआ।

भैरवीने समाचारका निर्माण किया। पत्रोंने उस समाचारको एक सप्ताह भर और गरम बनाये रखा। 'स्वदेश'के सम्पादकीय लेखोंने उस समाचारको महत्त्व प्रदान किया। विचित्र घटनाओंकी शृंखला बढ़ती गई। एक सुन्दर युवक, बीस वर्षसे अधिकका नहीं होगा, लम्बा रेशमी कुरता पहने, एक बड़ी क्रिस्लरमें बैठकर एक दिन मन्दिरके द्वारपर आ पहुँचा। उसने भी भैरवीके समान चन्द्रलेखाको दण्डवत् प्रणाम किया। वह सायंकालकी पूजाका समय था, अतएव बीसों भक्त दर्शकोंने उसे देखा। उस युवकने भी भक्तिमें तल्लीन होकर स्तुति की :

समस्त सृष्टि के जीवोंमें आनन्द उत्पन्न करने वाली
स्वागत है, माता, स्वागत, स्वागत, स्वागत।

वह कौन था, इसका किसीको कोई पता नहीं था। अन्ततः 'स्वदेश' ने पता लगाया कि वह एक कोट्याधीशका सुपुत्र था। फिर भी उस कोट्याधीशका नाम प्रकट नहीं किया जा सका। उस युवकको एक रहस्यमयी प्रेरणा उस शिवमन्दिरके दर्शन करनेकी हुई और वहाँ उसने एक महंतकी पुत्री, युवती कन्याके रूपमें सतानन्दमयी माताके दर्शन किये। इस आध्यात्मिक अनुभूतिके फलस्वरूप अब वह अपने जीवनकी धाराको बदलना चाहता है। अब वह अपने घर-द्वार तथा माँ-बापका परित्याग करके परिव्राजक योगीके समान, मुक्तिकी खोजमें भ्रमण करेगा।

लेखा घबरा उठी। उसे प्रतीत हुआ कि उस युवकका घर-द्वार

छुड़ानेका उत्तरदायित्व उसीपर था। उसे ऐसा लगा मानो उसके जन्मका विधान किसी प्रकार उसीने अपनी इच्छासे किया हो।

शिवमन्दिरकी उस युवती कन्याके व्यक्तित्वमें एक अद्भुत आध्यात्मिक चमत्कार है, यह 'स्वदेश'का सारांश था।

लेखा हिल उठी। जबसे उसने अपनेको उस मन्दिरको अर्पित किया था, तबसे उसमें कोई ऐसी बात उत्पन्न हो गई थी, जिसे वह स्वयं समझ नहीं पाती थी। तथापि वह तो एक आकस्मिक भावनासे प्रेरित होकर चल रही थी और वही उसे बहाये लिये जाती थी—अंधकारमेंसे उत्पन्न हुआ एक आवेग मात्र। और वह मन्दिर भी तो एक अंधकार ही था, प्रकाश नहीं। पूरा एक सप्ताह भी नहीं निकलने पाया था कि उसे अपने कृत्यका परिणाम समझमें आने लगा। उसने वितेनके साथ कैसा अन्याय और दुर्व्यवहार किया। उसका यह अपराध धीरे-धीरे और निरन्तर उसके हृदयको जलाने लगा।

वह कभी मुझे क्षमा नहीं करेगा, कभी लौटकर मेरे पास नहीं आवेगा।

मुझे उस दिन क्या बुरी धुन सवार हुई थी? मुझमें मनुष्यता नहीं रही। कहाँका चिड़चिड़ापन आ गया था मुझमें। मेरा मन ही कुछ विकृत हो गया, अब वह दूसरों जैसा शायद कभी सुधर भी नहीं सकेगा।

लेखाको एक रात्रि स्वप्नमें एक पुरुष दिखाई दिया। उसने उसको अपनी बाँहोंमें भरकर जोरसे चिपटा लिया। उसके ओंठोंने उसके कपाल और आँखोंका स्पर्श किया और वे उसके ओंठोंसे आ लगे। उसने उसे ढकेलकर अलग नहीं किया। वह अकड़ी नहीं, राजी रही। उसकी साँस जल्दी-जल्दी चलने लगी। उसके समान उसकी भी भुजाएँ उठीं और उन्होंने भी उसे लपेट लिया। जीवन और कालका प्रवाह चलता गया। आकाश अपने अनन्त तारों सहित वायुके साथ नीचेको बहता चला आया। तारे और अधिक दीप्तिमान हो उठे और कान्तिमान मुखोंके समान दीखने लगे। जब वह अलग हुआ, तब उसके मनमें कुछ लालसा, कुछ तृष्णा शेष-सी रह गई। उसने उसका मुख अपने

हाथोंके बीच ले लिया, उसे खूब ध्यानसे देखा और खींचकर अपने मुखसे चपेट लिया। उसे अपने अंग-अंगमें उसके स्पर्शका अनुभव हुआ। चमकते तारे देखते और मिचमिचाते रहे।

"चन्द्रलेखा !"

इस सुपरिचित ध्वनिने स्वप्नमेंसे आकर उस स्वप्नको समाप्त कर दिया। उसने अपनी आँखें खोलीं और वह अंधकारमें देखने लगी। उसका शरीर शिथिल पड़ गया था, किन्तु उसके अंगोंमें मधुर गर्मीकी सनसनाहट थी।

लेखा बड़ी देरतक अपने स्वप्नपर विचार करती रही। उसने अपनी अँगुलियोंसे अपने ओंठोंका स्पर्श किया और उस स्मृति एवं आश्चर्यको पुनः जाग्रत किया। उसे कोई भय नहीं लग रहा था, केवल सुखकी अनुभूति थी।

वह अब मानवीय थी, झक्की नहीं। वह भी साधारण दैनिक जीवनके ढाँचेमें अपना स्थान ग्रहण कर सकती थी, स्त्रियोंके बीच स्त्री बनकर रह सकती थी।

आश्चर्य ! लेखाको प्रथम बार अपनी चेतना हुई। इसके लिए वह वितेनकी ऋणी थी। यद्यपि उसके उस आवेगपूर्ण आलिंगनसे उसे भय और विद्वेष उत्पन्न हुआ था, तथापि उसने उसके स्त्रीत्वको जगा दिया।

उसकी आशंका धीरे-धीरे क्षीण होती गई। अब वह सर्वथा नष्ट हो चुकी।

उस स्वप्नने लेखाके विचारोंको भर दिया और उनपर रंग भी चढ़ा दिया। सीधे शब्द और छोटी-छोटी बातें समृद्ध और सार्थक दिखाई देने लगीं। उसे वितेनके सहज हास्यकी ध्वनि सुनाई पड़ी, उसकी भौंहोंके शीघ्र तनावका स्मरण आया और उसके मुखकी विचारपूर्ण गंभीर मुद्रा याद आई। फिर उसका हृदय अपने अपराधसे आच्छन्न हो जाता, जब उसे उसकी दुखभरी आवाजका शब्द सुनाई पड़ता 'चन्द्रलेखा !'

इस स्मृतिसे वितेनके दुखकी प्रतिध्वनि बार-बार उसके हृदयमें ठेस

पहुँचाती । "अरी अभागिनी, तू उसके पैरोंकी धूल बनने योग्य भी नहीं है।" इस प्रकार वह अपने आप चिल्ला उठती।

किन्तु वह अब उसके लिए कोई मन्दिर नहीं बनायेगी। वह पुरुषोंके बीच पुरुष होकर रहेगा।

क्या वह कभी फिर आवेगा? उसे तीव्र लालसा होने लगी कि वह फिर उसके पास आवे और उसे वह अपनी सारी कथा आरंभसे अन्ततक सुना दे। उसकी देह निर्दूषित है। यह तथ्य अब नवीन और महान् सार्थकतापूर्ण हो गया, जिससे उसके रक्तमें स्फूर्ति आने लगी। यह उसकी मुक्तिके लिए एक नई खोज थी। वह अपनेको शीशेमें उत्सुक और आलोकपूर्ण आँखोंसे देखने लगी। गत एक माहमें उसका वजन बढ़ गया था। उसका जो मुख शीशेके चौखटेमें दिख रहा था, वह मनोहर था, इसे कैसे अस्वीकार किया जा सकता है? लेखा अपने प्रत्येक अंगको ठहर-ठहरकर देखने लगी, और उसे हर्ष होने लगा। यह मुख—इसमें रूप है क्या? क्या यह सुन्दर है? आँखोंमें ज्योति तो है, नकुओंकी गुलाई भी यथोचित है। मुखकी बनावट भी तो अच्छी है। ठुड्डी मजबूत और गोल तो है। रंग तो वैसा दूध और लाख जैसा नहीं है किन्तु वह खूब गोरा है, रंगहीन जैसा, जब तक कि वह उसको जोरसे मले न।

तो लोग जिसे सौन्दर्य कहते हैं, वह उसमें है या नहीं? क्या वह एक सच्ची स्त्री है?

हाँ। और अब जब वह किसी भी अन्य स्त्रीके समान नारी थी, नारीकी ही भावनाओं और आवश्यकताओंसे पूर्ण थी, तब भी वह सतानन्दमयी माताके नामसे संबोधित की जाती थी! जिस क्षण वह नारी बन गई, उसी समयसे उसका देवी माना जाना असत्य हो गया।

वही चित्रकार जिसने भैरवीके आनेके समय आकर चित्र लिये थे, आज फिर चित्र लेनेके लिए उपस्थित था। वह एक ऐसा चित्र लेना चाहता था, जिसमें उसकी अन्तरात्मा उतर आवे, जो सचमुच वही हो।

'यह बिलकुल वाहियात बात है' लेखाको हँसी आ रही थी और

वह चिल्लाकर कह देना चाहती थी।

थोड़ा अपना हाथ उठा लीजिए। आशीर्वादकी मुद्रामें चित्रकारने कहा। "ऐसा···हाँ···बस-बस! और अब अपने मुखपर करुणाका भाव लाइए, विश्व-मात्रके प्रति उत्कृष्ट दयालुताकी मुद्रा।"

वह मुद्रा नहीं आई। "क्या मैं कोई अभिनेत्री हूँ?" लेखाने आपत्ति की।

ठीक भावपूर्ण चित्र लेनेका प्रयास चलता रहा। अन्ततः वह थक गई। करुणा? वह विश्वकी ओर मुँह बनाकर देख सकती थी! वे मुझे बचने क्यों नहीं देते?

अभिजित खड़ा-खड़ा तिपाईपर रखे उस कैमरेकी ओर, बड़े आदरकी आँखोंसे देख रहा था। फोटोग्राफरने आनन्दमयी माताको कुछ विश्राम देनेके लिए अपना ध्यान उस बालककी ओर दिया।

"आओ, देखो इसे!" उसने बालकको अपने पास बुलाया। "इस काले कपड़ेके भीतर अपना सिर रखो। अच्छा अब बतलाओ तुम्हें क्या दिख रहा है?"

चित्रकार खुशदिल सहज स्वभावी मनुष्य था। उसे यह छोटा-सा लज्जाशील बालक बहुत पसन्द आया।

अभिजित प्रसन्न था। उसने अनुमति प्राप्त करनेके भावसे लेखाकी ओर देखा।

"हाँ, हाँ! क्यों नहीं?" लेखाने कहा। "कैमराके काँचमेंसे मेरे मुँहकी ओर देखो।"

चित्रकारने उसे एक काठके स्टूलपर खड़ा कर दिया, वह काला कपड़ा उसके शिरपर डाल दिया और फिर वह लेखाकी ओर देखने लगा। लेखा उत्सुकतासे पूछ रही थी "दिखा तुझे मेरा मुँह?

"एक क्षणमें दिखाई देगा। उसे आँख जमाने दीजिए।"

चित्रकार सतर्क था। लेखाने अभिजितको अपना मुँह दिखलानेकी उत्सुकतासे लेन्सकी ओर निश्चल दृष्टिसे देखा। तत्काल ही फोटोग्राफरने

अपने खीसेसे एक छोटा-सा कैमरा निकाला। लेखा अभिजितमें और उसके कौतुकमें तल्लीन थी। 'अभिजित ! प्यारे बच्चे ! बड़े होनेपर तुझे एक कैमरा ले दूँगी।'

छोटा कैमरा 'क्लिक' कर उठा।

"बिल्कुल ठीक हो गया।" चित्रकारने हर्षपूर्वक कहा।

"क्या हो गया ?" लेखाने विस्मयसे उसकी ओर देखकर पूछा।"

"विश्व-दयाकी मुखमुद्रा ! जो चित्र मुझे चाहिए था, वह मिल गया। कल सारा महानगर उसे देखेगा।"

"अभिजित मुँहभर नाम है। छोटा सा 'जित' क्यों नहीं?"

काल्लूने इस बातपर विचार किया।

"जित? मुझे तो 'अभि' अधिक अच्छा लगता है।" उसने इस नामका स्वाद लिया और प्रसन्न हुआ "हाँ, सब, अभि।"

"तो मेरा जित। उसके ये दोनों नाम रहने दीजिए।"

"किन्तु दूसरोंको उसे पूरा अभिजित ही कहना चाहिए। तेरी माँको यह नाम बहुत पसन्द था, यद्यपि उसे वह सुख पूरे दो दिन भी नहीं मिल पाया।"

वह नाम रखने सम्बन्धी दृश्यका उल्लेख करते-करते काल्लू कभी थकता नहीं था। उसका मुख अपनी एक अभ्यस्त उदासीसे नरम पड़ गया।

किन्तु इस प्यारके नामके अतिरिक्त काल्लू अपनी इस नई भावनाके कारणको, खोजनेका प्रयत्न कर रहा था। उसे इस बालककी इतनी आवश्यकता ही क्या थी, मानो चन्द्रलेखा पर्याप्त नहीं थी। कभी-कभी उसे इस बातसे ईर्ष्या हो उठती कि 'अभि' लेखामें इतना अनुरक्त क्यों हो गया है, कि वह पूरी भक्तिसे उसका ही अनुकरण करता और कभी उसे अपनी आँखोंसे ओझल नहीं होने देता।

लेखा उसे अक्षर लिखना और बालकोंके गीत गाना सिखाने लगी। गीत वह जल्दी सीख लेता, किन्तु अक्षर बनाना उसे नहीं आ पाता था। कदाचित् उसका मन युगों पुरानी प्राचीन परम्पराका था, जिसके अनुसार उसके किसान बाप-दादे पढ़ना-लिखना तो नहीं जानते थे, किन्तु उनकी जिह्वापर रामायण-महाभारतकी लम्बी-लम्बी दोहा चौपाइयाँ, किस्से कहानियाँ तथा सैकड़ों कहावतें सरलतासे चढ़ जाती थीं।

कालूको सन्तोष नहीं था। लुहारी कारीगरी, वह सैकड़ों वर्षों पुरानी, बाप-दादोंसे चली आई, तथा उसके अपने हाथों तेज बनाई गई कला, अभिकी सच्ची विरासत बनाना आवश्यक था। हृदयसे कालू अभी भी अपने वंशवृक्षका अंग था। उसकी जड़ें कालकी भूमिमें गहरी गड़ी हुई थीं।

वह अपनी अधीरतापर अपने आप हँस पड़ा! अभी तो अभिजित अपने पिताकी कारीगरी सीखनेके लिए बहुत ही छोटा है। अभी इसके लिए बहुत समय है। मन्दिरसे दूर कहींपर वह एक कमरा भाड़ेमें ले लेगा और वहाँ चुपचाप एक लुहारी दुकान बना देगा। लड़केको वहाँ ले जानेमें कितना मजा आयेगा! वह लेखाको तो यह बात बतला देगा, किन्तु और किसीको नहीं।

“इसके विषयमें तू क्या सोचती है?” कालूने घरके अदृश्य व्यक्तिसे पूछा—बच्चोंकी माँसे।

उसकी सम्मति है। उसका हृदय सदैव विनोद-प्रिय था और वह भी चाहती थी, कि अभिजितको कुटुम्बकी सच्ची विरासत मिले।

बस, तय हो गया। अब विलम्ब केवल इस बातका था कि अभिजित, जल्दी बड़ा हो जाय, जिससे यह खेल प्रारंभ हो सके। किन्तु साथ ही साथ उसकी यह भी उतनी ही तीव्र अभिलाषा थी कि यह बालक शिशु होता और वह उसे अपनी बाँहोंमें उठाकर लिये फिरता। उसके शिशुसे बढ़कर बालक होनेके दिन निकल गये थे। कालूको वह सुख नहीं मिल पाया। उसकी बाँहें शिशु अभिजितको उठानेके लिए खुजलाने लगीं। उसे अपना चौड़ा कंधा जहाँ शिशुका सिर विश्राम लेता, रीता-रीता प्रतीत होने लगा।

इसी बीच लेखाके सम्मुख एक समस्या आ खड़ी हुई। उसने उसे अपने आप ही हल किया, जिससे बाबाको कोई क्लेश न हो। रसोइन बामनीने एक दिन अपने बरांते गलेसे फुसफुसाकर उससे बातें कीं। गहरी गुप्त बातें वह इसी प्रकार बतलाया करती थी।

“यहाँ आइए, एक क्षण।”

वह लेखाको उसके सोनेके कमरेमें ले गई। बामनी अभिजित्के बिस्तरके पास खड़ी हो गई और उसने गद्दी ऊपरको उठाई।

"देखिए!"

लेखाने देखा वहाँ एक कागजमें लिपटी हुई कोई वस्तु थी। बामनीने उसे धीरे-धीरे खोला। वह उसमें समय लगा-लगाकर अपनी मालकिनके मुखकी प्रतिक्रिया देखती जाती थी। उसमेंसे गेहूँकी रोटीके दो टुकड़े निकले, जो बासे और सूखे हुए थे।

"देखा आपने!"

लेखा एक क्षण देखती रही, फिर समझी। स्पष्ट था कि जित्ने एक कागजमें उन रोटीके टुकड़ोंको लपेटकर बिस्तरकी गद्दीके नीचे कुछ सप्ताह पूर्व छुपाकर रखा होगा। उसका यह कार्य एक छोटे पिल्लेके समान था, जो हड्डीके टुकड़ेको छिपाकर रख देता है।

"अपन ठहरें और देखें कि वह इन टुकड़ोंका क्या करता है।" लेखाने उस बंडलको जहाँका तहाँ रख दिया।

कई दिन निकल गये और वह बंडल जैसाका तैसा रखा रहा। अन्ततः लेखाने उसे फेंक दिया।

दूसरे दिन गद्दीके नीचे फिर रोटीके टुकड़े पाये गये। रोटी ताजी थी। लेखाने अपने मनमें निश्चय कर लिया। उसने अभिजित्को अपने कमरेमें बुलाया।

बालकके मुखपर भय छा गया। उसने दृष्टि बाँधकर उस रोटीकी ओर देखा और फिर आँखें मीच लीं।

"अब ऐसा कभी मत करना, जित्। तुम चाहे जब रोटी माँगकर खा सकते हो। तुम्हें इस प्रकार रोटी बचाकर रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अपने रसोईघरमें प्रतिदिन ताजी रोटी तैयार होती है, नहीं क्या?"

लेखाने वह रोटी फेंक दी।

एक-दो दिन पश्चात् गद्दीके नीचे फिर रोटी दिखाई दी।

इस बार लेखाने कुछ सख्ती दिखाई। उसकी आवाजमें कठोरता थी। जित्ने अपना सिर नीचा कर लिया और उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

"मैं तुझे सन्देश और दूध मिठाई दूँगी। इन्हें तू अपने बिस्तरके पास टेबिलपर रख सकता है।"

किन्तु इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ। पहलेकी भाँति फिर भी गद्दीके नीचे रोटी पाई गई। लेखाको क्रोध आ गया। जित् चिल्लाने लगा। वह इतना असहाय और विवश दिखाई दिया कि लेखाको अपने रोषके लिए पश्चात्ताप हो उठा। किन्तु बालककी यह आदत छुड़ाना तो आवश्यक था।

लेखा समझ गई कि बालककी पूर्व अनुभूति भूत बनकर उसका पीछा कर रही है। बालकके पास रोटी चाहिए। घीकी तली लुचई नहीं, किन्तु सूखी गेहूँकी रोटी। उसे अभीतक अपने वर्तमान जीवन और उसकी समृद्धि आत्मसात् नहीं हो पाई थी। कलका भुखमरा बच्चा अभिजित्को कचरेके ढेरमेंसे निकाले सड़े खाद्य पदार्थ भूलने नहीं देता था। उसके लिए भरोसेकी केवल एक ही बात थी—रोटी, और वह भी ऐसी जगह जहाँसे उसे वह बिना माँगे मिल सके।

लेखाको चिन्ता हुई। बामनी प्रतिदिन उस छिपाकर रखी रोटीको फेंकती और प्रतिदिन वह फिर वहीं पहुँच जाती। बालकको मना करना या उसकी पहुँचके बाहर रोटी रखना व्यर्थ था। समस्या गहरी होने लगी।

बामनीने एक दिन अपनी मालकिनसे कहा। उसके मुखपर व्याकुलता थी।

"ऐसे आचरणको आप कैसे सहन कर सकती हैं? क्या यह इस घरका पुत्र नहीं है?"

"अब और क्या हो गया?" लेखाने अपनेको कुछ और गड़बड़ीकी बात सुननेके लिए तैयार किया।

"क्या यह अस्पृश्य जातिका है?" बामनीने दुर्भाग्य व्यक्त करनेके

भावसे अपना कपाल ठोका।

"बामनी!" लेखा तीक्ष्ण स्वरसे चिल्लाई।

रसोइनने अपनी कथा कह सुनाई। अभिजित् नीचेकी मंजिलमें गया और पुजारिनके रसोईघरमें झूँकने लगा। विचित्र! बस बात इतनी ही थी। छोटा-सा बालक तो ठहरा। पुजारिन चूल्हेपर रखे भातको करछुलीसे टाल रही थी। उसने बिना मुँह फेरे ही बालककी उपस्थितिको भाँप लिया। उसकी बाघिनकी आँखें जो ठहरीं।

"कुजात कहींका! नालीमेंका बच्चा! तुझे ब्राह्मणके रसोईघरमें आँख डालनेका साहस हो गया? तू अपनी साँससे भोजनको भ्रष्ट कर डालेगा और तब मुझे वह कुत्तोंके आगे फेंक देना पड़ेगा। तू इतनी बात नहीं समझता?"

"अभिजित् घबराकर वहाँसे भागा। मैं उस समय देहरी झाड़ रही थी। मैंने अपनी आँखों यह सब देखा और पुजारिनकी बात मेरे कानोंमें ऐसी जली जैसे किसीने तपाकर सीसा पिला दिया हो।"

लेखाने बामनीकी बात ध्यानसे सुनी। किन्तु उसने कोई टीका-टिप्पणी नहीं की, उसका मुख कठोरतासे वन्द था। दूसरे दिन जब वह अपने रसोईघरमे थी और जित् उसके बिलकुल समीप पीढ़ेपर बैठा था, तब उसने बामनीको कहा।

"नीचे जा और पुजारिनको एक पलके लिए मेरे पास बुला ला।"

बामनी प्रसन्न हुई। अब कुछ न कुछ होनेवाला है। अभिजित्को 'कुजात कहींका' कहना और उसके साथ अस्पृश्य जैसा व्यवहार करना! क्या इतना बस नहीं था कि मन्दिरके महन्तने उसे अपना पुत्र मान लिया है? क्या मालिककी बुद्धि और समझदारीकी नुकताचीनी करना और हँसी उड़ाना ठीक है? यह घमंडी पुजारिन स्त्री तो अब अपनी सीमासे बाहर पहुँच गई है।

जब पुजारिन आई तब लेखाने स्नेहसे मुस्कुराकर उसका स्वागत किया।

"मैंने आज एक नई तरहसे कढ़ी बनाई है। यह कटोरा-भर तेरे लिए है।"

लेखाने कटोरा अभिजित्के हाथों दे दिया। उसके मुखपर अभी भी स्नेहकी मुस्कुराहट थी।

"इतना मेरा काम करेगा, जित्?" लेखाने कहा—"इसे अपनी काकीके रसोईघरमें ले जा। देख, गिराना नहीं।"

पुजारिन आश्चर्य-चकित रह गई। लेखा फिर उनकी ओर मुड़ी।

"मुझे बतलाना मत भूलना कि तुम्हें इस कढ़ीका स्वाद कैसा लगा। मैंने कुछ खास मसाले मिलाकर इसमें डाले हैं।"

अभिजित् सीढ़ियोंकी ओर बढ़ा। पुजारिन उसके पीछे-पीछे चली और उसके पीछे चली बामनी विस्मित होकर। सीढ़ियोंसे नीचे उतरते ही पुजारिन आगेको दौड़ पड़ी।

"बस, बेटा, इतनी दूर ही बहुत हुआ। अब कटोरा मुझे दे दे। मैं ले जाऊँगी।" पुजारिनने अभिजित्से कहा।

अभिजित्ने उसकी ओर देखा भी नहीं। उसने केवल अपना सिर हिलाकर प्रकट किया कि उसे जो काम सौंपा गया है वह अभी पूरा नहीं हुआ। उसे तो साफ-साफ शब्दोंमें स्पष्ट आदेश मिला था कि इसे अपनी काकीके रसोईघरमें ले जा। अभिजित् आगे बढ़ता गया।

पुजारिन विवश थी। वह वहीं ठहर गई। उसकी बाघिन जैसी आँखोंने देख लिया था कि बामनीकी छाया समीप ही है। उस कहींके कुजातने उसके रसोईघरमें जाकर उसे अपवित्र कर डाला।

अब किया क्या जाय? क्या इस कढीको फेंक दूँ, मिट्टीके बासन-बर्तनोंको फोड़ डालूँ और रसोईघरके चूल्हे-चौकेको गोबरसे लीप लूँ? करना तो यही चाहिए। किन्तु इसकी खबर उड़ जायगी और बहुत बातें बनेंगी। पुजारीकी नौकरी भी छूट जाय तो आश्चर्य नहीं।

बामनीने बड़ी प्रसन्नतासे यह वृत्तान्त अपनी मालकिनको जा सुनाया।

पश्चात् सायंकालको अभिजित्‌ने पूछा "बूढ़ी काकीके रसोईघरमें और भोजन ले जाना है ?"

लेखाने उसकी ओर विस्मयसे देखकर कहा—

"आज नहीं।"

"तो कल ?"

"हाँ, आगे कभी।"

"काकी मुझे लाठीसे मारेगी तो नहीं ?"

"तुझे मारेगी ? तुझे कोई नहीं मार सकता।"

"काकी मेरी ओर चिल्लायगी तो नहीं 'भाग इधरसे, गन्दा कहींका'।"

"तुझे कोई गन्दा नहीं कह सकेगा।"

"मैं उनके रसोईघरमें चला जाऊँ तो भी नहीं ?"

"तू चाहे जहाँ जा-आ सकता है।"

जित् चुप हो गया। वह इन अद्भुत बातोंको आत्मसात् करने लगा।

दूसरे दिन तड़के बामनीने फिर अपनी मालकिनसे कहा।

"जरा इधर तो आइए।"

लेखाने साँस खींची। अब इस बार क्या उपद्रव है ? वह बामनीके पीछे-पीछे अपने सोनेके कमरेमें गई।

"देखिए !" बामनीने जित्‌के बिस्तरकी गद्दीको उठाते-उठाते कहा।

लेखाको वहाँ कुछ नहीं दिखाई दिया। "क्या है" लेखाने जानना चाहा।

"अब यहाँ रोटी नहीं है।"

"रोटी नहीं है ?" लेखाने धीरे-धीरे दुहराया। "किन्तु शायद कल फिर।"

किन्तु कल और उसके पश्चात् अगले दिनोंमें फिर वहाँ कोई रोटी दिखाई नहीं दी। जित्‌का वह रोग अच्छा हो गया।

लेखाको बड़ा विस्मय हुआ। किन्तु उसकी चिन्ता दूर हो गई। जित् कैसे और क्यों इतना बदल गया ? क्या यह केवल एक आकस्मिक मेल था कि यह परिवर्तन उसके पुजारिनके रसोईघरमें जानेके ठीक पश्चात् हुआ ?

लेखा निश्चयपूर्वक कुछ न कह सकी। हो सकता है कि जहाँ उसका जाना निषिद्ध था वहाँ बिना किसी बुरे परिणामके पहुँच जानेसे उसे अपने 'नहीं और मनाईवाले' भूतकालसे मुक्ति मिल गई ? और सम्भव है, इसी मुक्तिके द्वारा उसने अपनी भूखके भयसे भी छुटकारा पा लिया हो ? शायद अब अन्ततः वह साधारण बालकके समान बन गया। उसे भरोसा हो गया और उसका भय छूट गया तथा वह अब थोड़ी शरारतकी ओर भी झुकने लगा। अब सम्भवतः थोड़े ही दिनोंमें वह अपने व्यक्तित्वके पंख बढ़ा लेगा।

समान आवश्यकतासे लेखा और उसके बाबा दोनों ही भाग निकले—अभिजित्की ओर। उसने उनके स्वोपार्जित दुखसे उनके चित्तको आकर्षित कर लिया।

बितेन फिर वापस नहीं आया। उसका कोई समाचार भी नहीं मिला।

जब कभी कोई प्रदर्शन उस सड़कपरसे निकलता, तभी लेखा छज्जेपर दौड़कर आ खड़ी होती। वह आँखें फाड़-फाड़कर उसकी अगली पंक्तियोंका अवलोकन करती। बितेन यदि होगा तो अगली पंक्तियोंमें ही।

कहाँ गया वह ?

हो सकता है वह शहर छोड़कर ही चला गया हो। सम्भव है वह फिर जेलखानेमें जा पहुँचा हो। क्या उसे लेखासे इतनी घृणा हो गई कि वह उन्हें अपने सम्बन्धकी सूचनाका एक शब्द भी न भेजे ? कभी नहीं ?

कालू अपनी पुत्रीकी बेचैनी जानता था। वह भलीभाँति समझता था कि उसे कितनी पीड़ा है। वह भी सोच-विचारमें पड़ा रहता। उसे थकान आ गई जैसा प्रतीत होता था। वह जैसे रातभरमें बुड्ढा हो गया हो।

बितेनके जानेके एक दिन पश्चात् पैरेडाइज लाजका मैनेजर विकास मुकर्जीके नामका एक पत्र लेकर उसके पास आया था। मैनेजर समझ नहीं पा रहा था कि उस पत्रका क्या किया जाय, जब कि वह व्यक्ति वहाँसे चला गया था। वह अपना अगला पता भी नहीं छोड़ गया था जहाँको पत्र आगे बढ़ाया जा सके। सम्भव है, मंगल अधिकारीको उसका पता हो।

तो यही बितेनका असली नाम है! पत्रपर टाटानगरके डाकघरकी छाप लगी थी। स्पष्टतः वह उसके माँ-बापके पाससे आया होगा जिन्हें उसने अपना वह पता भेजा होगा।

मुकर्जी! बितेन सचमुच ब्राह्मण है?

कालूने ठीक बात समझनेका प्रयत्न किया। बितेनने ब्राह्मण होकर भी यज्ञोपवीत धारण करना अस्वीकार कर दिया। भले ही इसके कारण उसे अपनी प्रेयसी युवतीसे हाथ धोना पड़े।

और यहाँ यह एक लुहार था जो ब्राह्मणका ढोंग बनाये बैठा था, तथा जिसने अपनी पुत्रीको उसके प्रेमीसे इसीलिए विवाह नहीं करने दिया कि कहीं उससे उनकी जातिमें बट्टा न लग जाय और उनका स्वाँग न खुल जाय।

ऐसी शक्ति कहाँसे आई जिसके कारण मनुष्य अपने मनके आदर्शोंके लिए चाहे जितना क्लेश उठानेको तैयार हो? यह प्रश्न वह बितेनसे—— विकास मुकर्जीसे—अवश्य करेगा, यदि वह कभी वापिस आया तो।

अभिजित् बड़े मौकेपर उनके पास आ गया। उसने उनके जीवनके बोझको हलका कर दिया। किन्तु अभिजित् केवल वैयक्तिक वस्तु तो नहीं रह सकता था। मन्दिर तो उन सभी व्यक्तियोंपर विचार करता था जो उसकी छायामें आते थे। गम्भीर सामाजिक प्रश्न उठते थे।

पुजारिनने जो उसे 'कुजात कहींका', 'नालीमेंका बच्चा', कहा था, वह कोई योंही बात नहीं थी। जो कोई देखता था वही समझता था कि वह बालक किसी किसानके छोकरेसे बढ़कर नहीं है। पुजारिनके स्वरमें

बितेनके जानेके एक दिन पश्चात् पैरेडाइज लाजका मैनेजर विकास मुकर्जीके नामका एक पत्र लेकर उसके पास आया था। मैनेजर समझ नहीं पा रहा था कि उस पत्रका क्या किया जाय, जब कि वह व्यक्ति वहाँसे चला गया था। वह अपना अगला पता भी नहीं छोड़ गया था जहाँको पत्र आगे बढ़ाया जा सके। सम्भव है, मंगल अधिकारीको उसका पता हो।

तो यही बितेनका असली नाम है! पत्रपर टाटानगरके डाकघरकी छाप लगी थी। स्पष्टतः वह उसके माँ-बापके पाससे आया होगा जिन्हें उसने अपना वह पता भेजा होगा।

मुकर्जी! बितेन सचमुच ब्राह्मण है?

कालूने ठीक बात समझनेका प्रयत्न किया। बितेनने ब्राह्मण होकर भी यज्ञोपवीत धारण करना अस्वीकार कर दिया। भले ही इसके कारण उसे अपनी प्रेयसी युवतीसे हाथ धोना पड़े।

और यहाँ यह एक लुहार था जो ब्राह्मणका ढोंग बनाये बैठा था, तथा जिसने अपनी पुत्रीको उसके प्रेमीसे इसीलिए विवाह नहीं करने दिया कि कहीं उससे उनकी जातिमें बट्टा न लग जाय और उनका स्वाँग न खुल जाय।

ऐसी शक्ति कहाँसे आई जिसके कारण मनुष्य अपने मनके आदर्शके लिए चाहे जितना क्लेश उठानेको तैयार हो? यह प्रश्न वह बितेनसे—विकास मुकर्जीसे—अवश्य करेगा, यदि वह कभी वापिस आया तो।

अभिजित् बड़े मौकेपर उनके पास आ गया। उसने उनके जीवनके बोझको हलका कर दिया। किन्तु अभिजित् केवल वैयक्तिक वस्तु तो नहीं रह सकता था। मन्दिर तो उन सभी व्यक्तियोंपर विचार करता था जो उसकी छायामें आते थे। गम्भीर सामाजिक प्रश्न उठते थे।

पुजारिनने जो उसे 'कुजात कहींका', 'नालीमेंका बच्चा', कहा था, वह कोई योंही बात नहीं थी। जो कोई देखता था वही समझता था कि वह बालक किसी किसानके छोकरेसे बढ़कर नहीं है। पुजारिनके स्वरमें

खोजका रोमांच था जब उसने कहा था "क्या मैं तुमसे ऐसी बात कहती, यदि मेरे पास उसका प्रमाण नहीं होता ? जो साज-बाजका गर्व करता और घीकी तली पूरियाँ खाता फिरता है वह किसानोंसे भी नीचे दर्जेका है। वह चमारोंसे ऊपरकी जातिका नहीं हो सकता।"

जिन्होंने सुना वे हक्का-बक्का होकर देवताके दर्शनको दौड़े और 'शिव ! शिव !' चिल्लाने लगे।

मोतीचन्द इन दिनों बहुधा मन्दिरमें आता था—प्रायः प्रत्येक दिन रात्रिकी पूजाके समय। उसकी आन्तरिक प्रेरणा इतनी बढ़ गई दिखाई देती थी कि वह बिला नागा एक घण्टातक पूजाके दर्शन किये बिना रह नहीं सकता था। किन्तु व्यापार तो बहुत देरके लिए छोड़ा नहीं जा सकता था—अपना व्यापार भी तो मनुष्यका धर्म है। अतएव मोतीचन्दने समस्याका हल यह निकाला कि उसने मन्दिरके गर्भालयके समीपकी ही एक कोठरीमें एक टेलीफोन लगवा लिया। "इम्पीरियल कापर्स, दो-तीन। सनबीम पेपर, पन्द्रह-नौ। रुद्रनाथ केमीकल्स, दो सौ सात।" इस प्रकारकी ध्वनियाँ तारके उस छोरसे आती रहती थीं।

मोतीचन्द उन दरोंको ध्यानसे सुनता और उसका मन बड़ी तीव्रतासे अपना काम करता। आर्थिक वायुमण्डलकी उसे खूब पहचान थी। साथ ही साथ वह पुजारीके मंत्रोंको भी उसी तीव्रतासे सुनता जाता था। उसे दोनों काम साथ-साथ करनेकी रुचि थी। उससे समयकी बड़ी बचत होती थी। इधर उसके कान पवित्र धार्मिक मंत्रोंके शब्द सुनते और उधर उसका मन विशेष एकाग्रतासे बाजारकी गतिका विश्लेषण करता रहता था। अभ्यासके साथ उसकी इस योग्यतामें खूब उन्नति हुई।

उसकी आँखें भी कम कार्य व्यग्र नहीं रहती थीं, क्योंकि आँखोंका अपना अलग काम था। संगमर्मरसे पटी भूमिपर मोतीचन्द ऐसे स्थानपर बैठता जहाँसे वह लेखाको पूर्ण रूपसे देख सके। उसके दर्शनसे उसका शरीर आनन्दसे भरने लगता। एक दिन वह भी उसकी अपनी हो

जायगी। इसका उसे गर्व होता।

यह एक घण्टा सचमुच अच्छा व्यतीत होता था।

पूजाके पश्चात् एक दिन संध्याके समय, मोतीचन्द मंगल अधिकारीको एक तरफ ले गया और बोला "मैं उस छोटे बालककी चिन्तामें हूँ। उसे कहीं भेज क्यों न दिया जाय?"

कालू चकित होकर रह गया। फिर बोला: "अभिजित?"

"मैं मन्दिरके पंचके नाते यह बात नहीं कह रहा हूँ। मैं तो जनताके एक सेवकके रूपमें कह रहा हूँ। मैं तो अपना मस्तक सदैव ही लोकमतके आगे झुकाता आया हूँ। लोग नाना प्रकारकी रोषभरी बातें करते हैं। वह लड़का किसी नीच जातिका है।"

कालू आपेसे बाहर हुआ जा रहा था। वह अभिजितके विषयमें कोई बुराईकी बात सुनना नहीं चाहता था। 'नीच जातिका?' कालू इसे हँसकर उड़ा दे सकता था। इन जातिके घमंडियोंको वह कितना मूर्ख बना चुका था!

"वह तो मेरे पुत्रके समान है।"

मोतीचन्दने उदास होकर अपना सिर हिलाया।

"यह शताब्दी जन-साधारणकी है। उन्हींका मत चलता है। अपन तो जनताके विनीत सेवकमात्र हैं, आप और मैं। अपनी वैयक्तिक भावनायें नहीं चलतीं।"

कालूने इसका उत्तर कठोर मौन धारण करके दिया।

"आपने उसे सड़कपरसे उठा लिया है। वह बहुधा कचरेके ढेरमेंसे लेकर खाते देखा गया था।" मोतीचन्द मंगलकी ओर अंदाजकी दृष्टिसे देखता और बोलता गया।

"हो सकता है वह चमार हो या और किसी अस्पृश्य जातिका।"

"भूखा ब्राह्मण बालक भी तो कचरेके डब्बेमेंसे उठाकर खा सकता है?"

"ब्राह्मण बालक मर जाना अधिक पसंद करेगा।"

"बालक तो सभी मोती जैसे पवित्र होते हैं, उनकी जाति कुछ भी हो।"

मोतीचन्दने फिर एक बार अपना मस्तक हिलाया।

"यही तो कठिनाई है। आप तो उदारचित्त पुरुष हैं। मैं भी वैसा ही हूँ। मुझे याद है, मैकालेने मनुष्य-मनुष्यकी समानताके विषयमें क्या कहा है..." मोतीचन्दने वे शब्द स्मरण करनेका प्रयत्न किया। किन्तु उसे वे याद न आये। अतएव वह जल्दीसे आगे बढ़ा, "जनताकी बात है। वे अन्धकारमें रहते हैं। फिर भी अपने भाग्यका सूत्र उन्हींके हाथोंमें है।"

"कौन एक छोटे-से बालकके पतले जीवन-सूत्रको काट डालना चाहेगा?" कालूने व्यंग्यभावसे कहा।

मोतीचन्दने जड़मस्तिष्क मंगल अधिकारीका सिरसे पैरतक सर्वेक्षण किया। उसने असली बातपर आ जाना ठीक समझा।

"अब हमें नग्न सत्य बोलना पड़ेगा। क्या हम उन सैकड़ों सहस्रों भक्तजनोंको धोखा दे सकते हैं जो अपने मन्दिरमें देव-दर्शनको आते हैं?" फिर मोतीचन्दने अपना स्वर नीचा किया। "यदि ऐसा सोचनेका कारण हो कि इस विषयमें भोली जनताका नायकत्व कुशलतासे करना चाहिए, तो दूसरी बात है।" उसकी पलकें आँखोंके गड्ढोंमें मुँद गईं, और वह कहता गया, "मैं देखूँगा कि इन बेहूदी बातोंका प्रवाह बन्द हो जाय। चन्द्रलेखा उस बालकको बहुत चाहती है, मानो वह उसका भाई हो। इससे अधिक मेरे लिए और क्या कारण चाहिए। मैं उसकी कोमल भावनाओंको कभी आघात नहीं पहुँचने दे सकता।"

मोतीचन्द चला गया और कालू रोषपूर्ण दृष्टिसे उसकी ओर देखता रहा। चन्द्रलेखाकी कोमल भावनाओंकी यह बात! उसकी उल्लू जैसी आँखें आरतीके समय लेखाको जैसे चाटे जाती हैं। उसका जो बाल भी बाँका करनेकी चेष्टा करेगा, कालू उसका गला घोंट डालनेको तैयार है।

उसे मोतीचन्दके मनका ठीक पता एक-दो दिन पश्चात् तब चला जब एक विवाहके दलालने उससे बातचीत की।

"अब आप अपनी कन्याके विवाहसंबंधी प्रस्तावोंपर कब विचार करनेवाले हैं ? अब जब अपवादकी बातें बन्द हो गई हैं तब···"

"सचमुच ?"

"एक और नया प्रस्ताव आया है, और वह सबसे श्रेष्ठ है। वह इस महानगरके एक सबसे अधिक धनी लोगोंमेंसे एककी ओरसे आया है।"

कालू चुपचाप सुनता रहा। उसकी भौंहोंमें रोषके चिह्न बढ़ गये।

"और क्या, स्वयं श्री मोतीचन्दजी।" दलालने उत्सुकतासे देखा और कहता गया, "विवाहके शुभ दिन ही वे अपनी दुलहिनको एक दानपत्र अर्पण करेंगे जिसमें उसे एक बड़ी जीवनवृत्ति और एक तिमंजला महल बैरकपुरवाला दे दिया जायगा।"

"तो उन्हें अब पाँचवीं पत्नीकी आवश्यकता है ?" कालूने अपना स्वर सामान्य बनाये रखा।

"अरे भाई, इसकी आपको कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उनकी वर्तमान पत्नी भी उसी प्रकार चली जायगी जैसे उससे पहलेवाली चली गईं। आपकी पुत्री ही उस महलकी रानी बनकर रहेगी।"

"मेरी पुत्री उस बड़े आदमीके योग्य नहीं है।"

दलाल चिल्ला उठा, "ऐसी बात मत कहिए। वह तो बिना परोंकी अप्सरा है···" उसने गद्गदकंठ होकर अपना स्वर दबा लिया। उसने मालिकके मुखपर गर्जनाका भाव देख लिया था।

"वह उस बड़े आदमीके योग्य नहीं है।" कालू स्पष्ट रूपसे अपने आपको नियंत्रित कर रहा था।

"तो क्या मैं उन्हें यही संवाद सुना दूँ ?"

"हाँ, और तुमसे जितना मिरच-मसाला मिलाते बने वह भी मिला देना।"

२५

चन्द्रलेखाकी अपनी नई प्रतिष्ठा एक अलौकिक कथाके समान थी। एक वर्षसे अधिक व्यतीत नहीं हुआ था जब वह केवल मात्र एक लुहारकी लड़की थी और अपने छोटे-से घेरेमें बन्द थी। एक कठोर एड़ीके दबावसे वह घेरा फूट गया और वह उसमेंसे बाहर निकल पड़ी। फिर उसने अपना दूसरा नया घेरा बना लिया जहाँ वह अपने खोखलेपन और अपनी चोटको छिपाकर बैठ रही। किन्तु इसे वितेनने फोड़ डाला। अब वह अपना जीवन सम्हालनेके योग्य हो गई थी। परन्तु अब एक और विलक्षण घटना घट रही थी।

वह अब एक देवालयमें प्रतिष्ठित थी। लोग भीड़ लगा-लगाकर उसके दर्शनको आते, जैसे मानों उसके मुखपर कोई दिव्य ज्योति छा रही हो। लेखाने अपनेको शीशेमें देखा और उस दिव्य ज्योतिकी खोज की। उसे अपनेमें कोई परिवर्तन दिखाई नहीं दिया। हाँ, कुछ धब्बे अवश्य दिखलाई दिये जिनके कारण उसकी नाक विचित्र-सी हो रही थी। उसे अपने आपपर हँसी आ गई। तथापि उसे अपनी भूमिकामें कुछ मजा-सा आने लगा। उसने अपनी सुन्दर बाँह ऊपरको उठाई, मानो उन दिव्य तारोंकी सौगात पानेके लिए, जो इच्छा मात्रसे उसे मिल सकती थी। यह उसके लिए दूसरा बचाव था—उसकी भूतकालीन पराजयका प्रतिशोध। चन्द्रलेखा, आनन्दरूपी माताके रूपमें मुक्ति पा रही थी।

किन्तु इसका भी एक तनाव उसपर पड़ रहा था। पत्थरकी मूर्ति बनकर सुनना, सब प्रकारकी अनुनय-विनयसे बहरी बनना, देवीका प्रधान गुण था और यही उसे दुखदायी प्रतीत होता था। उसका हृदय देवकी भाँति सौहार्द-पूर्ण था। जब वह किसीके दुःखकी कहानी सुनती

तो उसकी आँखोंमें आँसू भर आते, और वह अपनी वेदना छिपानेके लिए दूसरी ओर देखने लगती थी। उसका मुड़ा मुख देखकर भक्तोंकी आशाओंपर पानी फिर जाता था।

किसी दिन उसमें वह आवश्यक स्थिरता आ जावेगी जिससे वह मानवीय दुखोंसे अविचलित रह सके, क्योंकि सांसारिक क्लेश तो विनश्वर हैं, तथा क्लिष्ट जीवोंको अपने पूर्वजन्मोंके कृत्योंका फल भोगना ही पड़ता है। इससे उनका मल धुल जाता है और वे कृपाके पात्र बन जाते हैं।

डाक्टर फीस लेकर शारीरिक पीड़ाओंका निवारण भले ही कर सके, किन्तु शरीरके परे, यहाँतक कि मनसे भी परे, आध्यात्मिक पीड़ाओंका विचार तो माताजी ही कर सकती हैं। वे ही आत्माकी उत्कृष्ट ज्योतिका स्पर्श करके उसे अधिक दीप्तिमान् बना सकती हैं। समस्त जीवोंके अदृष्ट प्राण वे ही हैं, वे ही हैं उनके आनन्दकी ज्योति और सुखका आधार मन्दिर इस बातमें सतर्क था कि कहीं माताजी अवसरवादियोंके हाथकी कठपुतली न बन जायँ। यह बात स्पष्ट और सबके समझने योग्य शब्दोंमें सब ओर फैल चुकी थी कि माताजी हाड़-मांसकी पीड़ाओं तथा आन्तरिक आघातोंके उपचारमें कोई रुचि नहीं रखतीं।

तथापि इस बातपर स्त्रियोंने कोई ध्यान नहीं दिया। कुछ स्त्रियोंको विचित्र ही वरदान माँगनेकी इच्छा होती। एक धनी मनुष्यकी स्त्री वन्ध्या थी। उसने वरदान माँगा 'मेरी कूँख चल जाय'। वह रोने लगी "हमारी इस धन-सम्पत्तिसे क्या लाभ? हमारे न रहनेपर कौन इसका उपभोग करेगा?"

एक रेलवे क्लर्ककी स्त्री आई। उसकी अवस्था अभी पूरे चालीस वर्षकी भी न होने पाई थी कि वह नौ बच्चोंकी माँ हो चुकी थी। उनमेंसे दो रहे नहीं। अब वह और बच्चे होनेसे बचना चाहती थी। प्रति वर्ष एक बच्चेके बढ़ जानेका उसे भय रहता था। कभी-कभी गर्भपात हो जानेसे वह उस भयसे बच जाती थी। वह दुखी स्त्री रो-रोकर हाथ जोड़े वरदान

माँग रही थी, "माताजी ! मैं कहाँतक इन बच्चोंकी वृद्धिको सहन करूँ जब कि उन्हें खिलाने-पिलाने और पहराने-उढ़ानेके साधन भी हमारे पास नहीं हैं ?"

लज्जित होकर लेखाने उससे अपना मुँह फेर लिया। उसका वह मौन ही उत्तर था। स्त्रीका हृदय टूट गया और वह चली गई।

ये विरोधी अनुभव लेखाको दुखदाई होने लगे। वह अपने पिताके साथ शेरकी पीठपर सवार थी, किन्तु उनके समान निश्चय और धैर्यमें वह अपनी यात्रा नहीं कर पा रही थी। उसकी समस्या उनसे अधिक तीक्ष्ण थी। मन्त्र-मोह अति अल्पकालीन था। लेखाका मानसिक तनाव बढ़ने लगा।

मैं कहाँ जा रही हूँ ? कितनी दूर ? आगे क्या होगा ? ये उसके भयकी चीत्कारें थीं।

अभी भी उसने अपने बाबाके संग्राममें भाग लेना स्वीकार नहीं किया था। बाबाने ब्राह्मण बनकर पुरानी सामाजिक व्यवस्थाको उलट-पुलट कर दिया और उच्च वर्णके बनकर भी अपना विश्वास नहीं खोया। वे अब समाज-व्यवस्थाको छिन्न-भिन्न करनेकी अपेक्षा उसके अंग बनकर बैठ रहे हैं और उसकी ही शक्तिका उपयोग कर रहे हैं। वे उसके नियमोंका चुपचाप पालन करते और भले प्रकार उसके उद्देश्यको पूरा करते जा रहे हैं। उनकी इस प्रवृत्तिसे भेद क्या उस वर्गपर पड़ा जिस वर्गके वे यथार्थमें हैं, या उस वर्गपर जिसमें वे अब सम्मिलित हुए हैं ? नहीं, मेरी समझमें नहीं आता कि बाबा क्या करने जा रहे हैं। यह भी नहीं दिखाई देता कि गत कुछ महीनोंसे उनके अन्तरंगमें क्या हो रहा है। मंगल अधिकारी शेरकी पीठपर बैठे बेचैन थे और अपने ही विरोधी विचारोंसे भयभीत थे। लेखाको उनके मनके भीतरका संग्राम दिखाई नहीं देता था, क्योंकि उसका उनके साथ हार्दिक सम्पर्क नहीं रहा था।

अन्ततः लेखाको प्रतीत हुआ कि उसके बाबाकी परीक्षाका समय समीप आ रहा है। इससे उसे प्रसन्नता हुई। जिस संग्रामका खेल वे इतने

तो उसकी आँखोंमें आँसू भर आते, और वह अपनी वेदना छिपानेके लिए दूसरी ओर देखने लगती थी। उसका मुड़ा मुख देखकर भक्तोंकी आशाओंपर पानी फिर जाता था।

किसी दिन उसमें वह आवश्यक स्थिरता आ जावेगी जिससे वह मानवीय दुखोंसे अविचलित रह सके, क्योंकि सांसारिक क्लेश तो विनश्वर हैं, तथा क्लिष्ट जीवोंको अपने पूर्वजन्मोंके कृत्योंका फल भोगना ही पड़ता है। इससे उनका मल धुल जाता है और वे कृपाके पात्र बन जाते हैं।

डाक्टर फीस लेकर शारीरिक पीड़ाओंका निवारण भले ही कर सके, किन्तु शरीरके परे, यहाँतक कि मनसे भी परे, आध्यात्मिक पीड़ाओंका विचार तो माताजी ही कर सकती हैं। वे ही आत्माकी उत्कृष्ट ज्योतिका स्पर्श करके उसे अधिक दीप्तिमान् बना सकती हैं। समस्त जीवोंके अदृष्ट प्राण वे ही हैं, वे ही हैं उनके आनन्दकी ज्योति और सुखका आधार मन्दिर इस बातमें सतर्क था कि कहीं माताजी अवसरवादियोंके हाथकी कठपुतली न बन जायँ। यह बात स्पष्ट और सबके समझने योग्य शब्दोंमें सब ओर फैल चुकी थी कि माताजी हाड़-मांसकी पीड़ाओं तथा आन्तरिक आघातोंके उपचारमें कोई रुचि नहीं रखतीं।

तथापि इस बातपर स्त्रियोंने कोई ध्यान नहीं दिया। कुछ स्त्रियोंको विचित्र ही वरदान माँगनेकी इच्छा होती। एक धनी मनुष्यकी स्त्री वन्ध्या थी। उसने वरदान माँगा 'मेरी कूँख चल जाय'। वह रोने लगी "हमारी इस धन-सम्पत्तिसे क्या लाभ? हमारे न रहनेपर कौन इसका उपभोग करेगा?"

एक रेलवे क्लर्ककी स्त्री आई। उसकी अवस्था अभी पूरे चालीस वर्षकी भी न होने पाई थी कि वह नौ बच्चोंकी माँ हो चुकी थी। उनमेंसे दो रहे नहीं। अब वह और बच्चे होनेसे बचना चाहती थी। प्रति वर्ष एक बच्चेके बढ़ जानेका उसे भय रहता था। कभी-कभी गर्भपात हो जानेसे वह उस भयसे बच जाती थी। वह दुखी स्त्री रो-रोकर हाथ जोड़े वरदान

माँग रही थी, "माताजी ! मैं कहाँतक इन बच्चोंकी वृद्धिको सहन करूँ जब कि उन्हें खिलाने-पिलाने और पहराने-उढ़ानेके साधन ही हमारे पास नहीं हैं ?"

लज्जित होकर लेखाने उससे अपना मुँह फेर लिया। उसका यह मौन ही उत्तर था। स्त्रीका हृदय टूट गया और वह चली गई।

ये विरोधी अनुभव लेखाको दुखदाई होने लगे। वह अपने पिताके साथ शेरकी पीठपर सवार थी, किन्तु उनके समान निश्चय और धैर्यसे वह अपनी यात्रा नहीं कर पा रही थी। उसकी समस्या उनसे अधिक तीक्ष्ण थी। मन्त्र-मोह अति अल्पकालीन था। लेखाका मानसिक तनाव बढ़ने लगा।

मैं कहाँ जा रही हूँ ? कितनी दूर ? आगे क्या होगा ? ये उसके भयकी चीत्कारें थीं।

अभी भी उसने अपने बाबाके संग्राममें भाग लेना स्वीकार नहीं किया था। बाबाने ब्राह्मण बनकर पुरानी सामाजिक व्यवस्थाको उलट-पुलट कर दिया और उच्च वर्णके बनकर भी अपना विश्वास नहीं खोया। वे अब समाज-व्यवस्थाको छिन्न-भिन्न करनेकी अपेक्षा उसके अंग बनकर बैठ रहे हैं और उसकी ही शक्तिका उपयोग कर रहे हैं। वे उसके नियमोंका चुपचाप पालन करते और भले प्रकार उसके उद्देश्यको पूरा करते जा रहे हैं। उनकी इस प्रवृत्तिसे भेद क्या उस वर्गपर पड़ा जिस वर्गके वे यथार्थमें हैं, या उस वर्गपर जिसमें वे अब सम्मिलित हुए हैं ? नहीं, मेरी समझमें नहीं आता कि बाबा क्या करने जा रहे हैं। यह भी नहीं दिखाई देता कि गत कुछ महीनोंसे उनके अन्तरंगमें क्या हो रहा है। मंगल अधिकारी शेरकी पीठपर बैठे बेचैन थे और अपने ही विरोधी विचारोंसे भयभीत थे। लेखाको उनके मनके भीतरका संग्राम दिखाई नहीं देता था, क्योंकि उसका उनके साथ हार्दिक सम्पर्क नहीं रहा था।

अन्ततः लेखाको प्रतीत हुआ कि उसके बाबाकी परीक्षाका समय समीप आ रहा है। इससे उसे प्रसन्नता हुई। जिस संग्रामका खेल वे इतने

समयसे हर्षपूर्वक खेल रहे हैं वह अब सच्चे संग्राममें परिवर्तित होनेवाला है। उस मन्दिरकी कहानीका अन्तिम अध्याय लिखा जा रहा है—उस अनाथ बालकके भाग्यके द्वारा।

लेखाका अपना निश्चय सुस्पष्ट था, जिससे वह एक इञ्चभर भी हटना स्वीकार नहीं करेगी। क्या आनन्दरूपी माता एक चीथड़ोंकी गुड़िया मात्र है और उसे सामान्य मनुष्यके समान भी अपने इच्छानुसार चलनेकी स्वतंत्रता नहीं है? वह जित्‌के लिए लड़ना कभी न छोड़ेगी। वह उस बालकको कदापि अपनेसे पृथक् नहीं करेगी, चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय।

किन्तु बाबाका रुख क्या रहेगा? मन्दिरके महन्त एक व्यक्तिमात्र तो हैं नहीं? वे तो समाजकी मूर्तिमान् नियमावली हैं। क्या वे उस नियमावलीके विरुद्ध जा सकेंगे? क्या वे अपने ही अंगका विच्छेद कर सकेंगे?

केवल जित् ही उसकी चिन्ताका विषय हो, सो बात नहीं। मोतीचंदके साथ विवाह करनेका प्रस्ताव भी था जिसे बाबाने घृणापूर्वक ठुकरा दिया था। लेखाने जब वह बात सुनी तो उसके गाल जल उठे। वह सम्पत्तिवान् चार पत्नियोंवाला बूढ़ा कौआ! उसकी मोटी नाकसे निरन्तर चूनेवाले पसीनेके साथ उसका सब धर्म भी बाहर बह गया है। प्रतिष्ठा और धर्मका गौरव उसकी एक-एक साँसके साथ निकलते हैं! उसे अपना शत्रु बना लेना अपने विनाशकी तैयारी करना नहीं तो और क्या है?

बंगालकी दस हजार कन्यायें ऐसे सुसम्पन्न पतिके लिए देवताओंको मनाती हैं। किन्तु लेखा अपने स्वभाव और अपनी आवश्यकताओंमें उनसे भिन्न है। उसे जीवनकी इन अच्छाइयोंकी कोई लालसा नहीं। उसके तनपर आभूषण नहींके बराबर और वह केवल सीधे-सादे सूती वस्त्र ही पहनती थी। शेष वस्तुयें तो उसकी अनिच्छासे उसके सिरपर भारके समान लाद दी जाती थीं।

बस, यही सच्ची चन्द्रलेखा थी। वह चन्द्रलेखा सच्ची नहीं थी—जो

एक अलौकिक कथाकी नायिका बन गई थी और जिसपर दिव्य ज्योतिका प्रकाश था। हाँ, कभी-कभी, सौमें एक बार अवश्य वह दैवी आलोक स्वीकार कर लेती थी। ऐसा ही हुआ उस बार, जब एक युवती अपनी बाँहोंमें एक बीमार बच्चेको लेकर आई।

वह आई एक उत्सुक माताकी साधारण प्रार्थना लेकर और सदाकी भाँति लेखाने उससे अपना मुँह फेर लिया। किन्तु तुरन्त ही उसमें एक भावावेग आया और वह उस एक वर्षके बालककी ओर आँखें फाड़-फाड़-कर देखने लगी। शीघ्र ही उसके मुखपर मन्द मुस्कानकी आभा छा गई और आनन्दरूपी माताने वरद मुद्रामें अपना हाथ उठाया। उसकी कलाईपरकी काँचकी चूड़ी भी अपनी ललाई सहित दमक उठी!

उस युवती माँकी हर्षसे साँस रुक गई। उसे कैसे यह वरदान मिल गया? उसका बालक बच गया।

"माताजी! आपके चरणोंकी धूलमें अमृत है।" वह स्त्री चिल्ला उठी और उसने बालकको जमीनपर लिटा दिया। लेखाने बालकके ज्वर-भरे कपालको अपने पैरके अँगूठेसे छू दिया। उसकी आँखोंकी कालिमाकी गहराईमेंसे एक अज्ञात शक्ति झाँक उठी। उसके कृपापूर्ण मुखपर मुस्कानकी रेखा कुछ देर टिकी रही।

दूसरे दिन दोपहरके पश्चात् जब वह अर्धनिद्रामें लेटी हुई थी तब उसे कानोंपर सड़कपरसे रोने चिल्लानेकी झनक पड़ी। वह आँखें खोलकर सुनने लगी। दरवाजा खुला और रसोइन बामनी भी दौड़कर उसके पलंगके पास आई।

"मत सुनिए इसे', बामनी आग्रह करने लगी। वह व्याकुल थी। "यह बात आपके कानों तक पहुँचने योग्य नहीं है।"

"क्या बात है?" लेखा जल्दीसे उठकर बैठ गई। "जित्? जित् कहाँ है?"

"जित् भला चंगा है और रसोईघरमें गरम दूधका कटोरा पी रहा है।

"तब और क्या ?"

बामनी उत्तरके लिए हड़बड़ाई।

"वह स्त्री! वह जो आपके पास अपने बीमार बच्चेको लेकर आई थी!"

"वह बीमार बच्चा जिसे मैंने आशीर्वाद दिया था?"

बामनीने सिर हिलाकर स्वीकार किया। उन लोगोंमें कोई श्रद्धा नहीं है। प्रार्थना उनकी जीभपर होती है, हृदयमें नहीं। उनकी भलाईकी क्या आशा है? मूर्ख हैं ऐसे लोग जो मन्दिरमें वरदान माँगने आते हैं। क्या इस महानगरीमें उन्हें कोई डाक्टर नहीं मिलता?"

"वह बच्चा?" लेखा साँस रोककर उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगी।

"चला गया वह, इसी रातको।"

लेखा मुँह बाये रह गई। वह बिस्तरपरसे उठी और दौड़कर छज्जेपर पहुँची। बामनी उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई चिल्ला रही थी—"आप मत देखिए। आपके देखने··"

लोगोंका झुण्ड जमा था जिसके बीच वह स्त्री विह्वल होकर अपनी छाती पीटती और चिल्लाती थी "हे मेरे बेटा! मेरा नयनतारा! कहाँ गया तू? मेरा इकलौता बेटा? मेरा बीजू··" किन्तु उसके विक्षिप्त मुख-पर पीड़ाके अतिरिक्त कुछ और भाव भी था। उसकी रक्तभरी लाल आँखें उस छज्जेकी ओर उठीं। उनमें हिंस्र पशु जैसी क्रूरता थी। उसने लेखाको छज्जेके कठघरेपर झुका देखा और उसकी भरी हुई घृणा और क्रोधका प्रवाह फूट निकला।

"अरी डाकिन" वह चिल्ला उठी। "तूने मेरे बेटेको खा लिया! अरी भूतनी! तू साधुनीके कपड़े पहनकर बैठी है, और अपनेको आनन्दरूपी माँ कहती है? अरे तेरी ये आँखें फूट जायें, तेरी कूँख बुझ जाय। तेरा एक-एक अङ्ग सड़कर गल जाय। मैं तुझे शाप देती हूँ। मेरे शिशुको खानेवाली डाकिन!"

उस स्त्रीकी बाहें ऐसी चल रही थीं जैसे वे उसके पंख हों, और वह

उनके द्वारा हवामें चील-सी उड़कर अपने नखों और चोंच द्वारा लेखाको नोच खानेका प्रयत्न कर रही हो। लेखा काँप उठी और दौड़कर अपने कमरेमें जा घुसी। उसके कानोंमें उस पगलीकी चिल्लाहट गूँजती रही।

"वह स्त्री शोकसे पागल हो गई है।" बामनीने गुस्सा होते हुए तथा लेखाको समझाते हुए कहा। "यह सब उसीका अपना दोष है। उसमें कोई धर्मविश्वास नहीं है। केवल ओंठ चलाकर प्रार्थना करनेसे क्या मिल सकता है?"

तथापि बामनी अपने हृदयमें सच्ची बात जानती थी। वह वियोगिनी स्त्री डाक्टरकी फीस चुका नहीं सकती थी। इसीलिए उसे माताजीपर विश्वास लाना पड़ा। विश्वासकी जड़ें निस्सहायतामेंसे भी फूट सकती हैं।

"जा, बामनी!"

लेखा आकर्षित थी। वह खिड़कीमेंसे गूँजकर आती हुई उसी ध्वनिको सुनती रही। उसे ज्ड़जड़ी लग उठी।

"मैं इसी योग्य हूँ। मैंने एक बालकको मार डाला है। मुझे फाँसीकी सजा मिलनी चाहिए।"

ऐसा लगा जैसे वह स्त्री घण्टों पश्चात् वहाँसे चली हो। भीड़के लोग उदास मुख होकर उसका चीत्कार सुनते रहे। वे एक-दूसरेसे उसके सम्बन्धकी बातें सुनते-समझते और उनकी टीका-टिप्पणी करते थे। कुछने उसी स्त्रीको दोषी ठहराया। माताजीने कब किसीको अच्छा करनेका वचन दिया है? दूसरे इस बातसे उद्विग्न थे कि क्या चालाक और ढोंगी लोगोंको सीधे और भोले लोगोंके विश्वासके आधारपर व्यापार करने दिया जाय? देशभर छल-छिद्रसे भर रहा है। दायें देखो, चाहे बायें, सब ओर शुद्धिकी आवश्यकता है—सच्ची शुद्धिकी।

अन्तमें एक बूढ़ी स्त्री लाठी टेकती हुई भीड़मेंसे सामने आई।

"बेटी", वह बोली। "चल, मेरे घर चल। बता तू कहाँ रहती है। जो बीत गई, सो जाने दे।"

"हाँ, हाँ।"

"मंगल अधिकारी इतनी बात तो भली-भाँति जानता है कि मैं उसे एक डंठलके समान तोड़कर फेंक सकता हूँ।" मोतीचन्दने डंठल तोड़ फेंकनेका अभिनय किया।

"तुझे इन सब बातोंका पता कहाँसे चला?" लेखाने बामनीसे उसकी बात समाप्त हो जानेपर पूछा।

बामनीको इससे दुःख हुआ। मन्दिरमें कोई बात हो और उससे छिपी रह जाय?

"यदि उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई तो मोतीचन्द यह बात उड़ाकर अपना बदला लेगा कि वह बालक जातिका चमार है। उसे कोई दया-मया थोड़े ही है।"

लेखा पीली पड़ गई। उसका हृदय जित्के संबंधमें आशंकासे धड़कने लगा। उसके पास सिवाय उस छोटे-से बालकके और बचा ही क्या है?

वह झट अपने कमरेमें चली गई और पलँगपर लेट रही। उसकी आँखोंमें बन्द पलकोंके भीतर आँसू भर-भर आ रहे थे।

जित् उसके कमरेमें आया और उसकी ओर देख-देखकर घबराने लगा। उसने अपनी माँको बहुधा इसी प्रकार रोते देखा था, विशेषतः जब वह उसको खिलाने-पिलानेमें अपनेको असमर्थ पाती थी। जित् उसे सान्त्वना देता था "माँ, मुझे भूख नहीं लगी। माँ..." और उसकी माँ उसे अपनी छातीसे चिपका लेती थी। जब वह शान्त हो जाती तब जित् लड़खड़ाते हुए कचरेके डब्बोंके पास जाता और जो कुछ खानेकी वस्तुयें उनमें दूसरे भुखमरोंसे बच जातीं उन्हें ढूँढ़कर निकालने लगता। जो कुछ उसके हाथ लग जाता उसे वह अपनी माँके साथ बाँटकर खाता, क्योंकि माँ भी तो भूखी थी।

जित् पलंगके समीप आकर खड़ा हो गया और फिर चुपचाप लेखाके तकियेमें गड़े मुँहकी ओर देखता रहा।

"मुझे भूख नहीं लगी, माँ!"

लेखाने अपना सिर उठाया। वह समझ नहीं सकी कि बालक क्या कह रहा है। किन्तु उसे उसके मुखपर चिन्ताकी छाया स्पष्ट दिखाई दी। उसने उसे पहले कभी माँ कहकर नहीं पुकारा था। उसने उसके मुखको अपनी छातीसे चिपका लिया। इस विधिको जित् भलीभाँति समझता था। यही तो उसकी माँ किया करती थी।

फिर लेखाके मनमें वह भयंकर विचार आ उपस्थित हुआ। उसका पहला आघात तो इतना तीव्र हुआ कि वह साँस भी न ले सकी। यदि वह मोतीचन्दकी बात मान ले तो कैसा? यदि वह उससे अपना विवाह कर ले तो क्या होगा?

जित् वहाँसे खिसक गया, और थोड़ी ही देरमें वह बड़ा पका आम अपने हाथमें लिये वापिस लौटा।

"खा ले, माँ।" वह आम देते हुए आग्रह करने लगा।

यदि मोतीचन्दसे विवाह कर लिया जाय तो जित् सुरक्षित रहेगा। वह उससे छिनकर अनाथालयमें भरती नहीं किया जायगा। वह स्वयं भी माताजीकी परतंत्रतासे मुक्त हो जायगी, और बाबा भी अपने मन्दिर-में शान्तिसे रह सकेंगे।

यथार्थतः बात कोई ऐसी भयंकर तो है नहीं।

मोतीचन्दसे विवाह! उसे उसका दुबला बकरे जैसा मुख याद आया जिसमें नाक और मूँछके सिवाय और कुछ नहीं। वह मुझपर मोहित क्यों हो गया है? उसकी अपार धन-सम्पत्तिने उसके बहुपत्नीसम्बन्धी दोषको एक धब्बामात्र बना दिया है। वह अपने इच्छानुसार चाहे जितनी पत्नियाँ मोल ले सकता है!

उसकी दृष्टि उतनी ही उद्वेगजनक है जितने कि उसके हाथ मेरे शरीरपर होंगे! लेखाको उद्वेग हो उठा। केवल उसके पलंगके पास खड़े हुए जित्ने उसे अपने आपमें स्थिर रखा।

"खा ले माँ ..." वह छोटी-सी व्याकुल ध्वनि आशंकासे परिपूर्ण थी।

लेखाके ओंठोंकी संपुट बँधी हुई थी। इस जीवनसे क्या आशा की

२६

लेखाने इतिहासकी पुस्तकोंमें प्राचीन कालकी एक दण्ड-प्रणालीके विषयमें पढ़ा था। अपराधीको एक ताजे बैलके चमड़ेमें सीं दिया जाता था। ज्यों-ज्यों वह चमड़ा सूखकर सिकुड़ता जाता था, त्यों-त्यों अपराधी-का दम घुटता जाता और अन्तमें वह मर जाता था। लेखाको अपनी आनन्दरूपी माताकी भूमिकामें उसी उचित दण्डका ध्यान आने लगा। उसे मुक्ति तो नहीं मिली, दण्डका पता चला। उसे अपनी साँसमें भी एक दुर्गन्धका अनुभव होने लगा। और वह उससे उसी प्रकार व्यथित होने लगी जैसी उस वेश्यागृहमें।

उस मन्दिरके कृपापूर्ण वरदानका लेखापर वही प्रभाव क्यों पड़ा जैसा उस पापके घरका? वह घर उसके शरीरको अपवित्र करना चाहता था, किन्तु यह मन्दिर उसके अन्तरङ्गमें प्रविष्ट होकर पापका विस्तार कर रहा था।

किन्तु उसके देवत्वमें केवल उसकी अपनी भावनायें मात्र हों सो बात नहीं। जो भोले-भाले पुरुष और स्त्रियाँ उसके पास अपने भरे हृदय और चमकती आशायें लेकर प्रार्थना करने आते थे, उनसे भी तो छुट-कारा मिलना कठिन था। वह स्वयं किसी दूसरेके हाथोंकी कठपुतली-मात्र थी—उस आनन्दरूपी माताके असत्य किन्तु दुर्निवार हाथोंकी।

उसे उस माताका विनाश करना आवश्यक था।

बस, इसी मनोभावनाके बीच उसने रसोइन बामनीकी धीमी घरघराती आवाजमें गुप्त बात सुनी।

"उसने पाँच सौ रुपयाका वचन दिया है।"

बामनीकी, शब्दोंको उनके प्रसंगसे अलग करके, कहनेकी अपनी एक शैली थी।

"मोतीचन्द" बामनीने बात समझाई "वह उस विवाहके दलाल ब्राह्मणको उसके मेहनतानेके पाँच सौ रुपया देगा।"

"विवाहका दलाल !"

बामनीने विस्तारपूर्वक समझाया। मोतीचन्दने उस ब्राह्मणसे गुप्त बातचीत की है।

"मेरा विवाह मंगलकी कन्यासे तय करनेका प्रयत्न करो। उस इसकी भलाई समझाओ। यदि वह नहीं समझता तो'' 'बाप-बेटी दोनोंने अपना हृदय उस अनाथ बालकपर लगा दिया है, जिसका नाम उन्होंने अभिजित् रखा है। है कि नहीं? वही हमारे हाथमें गिरवी है। उसका भाग्य, और उसके द्वारा उन दोनोंका भाग्य मेरी मुट्ठीमें है।"

"किन्तु माताजी ? उनकी विधिवत् प्रतिष्ठा ?" उस ब्राह्मण दलालने घबराते हुए पूछा। "उसके विषयमें सभी जानते हैं। एक सप्ताहमें ही तो यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित होनेवाली है।"

"दुर्भाग्यसे, वह तो अब रोकी नहीं जा सकती। उसके लिए वह समाचारपत्र 'स्वदेश' जिम्मेदार है। उन्हीं लोगोंने वह कहानी बना डाली और हम सभी उस जालमें फँस गये। यथार्थतः चन्द्रलेखा एक मामूली लड़की है।"

"आनन्दरूपी माताकी प्रतिष्ठासे तो मन्दिरकी ख्याति और भी बहुत बढ़ जाती।" ब्राह्मणने कुछ पश्चात्तापके साथ कहा।

"यह तो सच है।"

"बाघ बजारके पुराने मन्दिरके पुजारी बुरी-भली बातें कहते हैं। वे पूछते हैं 'इस 'स्वदेश' पत्रका मालिक कौन है?' और वे छिपी सार्थकतासे उत्तर देते हैं 'सर अबलाबन्धु।'

मोतीचंदने अपना सिर हिलाया। "अब जब हम मूर्ख बन ही चुके, तब कोई शिकायत नहीं कर सकते। अब बचनेका सबसे अच्छा उपाय है, इस गुत्थीको काट फेंकना। किन्तु इस बातको गुप्त रखना। है कि नहीं?"

फिर भी वह इस विचारसे सकुचाई। उसे ऐसा लग उठा जैसे मानो वह एक अजगरके साथ किसी कमरेमें बन्द की जा रही हो।

पश्चात् लेखाने रसोइन बामनीसे मोतीचन्द और उसकी पत्नियोंके सम्बन्धमें पूछताछ की।

"उसकी वर्तमान पत्नी सोने जैसे अङ्गोंकी है और वह उसे अपनी मुट्ठीमें रखती है। उसीने उसे एक नई बहू खोजनेके लिए कहा है।"

"यह तो बड़ी विलक्षण बात है।"

बामनी प्रोत्साहित होकर विवरण देने लगी।

"राधा, यही उसका नाम है। एक दिन देवीके मन्दिरमें एक योगी महाराजके दर्शनोंको गई। योगी अभी-अभी आये हैं, यह बात उसे किसी-ने बतलाई थी। वे किसी भी पुरुष या स्त्रीके मुखकी ओर देखकर ही उसके भूत, वर्तमान और भविष्यकी बात बतला सकते हैं। ये सब बातें तो कपालकी अदृश्य रेखाओंमें छपी रहती हैं।"

"उसने राधाको क्या बतलाया?"

"एक बड़ी भयंकर बात। वह छः महीनोंमें विधवा हो जायगी।"

"और राधाने उसपर विश्वास कर लिया?"

"राधा बड़ी साहसी स्त्री है। वह किसी छलीके जालमें फँसनेवाली थोड़े है। उसने योगीको फटकारा। उसने कहा 'तू लँगोटीवालेके वेषमें मगर है।' तब योगिराजने उसके साहसको भंग किया, यहाँतक कि राधा रोती हुई उनके चरणोंमें गिर पड़ी।"

"यह कैसे हुआ?"

बामनी बात रोक-रोककर कहने और कहानीको टुकड़े-टुकड़े करके बतलानेकी कलामें विश्वास रखती थी।

"यही तो उस मनुष्यका चमत्कार है। ऐसे योगी अपने इस नगर-की पापभरी वायुको सूँघने बहुत कम आते हैं। वे हिमालयकी चोटियों-पर रहते हैं और मुट्ठी-मुट्ठी बरफ खाकर जीते हैं। ये योगी महाराज काली मन्दिरकी यात्रा भरके लिए आये। सुना है अब वे चले गये।"

"उसने राधाके साहसको कैसे तोड़ा ?"

"योगिराज लाल नेत्रोंसे राधाके मुँहकी ओर दृष्टि बाँधे रहे। उन्होंने उसके पूर्वजन्मकी बातें बतलाईं। उन्होंने ऐसी गुप्त बातें भी बतलाईं जो दूसरा कोई मनुष्य जान नहीं सकता।"

"सचमुच !"

"और वे उसपर बहुत क्रुद्ध भी हुए, क्योंकि वह अपने मासिक धर्मकी अवस्थामें ही उनके पास आ गई थी। इस अवस्थामें स्त्री अपवित्र होती है। वह उसका तीसरा दिन था। यह बात योगीजीने भला कैसे जान ली ?"

बामनीने कुछ देर चुप रहकर उनकी शक्तिके चमत्कारको गहरा बनाया। "राधाने उनके पुण्य चरणोंको पकड़ लिया। वह विधवापनके शापसे बचानेके लिए याचना करने लगी। योगिराजको उसपर दया आ गई। उनका क्रोध लुप्त हो गया। 'एक उपाय है।' उन्होंने कृपा पूर्वक कहा। 'किन्तु मार्ग कठिन है। उससे तेरा हृदय विदीर्ण हो जायगा, बेटी' !"

"बाबा !" वह चिल्ला उठी। 'मेरे पतिका जीवन मुझे अन्य सब बातोंसे बड़ा है। बतलाइए मुझे क्या करना है।'

"जब योगीने उपाय बतलाया, तब राधा दंग होकर बैठ रही। उसके मुखपरसे टपटप आँसू टपकने लगे। उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की 'बाबा ! क्या कोई दूसरा उपाय नहीं है ?'

"योगीने अपना हाथ उसके सिरपर रख दिया। 'बेटी, दूसरा कोई उपाय नहीं है। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि वे तुझे अपने हृदय-विदारक कर्तव्यको पालन करनेका बल दें। किसी अन्य स्त्रीके कपालकी सुहाग-रेखा—बस, वही तेरे पतिकी आयु बढ़ा सकती है। अतएव उसे दूसरा विवाह करना चाहिए। यदि यह नहीं हुआ, तो तुझे अपनी माँगका सिन्दूर पोछ डालना पड़ेगा। अच्छी तरह सोच-विचार ले, और समझदारीसे काम कर।'

"राधा घर लौट आई। उसने एक सप्ताह विचार करते-करते बिता दिया। अन्ततः उसने अपने मनमें निश्चय कर लिया और अपने पतिसे बातचीत की। उसने उनसे याचना की कि वे अपना नया विवाह कर लें। वे सुनकर हँस पड़े। वह रोने लगी। वे भी रोने लगे। उसने उनके पैर पकड़ लिये और फूट-फूटकर रोने लगी। वे उससे भी अधिक रोये और सिर हिल-हिलाकर अस्वीकार करते रहे। यही बात कई दिनों तक चलती रही। घरके नौकर-चाकर सभी इस बातको जान गये। अन्तमें उन्हें स्वीकार करना पड़ा। वे किसी नयी बहूकी खोज करेंगे। इस बातकी उन्होंने अपने हाथमें गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा कर ली है।"

लेखा बड़े ध्यानसे सुनती रही। उसके चारों ओरके विशाल अंध-कारमें उसे एक ओर कुछ प्रकाशकी चमक दिखाई दी। उसे केवल अपना सौभाग्य बेचना पड़ेगा, वह सुहाग जो भाग्यने उसके कपालपर लिख दिया है। उसे अपने इच्छानुसार चलनेकी छूट रहेगी। राधा अपने स्थानसे हटाई नहीं जायगी, वह राधा जो अपने पतिको मुट्ठीमें रखती है।

क्या उसने मोतीचन्दके साथ अन्याय किया है? क्या उसके मुखपर कोई ऐसी बात पढ़ ली है, जो यथार्थतः सत्य नहीं है?

यही बात है। उसकी उत्सुक कल्पनाने उसकी आँखोंको धोखा दिया है।

उस दिन शेष कालके लिये लेखाके मनका बोझ हलका हो गया। माँगमें सौभाग्यवतीका सिन्दूर भरकर वह स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगी, जैसा वह रहना चाहे वैसे रहनेकी पूरी छूट। यही तो वितेनकी रीति है।

और उस दिन बारंबार चन्द्रलेखा हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर प्रार्थना करती रही—वितेन अपने समाज-सेवाके कार्यमें सुखी रहें। वे अपने जीवनमें जो कुछ ढूँढ़ रहे हैं वह प्राप्त करें। वे सच्चे योद्धा बनें।

इस प्रार्थनाने उसकी निराशामें कुछ आशाका संचार किया और उसे बल और शान्ति प्रदान की। गत तीन दिनसे उसने मन्दिर जाना

छोड़ रखा था। आज संध्याकी आरतीके लिए जायगी और शान्त रहेगी। मोतीचन्द भी वहाँ होगा। वह उसके मुखकी ओर दृष्टिपात करेगी, प्रसन्न दिखलाई देगी और अपने साथ अपना लेखा-जोखा ठीक कर डालेगी।

पूजा प्रारम्भ हो गई, किन्तु मोतीचन्द अभीतक नहीं आया। लेखाने आसपास देखा और अपनी भावनाओंका पर्यवेक्षण किया। यहाँ इस मन्दिरमें उसने अचिन्त्य महिमा प्राप्त की है। यह महिमा उसे अग्निकी भाँति जलाये डालती थी। किन्तु जब उसने उसके परित्याग करनेका निश्चय कर लिया, तब वह उसकी ओर बिना किसी आवेशके देख सकती है।

कोई भी ढोंगी स्त्री इस मन्दिरसे अपना लाभ उठा सकती थी। वह गौरवकी वेदीपर प्रतिष्ठित होकर अपनी आँखोंमें दया और मुखपर रहस्य-पूर्ण आध्यात्मिक ज्योति धारण करके बैठी रह सकती थी!

किन्तु लेखा ऐसी दिव्य भूमिकापर अभिनय करनेके योग्य नहीं थी। वह बहुत ही सांसारिक और अत्यधिक मानवीय थी।

उसने शून्य हृदयसे अपनी दृष्टि पूजामें अनुरक्त भक्तोंपर डाली। मोतीचन्द अपने सदाके स्थानपर बैठा था। लेखाने उसकी दृष्टिसे अपनी आँख चुरा ली। उसमें वह घृणाका भाव फिर उभर आया था। एक अल्प क्षेपकमें उसने एक नये मोतीचन्दके निर्माणका प्रयत्न किया था। किन्तु अब वह मूर्ति टूट-फूटकर गिर पड़ी थी।

यह सब होनेपर भी लेखा पराजय स्वीकार नहीं करेगी। उसे इससे अच्छा फाँसी लगानेका रस्सा नहीं मिल रहा था। अपनी फाँसी? क्यों? क्यों?

वह जीवनमें अपना स्थान ग्रहण करेगी। वह अपना अस्तित्व नहीं खोयेगी। स्वयं मोतीचन्दको समर्पित करके वह अपने पिताके प्यारका ऋण भी चुका देगी और अन्ततः स्वतन्त्र होनेका अधिकार भी प्राप्त कर लेगी।

उसके सम्मुख जीवन है, मृत्यु नहीं। उसमें एक नया बल आ गया, एक नई चेतना जिसके द्वारा वह अज्ञात भविष्यकी चुनौतीका डटकर

सामना कर सकती है।

पश्चात् उसी दिन रात्रिको उसने अपना निर्णय अपने पिताको सुना दिया। वे सुनकर अवाक् रह गये।

"यह बात तू सोच ही कैसे सकी ?" कालूने दुखके साथ पूछा। "वह बूढ़ा अजगर जो अपनी चार पत्नियोंको खाये बैठा है···"

"···कोई योग्य युवक, दस हजारमें एक! घुग्घू जैसी आँखें लड़कीके मुखको खाये जा रही हैं! तीन छोटे सुअर, थैले जैसी आँखोंवाले! उनके ऊपर उलटा हाथी···"

"तू चाहती है कि मैं इसी मन्दिरमें गड़ा रहूँ? सदाकाल? चन्द्रलेखा! क्या तुझे फिर बतलाना पड़ेगा कि मैं सदैवसे क्या चाह रहा हूँ?"

"मेरा किसी एक ब्राह्मणसे विवाह कर देना, यही न?" लेखाके स्वरमें आवेग था। "जिस व्यक्तिके प्रति मेरे मनमें आदर-भाव है उसके साथ मैं वह छल नहीं खेल सकती?"

इन शब्दोंने कालूको उसकी पुत्रीके मनका भाव स्पष्ट दिखला दिया। वह मोतीचन्दके साथ अपना विवाह कर सकती है, किन्तु उसके प्रति उसके हृदयमें कोई आदर-भाव नहीं हो सकता। वह एक ब्राह्मण, मोतीचन्दको धोखा दे सकती है, शान्त हृदयसे।

वह ऐसे बोल रही थी मानो उसने अपने पिताके विचारोंको पढ़ लिया हो।

"आपको यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए। अन्ततः तो मैं भी आपके संग्राममें आपके साथ रहूँगी। उस घमंडी पुरुषको एक कुजात पत्नी मिलेगी। वह उसके हाथका दूषित अन्न खायेगा। फिर···" लेखा लज्जासे हिचक गई। किन्तु उसके मुखपर कठोर संघर्षकी आभा छा गई थी। "फिर उसकी दुर्दशाकी पूर्तिके लिए पुत्र उत्पन्न होगा।"

"चन्द्रलेखा!" कालू कराह उठा।

"क्या आपने मुझसे यही अपेक्षा नहीं की? क्या आपको इसके लाभ

दिखाई नहीं पड़ रहे ? मुझे एक धनी पति मिल जायगा ! आप अपने मन्दिरसहित सुरक्षित हो जावेंगे ! जित् अपने पास रहेगा, एक ब्राह्मण बालक !"

अभिजित्, एक ब्राह्मण बालक। क्या उसे आग और लोहेके साथ ईमानदारीसे काम करनेवाले लुहारोंकी लम्बी वंशावलीके हाथोंकी कारीगरीकी विरासत नहीं मिलना है ?

"किसी दिन मेरा पति मेरे ही मुखसे सच्ची बात सुन लेगा—मेरे ओंठोंसे सारी बातें। वह कितना जलेगा ! और वह सर्वथा विवश होगा ! अपनी लज्जाको वह संसारके सम्मुख किस प्रकार उघाड़ कर बतलावेगा ?"

कालू कुछ बुदबुदाया; किन्तु लेखा बिना उस ओर ध्यान दिये कहती गई।

"बात बिल्कुल सीधी और सरल है। आप चिन्ता छोड़ दें। आप हर्ष मनायें। विवाहकी तैयारियोंमें लग जायँ। यज्ञकी बात छोड़नेका तो अब समय रहा नहीं। कठिनाईसे एक सप्ताहमात्र शेष रहा है। निमंत्रण सब ओर चला गया है। तो यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित की जाय और आनन्द-रूपी माताकी प्रतिष्ठा भी की जाय। मैं इस मन्दिरके नाटकके उस दृश्यको रुचिपूर्वक देखूँगी, और फिर अगले अंकमें प्रवेश करूँगी।"

"सुन तो, चन्द्रलेखा···"

कालूकी पीड़ाको एक क्रोधका झोंका उड़ा ले गया। उसके मुखपर ऐसी भीषणता छा गई जैसी लेखाने इससे पूर्व कभी नहीं देखी थी। उसके नकुए फड़क रहे थे; उसकी आँखें फट रही थीं। लेखा एक क्षणके लिए भयभीत हो उठी। फिर वह हँस पड़ी, मानो उसे कोई व्याकुलता नहीं हुई।

"सोनेका समय हो गया, बाबा !" वह वहाँसे निश्चयके भावसहित मुड़ी। "अब सो जाइए, सब ठीक हो जायगा।" उसका स्वर रुक गया, आकस्मिक कंठरोधसे। चलते-चलते वह कह गई "हाँ, बाबा, सब ठीक हो जायगा।"

उस दिन प्रातः पुण्य ब्राह्म मुहूर्तमें ही यज्ञ आरम्भ होनेवाला था। उससे पहले दिन ही उसकी समस्त तैयारी कर ली गई थी। घीके एक सौ पीपे रेलकी एक वैगनमें भरे आकर रख दिये गये थे। सोमवल्लियोंके अगणित पुञ्ज भी आ गये थे। यज्ञका उद्घाटन वेदीपर अग्निको प्रज्वलित करके उसमें अति दुष्प्राप्य शुद्ध घृतकी आहुतियोंके द्वारा हुआ। सुगन्धित धूमके बादल उड़ने लगे। विधि करानेवाला पुरोहित मन्त्रोच्चारण करने लगा। आठ और पुजारी वेदीके आसपास मंडलाकार बैठे उसकी सहायता कर रहे थे और उसके स्वरमें अपना स्वर मिला रहे थे। गम्भीर ध्वनिमें मंत्र गूँज रहा था—

या देवी सर्वभूतेषु,
शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै नमो नमः॥

और भी—

या देवी सर्वभूतेषु,
दीप्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै नमो नमः॥

और पुनः—

या देवी सर्वभूतेषु,
शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै नमो नमः॥

दिखाई नहीं पड़ रहे ? मुझे एक धनी पति मिल जायगा ! आप अपने मन्दिरसहित सुरक्षित हो जावेंगे ! जित् अपने पास रहेगा, एक ब्राह्मण बालक !"

अभिजित्, एक ब्राह्मण बालक । क्या उसे आग और लोहेके साथ ईमानदारीसे काम करनेवाले लुहारोंकी लम्बी वंशावलीके हाथोंकी कारीगरीकी विरासत नहीं मिलना है ?

"किसी दिन मेरा पति मेरे ही मुखसे सच्ची बात सुन लेगा—मेरे ओंठोंसे सारी बातें । वह कितना जलेगा ! और वह सर्वथा विवश होगा ! अपनी लज्जाको वह संसारके सम्मुख किस प्रकार उघाड़ कर बतलावेगा ?"

काल्लू कुछ बुदबुदाया; किन्तु लेखा बिना उस ओर ध्यान दिये कहती गई ।

"बात बिल्कुल सीधी और सरल है । आप चिन्ता छोड़ दें । आप हर्ष मनायें । विवाहकी तैयारियोंमें लग जायँ । यज्ञकी बात छोड़नेका तो अब समय रहा नहीं । कठिनाईसे एक सप्ताहमात्र शेष रहा है । निमंत्रण सब ओर चला गया है । तो यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित की जाय और आनन्दरूपी माताकी प्रतिष्ठा भी की जाय । मैं इस मन्दिरके नाटकके उस दृश्यको रुचिपूर्वक देखूँगी, और फिर अगले अंकमें प्रवेश करूँगी ।"

"सुन तो, चन्द्रलेखा···"

काल्लूकी पीड़ाको एक क्रोधका झोंका उड़ा ले गया । उसके मुखपर ऐसी भीषणता छा गई जैसी लेखाने इससे पूर्व कभी नहीं देखी थी । उसके नकुए फड़क रहे थे; उसकी आँखें फट रही थीं । लेखा एक क्षणके लिए भयभीत हो उठी । फिर वह हँस पड़ी, मानो उसे कोई व्याकुलता नहीं हुई ।

"सोनेका समय हो गया, बाबा !" वह वहाँसे निश्चयके भावसहित मुड़ी । "अब सो जाइए, सब ठीक हो जायगा ।" उसका स्वर रुक गया, आकस्मिक कंठरोधसे । चलते-चलते वह कह गई "हाँ, बाबा, सब ठीक हो जायगा ।"

२७

उस दिन प्रातः पुण्य ब्राह्म मुहूर्तमें ही यज्ञ प्रारम्भ होनेवाला था। उससे पहले दिन ही उसकी समस्त तैयारी कर ली गई थी। घीके एक सौ पीपे रेलकी एक वैगनमें भरे आकर रखवा दिये गये थे। सोमवल्लियोंके अगणित पुञ्ज भी आ गये थे। यज्ञका उद्घाटन वेदीपर अग्निको प्रज्वलित करके उसमें अति दुष्प्राप्य शुद्ध घृतकी आहुतियोंके द्वारा हुआ। सुगन्धित धूमके बादल उड़ने लगे। विधि करानेवाला पुरोहित मंत्रोच्चारण करने लगा। आठ और पुजारी वेदीके आसपास मंडलाकार बैठे उसकी सहायता कर रहे थे और उसके स्वरमें अपना स्वर मिला रहे थे। गम्भीर ध्वनिमें मंत्र गूँज रहा था—

या देवी सर्वभूतेषु,
शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै नमो नमः॥

और भी—

या देवी सर्वभूतेषु,
दीप्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै नमो नमः॥

और पुनः—

या देवी सर्वभूतेषु,
शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै नमो नमः॥

माताजीको धारण करना था रेशमी पीताम्बर। उनके मणिबन्धको सुशोभित करेंगी सुवर्ण-खचित शंख-चूड़ियाँ तथा उनके कंठका अलंकार होगा शुद्ध मोतियोंका सत-लड़ीका हार। वे यज्ञकी वेदीके समीप आसनीपर विराजमान होंगी और अग्निकी ज्वालासे उनका मुख उषादेवीके समान तप्त और रक्तवर्ण होगा। उनके श्वासके साथ सुगन्धी धूम्रका पान होगा जिससे वह उनके शरीरमें प्रविष्ट होकर उनके रक्तको पावन बनावेगा। यह विधि सारे दिन सायंकालतक चलेगी।

नगरके मन्दिरों तथा प्राचीन विद्याके विख्यात पण्डितोंको सम्मान-पूर्वक आमन्त्रण दिये गये थे। सभी सच्चे ब्राह्मणोंका आकर माताजीकी दीक्षाविधिके दर्शन करनेके लिए स्वागत था। महानगरके आध्यात्मिक जीवनमें आज एक महान् दिवस था। मोतीचन्द अपने कृत्रिम विनयका पालन करते हुए अपने समय और सम्पत्तिका मुक्तहस्तसे उपयोग कर रहा था।

मन्दिरके चौकमें श्वेत पटका मंडप खड़ा कर दिया गया था, जिसके द्वारा सूर्यकी धूपसे रक्षा हो रही थी। चौककी समस्त भूमिपर कमल-मण्डपके तलेतक नगरके केन्द्रीय जेलखानेके हाथ करघोंकी बुनी मोटी सूती सतरंजी बिछा दी गई थी। कमल-मंडप प्रतिष्ठित अभ्यागतोंके हेतु सुरक्षित रखा गया था। वहाँ संगमरमरकी पटी भूमिपर काश्मीरी बढ़िया दरी बिछाई गई थी। साटनके तकिये हाथ रखनेके लिए तथा लोढ़ तकिये पीठ टिकानेके लिए लगा दिये गये थे। इस शुभ अवसरपर पाश्चात्य ढंगकी कुर्सियोंको कोई स्थान नहीं दिया गया था। सब व्यवस्था भारतीय प्राचीन परम्पराके अनुसार की गई थी। केवल एक ही अपवाद था। मोतीचन्द अँग्रेजी ढंगसे भाषण करनेका पक्षपाती था, यथार्थतः इसीके फलस्वरूप उसे सार्वजनिक जीवनमें लाभ मिला था और विधान-सभाकी सदस्यता भी प्राप्त हुई थी। किन्तु उसका विचार इस अवसरपर प्रथम वक्ता बननेका नहीं था। यह सम्मान वह मंगल अधिकारीको देना चाहता था और स्वयं अन्तमें बोलना चाहता था। अपने वाक्चातुर्य तथा

श्रोताओंकी इच्छाके ज्ञानसे वकने वह आजके उपन्यासका प्रधान नायक हो रहा था। मोतीचन्द ही तो वह कठपुतली सूत्र है, जिसकी मंगल केवल छायामात्र है। वही समस्त तंत्रका संचालक है और मंगल केवल उसका साधनमात्र। मंगलका भी अपना मूल्य है। वह दिन अब दूर नहीं है जब वही कुछ बातोंमें विलक्षण और निपुण मनुष्य मोतीचन्दका ससुर वन जावेगा।

वहुधा, इन दिनों, मोतीचन्दको अपने द्वारा खेले जानेवाले खेलपर लज्जा आ जाती थी। मंगलकी कन्याको आनन्दरूपी माताके पदपर दीक्षित करनेके विषयमें उसने कभी एक वार भी अपने पंच साथियोंकी इच्छाका विरोध नहीं किया था। यथार्थतः उसने उस विधिको सफल बनानेके लिए सचाईसे प्रयत्न किया। किन्तु पंचोंके लिए एक आश्चर्य सुरक्षित था! वे उसे पसन्द नहीं करेंगे। पर मोतीचन्द अपने स्वयंके नियमानुसार खेल खेलने लायक बड़ा आदमी था।

मोतीचन्द उस कन्यापर मोहित था। वह उससे अपना विवाह करके ही रहेगा। वह भी राजी थी, ऐसा वह सुन चुका था। उसके तो सभी जगह कान लगे थे। वह मोटे मस्तिष्कवाला मंगल जो पहले उसकी इच्छाका विरोधी था, अब उसे भी यह अनिवार्य परिस्थिति स्वीकार करनी ही पड़ेगी। पहले वह माताजीका उपभोग अपने ढंगसे करनेपर तुला था। यह विचित्र ही है कि वह, मंगल और वे पंच मनमें एक-से ही थे। यथार्थ बात तो यह थी कि मोतीचन्द आनन्दरूपी माताने थोड़ अपना विवाह करने जा रहा था। उसे एक मर्त्य पुरुषकी पत्नी बननेके लिए यथासमय अपना वह आध्यात्मिक पद त्याग देना पड़ेगा।

उसने भला निर्णय किया। अपनी इस अवस्थामें सीधी नारी बननेमें ही अधिक आनन्द है। वह इतनी बात समझ भर तो जाय कि वह जिस पुरुषकी पत्नी बनने जा रही है वह इस कलियुगमें अश्रुतपूर्व नैतिक आदर्शोंका पालन करनेवाला है।

राधाके साथ मोतीचन्दके भविष्यमें सम्बन्धकी बात अभीतक

अनिश्चित थी। उस कूट प्रश्नके समाधानके लिए अभीतक उसने अपना मन खुला रखा था जिससे कि उसकी नई वधू ही उसका यथोचित हल निकाले। क्या उसका वह कर्तव्य नहीं होगा कि वह अपनी कलाओंसे अपने प्रेमी पुरुषका त्राण करे?

राधा बहुत जल्दी उसकी कठपुतली बन गई थी। उसने कोई विपत्ति उत्पन्न नहीं की। यह उसका भाग्य था, क्योंकि वह राधाके साथ वही व्यवहार नहीं कर सकता था जो उसने अपनी पहली पत्नियोंसे किया था। उसने कभी यह आशंका नहीं की थी कि वह अपनी माँगके सिन्दूरकी इतनी सावधानी रखती है। वह अपने पतिका सच्चा मूल्य जानती है। उस कालीके मन्दिरके गेरुआ वस्त्रधारी ठगका भी बहुत उपकार मानना पड़गा। अपनी तीक्ष्ण और गम्भीर आँखों द्वारा मोतीचन्दने ठीक मनुष्यको चुनकर निकाला था। राधा वैसी भोली नहीं थी, तथापि उसने उस मनुष्यका विश्वास कर लिया। धन्य है इस पवित्र भस्मकी महिमाको! स्वभावतः उस ठगने अपनी सेवाका अत्यधिक मूल्य वसूल किया। तथापि मोतीचन्दको उस खर्चका पश्चात्ताप नहीं था। जहाँ उसने एक दृष्टिसे चन्द्रलेखाको देखा और उसकी नसोंमें प्रेमरसके झोंकेका संचार हुआ कि उसे अपना वह समस्त व्यय सफल हुआ दिखाई दिया। वह कभी भी अकेले हाथों राधाके साथ संग्राम चलाकर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता था।

नगर अवश्य अपनी आनन्दरूपी माताको खो बैठेगा, किन्तु उसकी अपनी प्रतिष्ठा ऊँची उठकर आकाशको स्पर्श कर लेगी। हो सकता है कि वह अपनी पत्नीकी आध्यात्मिक भूमिकामें भागीदार बन जाय और वे दोनों मिलकर उसे आगे निभाते जायँ!

इस विचारने मोतीचन्दको चकित कर दिया। ऐसी बात केवल उसी-की प्रतिभाशाली बुद्धिमें आ सकती थी। वह अपने आपको उस भूमिका-में देखने लगा। समस्त आध्यात्मिक इतिहासमें यह अभूतपूर्व घटना होगी। एक क्षणके लिए तो वह अपनी ही दिव्य मूर्तिसे इतना प्रभावित हो उठा कि वह अपने ही चरणोंकी धूल उठाकर अपने मस्तकपर चढ़ाने-

को उत्सुक हो गया। किन्तु तत्काल ही वह खिलखिलाकर हँस पड़ा, और उसके दाँत बाहर निकलकर चमक उठे। विचार तो कुछ महत्त्वपूर्ण है, किन्तु व्यावहारिक नहीं। मान लो उसने साधुका चोगा पहन लिया। तो एक तो यह भी कोई सरल बात नहीं। दूसरे और भी बहुत-सी बाधायें हैं। उदाहरणार्थ, उसके व्यापारको ही ले लीजिए। वह केवल एक मैनेजरके द्वारा या हिस्सेदारोंसे तो नहीं चलाया जा सकेगा। तब तो किसी भी अवस्थामें उसके जीवनका उत्साह ही गुम हो जायगा।

इसी परसे उसे एक दूसरी समस्या दिखलाई दे गई—उसका वर्तमान मैनेजर और ससुर। राधाके चले जानेसे उसे भीतर ही भीतर चिढ़ा होगा और वह भरोसा करने योग्य नहीं रहेगा। तब उसको निकालकर उसके स्थानपर कोई दूसरा मैनेजर रखना पड़ेगा। किन्तु किसे नया मैनेजर बना-कर रखा जाय? सहायक मैनेजर छोटालालको? इस बातपर भी विचार-की आवश्यकता है। जो हो, ठाकुरदासको तो एकदम नौकरीसे अलग होनेका नोटिस दे ही दिया जाय। नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि वह कुछ उत्पातकी योजना बना डाले!···कितनी बहुत-सी क्लेशदायक बातोंका अभी निपटारा करना आवश्यक है।

× × ×

वह मुहूर्त आ गया।

प्रतिष्ठित अतिथि बड़े प्रातःकाल उठे और अपनी-अपनी मोटर गाड़ियोंमें मन्दिरकी ओर दौड़ पड़े। औरकी तो बात ही क्या, स्वयं सर अबलाबन्धु, जिन्हें देरसे उठनेकी आदत थी, आज ठीक समयपर मन्दिर-में आ उपस्थित हुए। सैकड़ों पण्डित-पुरोहित पास खड़े होकर यज्ञकी अग्निको प्रज्वलित करनेकी विधिको देखने लगे। सब बातें विधिवत् चल रही थीं। अब मंगल अधिकारीके भाषणकी तैयारी हुई।

ज्यों ही चन्द्रलेखा अपने पिताके साथ मण्डपकी सीढ़ियोंपर चढ़ी, त्योंही मोतीचन्दने उसे वह शुद्ध मोतियोंका सत-लड़ी हार समर्पित किया, जिसे उसकी विगत दो पत्नियाँ पहन चुकी थीं। लेखाका मुख शान्त था।

किन्तु उसकी आँखोंमें कठोरता थी। मोतीचन्द उसके मनकी बातको समझ गया।

"धैर्य रखिए" वह उसे कहना चाहता था। "ये पीले वस्त्र तुम्हें बहुत दिनों धारण नहीं करने पड़ेंगे। तुम्हारा नारीका हृदय रुँध रहा है और विरोध करना चाहता है। क्या मैं तुम्हारे मनको जानता नहीं हूँ? अरे मैंने तो चार-चार पत्नियोंका घर बसाया है—एकके पश्चात् एक, धैर्य रख, प्रिये! शीघ्र ही अपने विवाहके दिनका सुनहला प्रभात भी आवेगा।"

उसने देखा मंगल विचार-मग्न है। उसकी आँखें उनके गड्ढोंमें गड़-सी गई थीं, मानो वह कितनी रातोंसे सोया नहीं है। वह विशेष अतिथियोंका भी स्वागत नहीं कर रहा था। उसका मन जैसे कहीं अन्यत्र ही था।

"मंगलको क्या हो गया है?" सर अबलाबन्धुने अपने मित्रोंके कानमें धीरेसे पूछा। "वह भूत जैसा दिखाई दे रहा है!"

मोतीचन्दने धीरेसे उत्तर दिया "वह विह्वल हो उठा है। उसने बहुत लम्बी यात्रा कर डाली है। इतनेसे किसीका भी मस्तिष्क नरम पड़ जायगा।"

मंगल श्वेत वस्त्र धारण किये और पैरोंमें पुराने ढंगकी खड़ाऊँ पहने मण्डपपर आया। उसका सिर ऊपरको उठा हुआ था।

"यज्ञाग्निकी ज्वाला खूब ऊँची उठ रही है।"

मोतीचन्द मण्डपकी किनारपर आया और दर्शकोंकी ओर मुँह करके खड़ा हो गया। उसके दोनों हाथ छातीपर जुड़े हुए थे।

"मित्रो और भाइयो, कृपाकर आप सब शान्तिसे बैठ जायँ।"

सम्मतिसूचक 'हाँ' की प्रतिध्वनि हुई, और सब लोग पालथी मारकर बैठने लगे। मण्डपमें बैठे प्रतिष्ठित अभ्यागतोंने अपनी पीठों और तोंदोंको सुख देनेके लिए साटनके मोटे-मोटे तकियोंको खींचकर ठीक किया।

"मुझे इस बातका सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि मैं इस मन्दिरके—

महन्तजीसे, जिन्होंने भगवान्को स्वप्नमें देखा, प्रार्थना करूँ कि वे एक तात्त्विक संदेश रूपसे अपने कुछ अनुभवी शब्दों द्वारा हमें सुनाया करें। मित्रो और भाइयो, मैं आशा करता हूँ कि आप सभी मेरी इस प्रार्थना-का समर्थन करेंगे ?"

"हाँ ! हाँ !" स्वीकृतिकी ध्वनि सब ओर गूँज उठी।

कालू पीठपर कूबड़ निकाले कुछ देरतक चुप बैठा रहा। फिर धीरे-धीरे वह उठकर खड़ा हुआ। उसकी दृष्टि दर्शक-समुदायपर लगी हुई थी और उसका हाथ अपनी चमकती हुई गंजी खोपड़ीपर फिर रहा था। वह कुछ झूलता-सा प्रतीत हुआ।

एक और दीर्घ क्षणके मौनके पश्चात् कालूने बोलना प्रारम्भ किया।

"मैं आप लोगोंके सम्मुख भाषण करने योग्य कुछ नहीं हूँ।" ये शब्द हिचकते-हिचकते उसके मुखसे निकले। वह फिर ठहर गया। "ज्ञान मेरा नहींके बराबर है। मन्त्र और तन्त्र मैं जानता नहीं हूँ। शास्त्रके शब्द···"

"हम आपकी बात सुन रहे हैं, अधिकारीजी, सुन रहे हैं।" दर्शकों-मेंसे किसीने मैत्रीभावसे उसे प्रोत्साहित किया।

अब कालू अपनी अर्धनिद्रामेंसे जाग्रत हुआ। किसी आकस्मिक शक्तिने उसे बल दिया। प्रातःकालीन सूर्यकी किरणें मण्डपकी संगमरमर-की बनी जालीमें से प्रविष्ट होकर उसके पीछेकी ओर मुड़ रहीं और उसके मुखपरकी छायाको घनी बना रही थीं।

"शास्त्रोंके शब्द, जबसे उनका आविष्कार हुआ, जबसे हमारे जीवन-क्रमका प्रारम्भ हुआ, तबसे हजारों, लाखों वर्षोंतक वे शब्द मेरी जातिके लोगोंके लिए निषिद्ध रहे हैं और मैं जो आपके सम्मुख खड़ा हूँ तथा जिसने इस शिवमन्दिरका निर्माण किया है···।"

कालूका स्वर धीमा पड़ गया। किन्तु था उसमें संक्रामक भाव। "जिसने इस शिवमन्दिरको बनाया है वह, मैं, किसी ब्राह्मणकुल में उत्पन्न नहीं हुआ।"

कालूके इस वक्तव्यका श्रोताओंने हास्य-ध्वनिसे स्वागत किया। वे विनोदके रसमें झूमने लगे। लोग एक-दूसरेकी ओर देखने और हँस-हँसकर कहने लगे "क्या तुमने कभी इससे बढ़कर विनोदकी बात सुनी है?" "यह कोई हँसी-मजाक नहीं है। यह है संसारके साथ शान्त भावको प्राप्त परिपूर्ण आत्माका विनयपूर्ण आत्म-निवेदन। समझे कि नहीं?"

"इस अर्थके पीछे भी एक अर्थ है।"

कालूकी आँखें जमी और सुलग रही थीं। उसने अपने श्रोताओंका सर्वेक्षण किया। उसके समयका घंटा बज चुका था, उस समयका जिसकी ओर वह गत सप्ताहों, गत महीनोंसे परिश्रमपूर्वक निरन्तर बढ़ रहा था।

जब लेखाने ऐसे पुरुषके साथ अपना विवाह करनेकी सम्मति प्रकट की जिसे वह कभी प्रेम नहीं कर सकती, कभी आदरकी दृष्टिसे देख नहीं सकती, तभी कालूने जान लिया कि वह उसका बदला चुका रही है। तो क्या उसने सोच लिया कि वह उस मूल्यपर जीवनका भी सौदा कर सकता है? क्या वह चन्द्रलेखाकी आँखोंमें इतना गिर गया?

कालू समझ गया था कि किस बातने उन बाप-बेटीके बीच इतना अन्तर डाल दिया। वह अपने आपको देख-देखकर काँप उठा।

वह शेरपर सवार था और उतर नहीं सकता था। वह उसपर पैर लटकाये बैठा था, अर्ध निश्चेष्ट, किन्तु विवश। और वह हिंस्र पशु कभी अपनी इच्छानुसार शिकारकी खोज करता और कभी छलाँगें मारता हुआ दौड़ने लगता। फिर भी सवारी करते-करते उसे सदैव इस बातका ध्यान था कि अपने वाहन शेरका नाश किये बिना उसे और कोई गति नहीं है।

अपने वर्तमान सुख, सुरक्षा और आरामको त्यागकर झरनाकी बस्तीमें कठोर जीवन यापन करनेके विचारसे उसे भय उत्पन्न होता था। इसी कारण वह अपनेको निर्बल अनुभव करने लगता और अपनी टाँगोंको अपने वाहनके आजू-बाजू खूब दबाकर अपनी जगह जमकर बैठनेका—

प्रयत्न करने लगता था।

किन्तु उस शेरको मार गिरानेकी आवश्यकता बढ़ती जा रही थी और उसमें उसके योग्य बल भी उत्पन्न हो रहा था, ऐसा बल जिसका उसने इससे पूर्व कभी अनुभव नहीं किया था। उसकी यह शक्ति वह थी जो लोगोंको उनके यथार्थ रूपमें देखने-समझनेसे आती है। उसने गंभीरतासे देख लिया था अपनेसे उत्कृष्ट लोगोंके मुखोंको, उन लोगोंके मुखोंको जो उससे ऊपरके लोकमें रहनेवाले समझे जाते थे और जिनकी छायामात्रसे उसके मनमें अपनी हीनता और विनयका भाव उत्पन्न हो उठता था। किन्तु अब वह उनकी बराबरीपर पहुँच गया था और उनके आकार-प्रकारका अंदाज भी भलीभाँति लगा चुका था।

झरना बस्तीके एक सीधे-सादे लुहारको जो कुछ भुगतना पड़ा था वह उसके व्यक्तित्वमें धीरे-धीरे खूब समा गया था। वह जेलखाना, वह वेश्यागृह और यह मन्दिर! व्याधि, लज्जा और हर्ष! अब कभी पुनः उस लुहारका अपमान न हो सकेगा, उसकी हँसी न उड़ाई जा सकेगी, वह पैरोंसे कुचला नहीं जायगा। कभी भी नहीं। कारण कि उसके मनके बन्धन कट गये थे। उसकी आँखोंकी दृष्टि निर्मल और चकाचौंधसे मुक्त हो गई थी।

अगला पहलू तब सामने आया जब बितेनने उसे एक नई स्फूर्ति प्रदान की और उसके हृदयके अन्तरतम भागको झकझोरा—शब्दोंसे नहीं, किन्तु केवल आचरणद्वारा। उसका आदर्श था विचारके साथ न्याय करनेके हेतु अपनी भावनाको कुचल डालना।

कालूके लिए बितेनने जिस मानसिक क्रान्तिकी भविष्यवाणी की थी वह तो संभवतः किसी-न-किसी प्रकार आती ही, किन्तु चन्द्रलेखाके आत्म-बलिदानके निश्चयने उसे तत्काल निर्णय करनेके लिए विवश कर दिया। उसके हाथमें अन्ततः वह मानसिक दृढ़ता आ गई जिसके द्वारा वह अपने वाहन शेरके हृदयमें छुरी भोंकनेके लिए तत्पर हो गया।

और अब जब यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित थी तथा वायु धूपकी सुगन्ध

और मन्त्रोंकी ध्वनिसे सघन हो रही थी तभी शेरके सत्यानाशका उपयुक्त अवसर था। स्वयं लेखाको भी इसका पता नहीं था। कालूमें नाटकीय चेतनाका अभाव नहीं था और अपनी मुक्तिका इससे बढ़कर नाटकीय तथा अमिट कोई मार्ग भी नहीं था।

"आप लोग हँसते हैं ? अच्छी बात है, हँस लीजिए ! हँस लीजिए तब तक जब तक कि कठोर सत्य आपके पेटमें प्रवेश करके लोहेके गोले-के समान न फिरने लगे। हँस लीजिए, भाइयो और मित्रो।"

कालू साँस लेनेके लिए ठहर गया।

"मैं कह ही चुका हूँ कि मैं आप लोगोंके सम्मुख व्याख्यान देने योग्य नहीं हूँ। वह तो केवल एक बात करनेका प्रकार है। ज्ञान मेरा नहींके बराबर है, यह मैं बतला चुका हूँ। यह भी एक बात कहनेका प्रकार है। मैंने अपने हाड़-मांसमें एक सबक सीखा है। यह शिक्षा आपके तंत्र और मंत्रसे बड़ी है 'हे पुरोहितो और पंडितो, अब अच्छी तरह सुनिए। सत्य बात सुनिए।" उसकी आवाज काँप उठी। "मैंने झूठे देवताकी स्थापना की है, क्योंकि मुझे बिलकुल ही कोई स्वप्न नहीं आया था। मैंने तुमसे अधर्म और अपना मुख काला करवाया है, अब तुम्हारे लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है। शायद शास्त्रकारोंने इसके लिए किसी प्रायश्चित्तका विधान नहीं किया, क्योंकि उन्होंने ऐसी बात घटित होनेका कभी स्वप्न भी न देखा होगा। आप लोगोंमेंसे कुछकी इस कारण मुझपर वक्रदृष्टि हुई है, क्योंकि मैंने एक अज्ञात जातिके अनाथ बालकको आश्रय दिया है। एक अधम लुहार आप लोगोंकी उन आत्माओंका कल्याणकारी बना है जो जाति और धनसे भ्रष्ट हुई हैं।"

चकित और विस्मित होकर समस्त श्रोतागण न कुछ कह सके और न कुछ कर सके। वे चुपचाप आश्चर्यमें मग्न हो रहे। केवल एकमात्र चिल्लाहटकी आवाज आई "यह क्या विपत्ति है ! नहीं, नहीं, यह कभी सत्य नहीं हो सकता।"

"नहीं ?" कालूका लोहेके समान कठोर मुख क्रोधसे लाल हो गया।

उसने अपने पीले उपरनेको पकड़कर शरीरसे उतार फेंका और अपनी छातीको नंगी करके दिखा दिया। वहाँ यज्ञोपवीत नहीं था।

पाँच सौ जोड़ी आँखें मंत्रमुग्ध-सी उसकी उघड़ी छातीकी ओर देखने लगीं। वे अन्यत्र मुड़ ही नहीं रही थीं।

उस घोर स्तब्धतामें धीरे-धीरे एक छिनी कुसकुसाहट प्रारंभ हुई। वह भीड़ उस सर्पके समान थी जो शीतकालकी दीर्घ निद्राके पश्चात् जागृत हो रहा हो।

"तो अब आप लोग अन्ततः समझ गये होंगे कि मैं बाहरसे आया हुआ लुहार हूँ। भूखने मुझे अपने घरके बाहर निकाला। भूख मुझे जेलमें ले गई। वहाँसे निकलकर मैं साक्षात् नरकमें जा पहुँचा। मैंने पापका मुख देखा। मैंने अपने आपसे एक प्रश्न पूछा—मैंने, जो अपने भाग्यसे अपनी जीवनकी साधारण स्थितिसे, पूर्णतः संतुष्ट था। मुझपर जो कुछ बीत रहा था उससे मैं एक गोरखधन्धेमें पड़ गया। अन्ततः मुझे उत्तर मिला। झूठके बराबर कोई सत्य नहीं! तुम अपने आपसे और दूसरोंसे जितना छल करोगे उतने ही सत्य बनोगे! उत्तरका शेष अंश यह है। पापका सामना और विरोध पापके ही अस्त्र-शस्त्रों द्वारा किया जा सकता है।"

कालू रुका और तीक्ष्ण दृष्टिसे मंचपर बैठे हुए प्रतिष्ठित लोगोंकी ओर देखने लगा। सर अबलाबन्धु एक विलक्षण रूपसे मुस्कुरा रहे थे, मानों वे उस परिस्थितिको विनोदकी दृष्टिसे देख रहे हों। मोतीचन्द चकरा रहा था। जोगेश अपने चश्मेके काँच साफ कर रहा था और उसके हाथ काँप रहे थे। और चन्द्रलेखा? कालू एक दृष्टिसे उसीकी ओर देखने लगा।

लेखाके मुखपर भक्तिपूर्ण तल्लीनताका भाव था। यह भाव कालूने उसके मुखपर तब देखा था जब वह छोटी बच्ची थी और बैठी-बैठी अपने बाबाको लोहे और आगमेंसे घोड़ेका नाल बनाने जैसा काम करते देखती थी। उसके मुखकी वह मुद्रा कालूने तब भी देखी थी जब वह एक बार

आधी रातको जाग उठी थी और उसने उसे उसकी भूगोलकी पुस्तकपर दृष्टि दौड़ाते देखा था। किन्तु इधर दीर्घकालसे उसे उसकी वह मुद्रा देखनेको नहीं मिली थी। आज उसे देखकर उसके हृदयमें फौलादका बल और शहदका माधुर्य दौड़ गया और उसके द्वारा उसे क्रोधसे नाश करने तथा प्रेमसे निर्माण करनेका बल मिला। अब वह पृथ्वीको अपने हाथोंसे हिलाने तथा मौनसे वेदनाको सहन करनेमें समर्थ था। उसे इतना सुख हुआ कि समाता नहीं था।

कालूने अपना मुख फिर भीड़की ओर फेरा। लोग अभी भी दंग थे।

"इस प्रकार सर्वप्रथम मैंने ब्राह्मणका वेष धारण किया। मेरी छातीपर ओर-छोर जनेऊ झूलने लगा। आप मेरे साथ अन्याय करने या मुझे धोखेबाज कहनेकी धृष्टता न करें। मैंने उसी प्रकार ब्राह्मणत्वका पालन किया है जिस प्रकार आप लोगोंने। फिर मैंने वह चमत्कारका जादू किया।" कालू कुछ क्षणोंके लिए ठहरा और उसकी ध्वनिमें नवीन उत्साहका तेज आ गया। "यहाँ उपस्थित मेरे प्रिय मित्रों द्वारा प्रति दिन अनेक जादूके काम किये जाते हैं। किन्तु यह जादू मेरा अपना था। मैंने एक पत्थरके टुकड़ेको काट-छाँटकर शिवकी पिंडीका रूप दिया और उसे वहाँ गड़ाया जहाँ अब यह मन्दिर खड़ा है। उस पत्थरके टुकड़ेके नीचे दो सेर चने रखे गये थे। जैसे-जैसे मैं ऊपरसे भूमिको जलसे सींचता गया तैसे-तैसे नीचेके चने फूलते गये और वह पत्थर उठकर ऊपर दिखाई पड़ गया। लोग आसपास खड़े-खड़े उस चमत्कारको देखते रहे।"

अब वह जनतारूपी सर्प पूर्णरूपसे जाग उठा। उसका फण झूलने लगा और उसके दाँतोंमें विषका संचार हो गया।

"मंदिर बनना प्रारंभ हुआ। मंदिर बढ़ा। बड़े-बड़े लोग अपनी थैलियाँ ले लेकर सामने आये।" कालू सपेरेके स्वरमें बोलता गया। "वे बड़े आदमी अपना-अपना स्वार्थ रखते थे और अपनी-अपनी जादूकी चालें। और हालहीमें उन्होंने मेरे ही समान एक चमत्कारी चाल चलके दिखलाई है।"

कालूने अपने छुरेकी अन्तिम चोट लगानेके लिए अपनी साँस रोकी और उस समस्त जन-समुदायने एक व्यक्तिके समान उसके आवेगका अनुभव किया। कालूने एक बार फिर चन्द्रकेतके अहातेमें बैठी युवतीकी ओर देखा।

"जिस भोली भाली युवती लड़कीने कभी कोई धार्मिक श्रेष्ठताका दावा नहीं किया, जो बंगालकी अन्य एक करोड़ लड़कियोंसे भिन्न नहीं है, उसे ही लेकर उन्होंने ऐसे असत्यकी कल्पना कर डाली है जो इस मन्दिरके भीतर स्थापित असत्यसे कम नहीं है। उन्होंने उसे आनन्दकी माता बना डाला है।"

पुजारी सभाकी अगली पंक्तिमें बैठा सुन रहा था। अब उससे नहीं रहा गया। वह कूदकर उठ खड़ा हुआ, मानो वह किसी चक्करदार कमानीसे छूट निकला हो। वह पागलके समान चिल्ला उठा, "अरे, इस पापीने हमें मैला खिला दिया। इस अधमने हमें जन्म-जन्मान्तरोंके लिए डुबा दिया।" पुजारीकी भूरी लम्बी दाढ़ी झटके खा रही थी। "इस नीचको अपने कियेका फल चखाना चाहिए।"

सारा समाज गलेभर चिल्ला उठा "बदमाश! शैतान! मारो इसे। इसके शरीरकी हड्डी-हड्डी चूर कर दो। इसने हमें मैला खिला दिया।··· नरकके गड्ढेसे निकला शैतान कहीं का···इसने हमें जन्म-जन्मान्तरके लिए डुबा दिया।···अरे, यह मनुष्यके रूपमें पिशाच है···"क्रोधसे गुर्राती हुई ध्वनियाँ परस्पर मिलने और टकराने लगीं। हवामें मुक्के उठते दिखाई देने लगे।

कालूने फिर कहना प्रारंभ किया।

"ठहरिए!" उसने जोर भर आवाजमें चिल्लाकर कहा, "क्योंकि, अभी मेरी कहानी समाप्त नहीं हुई।"

किन्तु अब मोहिनी समाप्त हो चुकी थी। लोग चिल्ला-चिल्लाकर पागलपनकी धमकियाँ दे रहे थे। तथापि वे निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि किया क्या जाय। मोतीचन्दने पुजारीको इशारा किया और वह

मंचकी कगारपर उसके पास गया। मोतीचन्द उत्तेजनाके साथ उसके कानमें कुछ फुसफुसाया, जिसपर पुजारीने सिर हिलाकर हाँ, हाँ, किया।

"अब मैं आप लोगोंको एक दूसरा और पहलेसे भी अधिक बड़ा सत्य सुनाता हूँ, जिसे कि मैंने खोजकर निकाला है और जिसके कारण ही मैं आज आप लोगोंके सम्मुख खड़ा हुआ हूँ।" काल्रूने कहना प्रारम्भ किया।

अकस्मात् एक पत्थर आकर उसकी खुली छातीपर लगा। काल्रू चुप हो रहा। मंचपरके प्रतिष्ठित लोग संगमर्मरके खंभोंके पीछे छिपकर अपनी रक्षा करनेके लिए भाग खड़े हुए।

काल्रूकी छातीसे खून चूने लगा। किन्तु उसने उसे पोंछनेका कोई प्रयत्न नहीं किया। चन्द्रलेखाने उसे अपनी बाँहोंसे लपेटकर अपनी देहसे ढक लिया। काल्रूने उसे अपनी बाजूकी ओर ढकेलकर खड़ा कर लिया। वह मंचपर इस प्रकार अचल खड़ा था जैसे मानों वह ठोस पत्थरकी चट्टानसे गढ़ा गया हो।

"वह औरत! निर्लज्ज कहींकी···उसकी आँखोंसे वेश्यापन टपक रहा है। यथार्थतः, इसकी उत्पत्तिके विषयमें हमें कई बार सन्देह हुआ है।··· मेरी पत्नीने इसे जान लिया था और उसने मुझसे उस दिन कहा था···"

"अरे वह छोकरा भी इसीका जारज पुत्र होगा, इसमें सन्देह नहीं।"

"चमार? अरे, इसका चमड़ा, इसके अंग-प्रत्यंग नीचसे नीच अस्पृश्य जैसे हैं, चमार, भंगी कहींका।"

"अरे, इन तीनोंपर आकाशसे गाज क्यों नहीं गिरती जिससे ये भस्म हो जायँ!"

"अरे, इनकी लाशोंको गीध और कौए क्यों नहीं चीथते?"

काल्रू लोगोंके उत्तेजित मुखोंकी ओर देखता रहा। तथापि उसे क्रोध

शान्त हो गया था। उसके मुखपर विषादकी छाया थी और उसकी आँखोंमें करुणाकी विलक्षण कोमलता उतर आई थी।

पुजारी चिल्ला रहा था, "भाइयो, ईंट-पत्थर मत फेंकिए। मंचपर अपने सम्मान्य अतिथि बैठे हैं। दूसरे उपाय भी हैं..."

"हम इनके अंग-अंग चीर डालेंगे...वह शैतान और वह वेश्या! उन्होंने हमें जन्म-जन्मान्तरके लिए डुबा दिया है। उन्हें इसी वटवृक्षसे फाँसीपर लटका दो!"

इधर तनाव बढ़ता जा रहा था। उसी समय घासपर बैठे या भीड़में खड़े अनिमन्त्रित लोगोंकी कतारोंमें धीरे-धीरे प्रतिक्रिया होती जा रही थी। वे सामान्य लोग थे—सड़कें झाड़नेवाले, रिक्शावाले, पड़ोसकी हीमासोन फैक्टरीके मजदूर—जो तमाशा देखनेके लिए वहाँ एकत्र हो गये थे। वे इस सभाकी कार्रवाईसे हैरान थे और कुछ देरतक परिस्थितिको समझ ही नहीं सके। किन्तु कालूके शब्दोंने उनके मनमें बैठकर उनके अन्तरंगको हिला दिया। जिन लोगोंके समझमें बात जल्दी आ गई, उन्होंने अपने साथियोंको समझा दिया। लोगोंकी भौंहें तनने लगीं और वे बुदबुदाते हुए उत्तेजित होने लगे।

"क्या ही आश्चर्य है! उसने इन बड़े-बड़े लोगोंको धूल चटा दी!"

"बड़े आये कहींके आकाशपर नाकें चढ़ाकर! ये अपनको पैरों तले ऐसा कुचलते हैं जैसे हम कोई कीड़े-मकोड़े हों! नहीं, उनसे भी बदतर, क्योंकि कीड़े उन्हें वैसा अपवित्र नहीं करते जैसी अपनी उपस्थिति या अपना स्पर्श।"

"मानो ईश्वर जातका ब्राह्मण ही हो!"

"मानो चमारोंको पुण्य कमाना ही नहीं चाहिए जिससे कहीं वे स्वर्गमें पहुँचकर इन ऊँची जातवालोंके साथ कन्धेसे कन्धा न रगड़ने लगें!"

इस प्रकार पीछेकी कतारोंमें बातचीत चलने लगी। तबतक मण्डपके भीतरवाले लोगोंने अपनेको सँभाला।

"इस बदमाशको अदालतका मजा चखाना चाहिए।" एक प्रख्यात न्यायाधीशने खम्भेके पीछे छिपे-छिपे एक प्रसिद्ध वकीलकी ओर मुँह करके कहा।

"साफ-साफ धोखेबाजीका मामला है !" वकील अपने मनमें ताजीरात हिन्दकी दफाओंका स्मरण करने लगा।

"यदि वह अपराध सिद्ध न हो सका, तो शासनको सामने आना पड़ेगा और रोक-थाम करनी पड़ेगी।" मन्त्रालयके एक उच्च पदाधिकारीने कहा। "हम युद्धके कालमें लोगोंका नैतिक स्तर गिरने नहीं दे सकते।"

"आश्चर्य नहीं जो लोगोंका क्रोध सीधी चोटमें व्यक्त हो उठे।" एक भूरे बालोंवाले राजनैतिक पुरुषने भीड़की ओर तिरछी दृष्टिसे देखकर कहा। "और यदि वे समाजके इन दो शत्रुओंका विनाश करनेपर तुल जायँ, तो हम कुछ कर भी नहीं सकते।"

मण्डपके अति दूरवर्ती कोनेके खम्भेके पीछे सर अबलाबन्धुके मुखपर तनावकी छाया थी। वे अपनी हँसीको रोकनेका प्रयत्न कर रहे थे।

"आश्चर्य !" वे अन्तमें कह ही उठे। "कैसी विलक्षण व्यापारिक बुद्धि ! कैसा उपाय ! इस लुहार जैसे एक-दो व्यक्ति मेरे कार्यालयमें न हुए !" उन्होंने अपने पास खड़े हुए मोतीचन्दके कंधेपर हथेली मारी। "भाई, अन्ततः है तो वह तुम्हारी ही खोज !"

भीड़में दलके दल कड़ी कारवाईकी प्रेरणा करने लगे। किन्तु पीछेकी कतारोंके लोगोंमें वही बातचीत चलती रही।

"उसने ऐसा सबक सिखाया है जो इनके पेटमें सदा बैठा रहेगा।"

"ये लोग जो हमारे ऊपर धूल उछाला करते हैं उसके बदलेमें उसने इनके चूतड़ोंपर अच्छी तीन-तीन लातें जमाई हैं।"

"जो इस मन्दिरका महन्त रहा है, वह अपना भाई-बन्द है।"

रोष और आवेशसे पूर्ण उस भीड़को चीरते हुए दो व्यक्ति मंचकी सीढ़ियोंके पास आकर और भीड़की ओर अपना मुँह फेरकर खड़े हो गये, मानो वे कालूके अङ्ग-रक्षक हों !

कालू अपने जोरसे चिल्लाकर बोलना चाहता था। उसकी आँखोंमें ज्योति थी ! वितेन ! विश्वनाथ ! अरे, वे वापिस आ गये ! वे ठीक समयपर आये जिससे कि वे उसकी बातें सुन लें और देख लें कि वह अपना फौलाद किस प्रकार शेरके भीतर गहरा भोंकता है। कुत्तोंको धूलने बदलेकी चोट लगा दी—ऐसी जगह लगा दी जहाँ वह पीड़ा उत्पन्न करे।

चन्द्रलेखाके मुखपर आनन्दकी लहर दौड़ गई और पूर्व स्मृतिके प्रवाहसे वह दमक उठा।

क्या उसने उसके उस क्षणिक अपराधको क्षमा कर दिया ? क्या उसे इस बातका आभास मिल गया कि उसने अकस्मात् विदा होकर उसे कितना क्लेश पहुँचाया है ? क्या वह जान गया कि उसीने उसको उस मन्दिर तथा आनन्दरूपी माताको समर्पित किया है ?

इसी समय एक अचिन्त्य घटना घटी। सामान्य लोगोंकी पिछली कतारोंसे जोरकी आवाज आई—"हमारे बन्धुकी जय !"

यह अकेली और जबरदस्तीकी ध्वनि थी। तथापि उसने लोगोंकी भावनाको मूर्तिमान् रूप दे दिया। उस ध्वनिने हजारोंको उसी प्रकार चिल्लानेका बल प्रदान किया। "हमारे बन्धुकी जय !" यह ध्वनि विस्फोटके समान गूँज उठी।

पट-मण्डपके नीचे जो ब्राह्मण बैठे थे वे मानों कोई आदेश पाकर पीछेकी ओर मुड़कर देखने लगे। मंचपर बैठे लोग हक्का-बक्का रह गये। यह क्या हुआ ? इस कपटीने किस प्रकार बाजी अपनी तरफ मोड़ ली ? क्या इसने आपत्तिकी आशंकासे भीड़में अपने आदमी रख दिये थे ? पुलिस कहाँ है ?

"हमारे बन्धुकी जय !" यह ध्वनि उत्तरोत्तर अधिकाधिक आवाजों-से प्रबल होती गई, और उसमें रोषकी ज्वाला भी फूटने लगी। "हमारे बन्धुकी जय !"

काल्लू उतना ही चकित था जितने कि ब्राह्मण। ये कौन लोग हैं जो उसका अभिनन्दन कर रहे हैं ? उसने एक बार उन चिल्लानेवालोंकी ओर देखा और वह समझ गया।

"मोतीचन्द !" सर अबलाबन्धुने पुकारा। उनके मुखपर कठोर गंभीरता छाई थी। दोनोंने कुछ परामर्श किया।

"हमारे बन्धुकी जय !" अब यह वहाँका नारा बन गया।

कालूने समझ लिया कि अन्ततः संग्राममें उसकी जीत हो गई।

बितेन ! तुम सुन रहे हो ?

विश्वनाथ ! सुनते हो ?

कैसे कोई अपने ही हाड़-मांसको धोखा दे सकता है ? कबतक ?

और चन्द्रलेखाके हृदयमें भी आनन्दकी लहर उठी—इतने वेगसे कि वह उसे सम्हाल नहीं पा रही थी।

बाबा ! लोग आपकी जय बोल रहे हैं।

बाबा ! इस क्षणकी तुलनामें हमारे लिये सौ मन्दिरोंका मूल्य तुच्छ है।

बाबा ! इसके पश्चात् हमपर चाहे जो बीते, हम चाहे जहाँ जायँ, हम पुनः दुखी और पराजित नहीं हो सकते।

अन्ततः ब्राह्मणोंमें भय छा गया। वे उठ खड़े हुए और भागनेको तैयार हो गये। गुंडे चारों ओर खड़े हैं ! उनकी कमरमें खंजर छिपे हैं। भागो, दौड़ो…

मोतीचन्द जल्दीसे मंचके अग्रभागपर आया। वह अपनी छातीपर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और लोगोंसे सुननेकी प्रार्थना करने लगा।

उसका स्वर भारी और दबा हुआ था। उसने कहा "हमें हर प्रकारसे शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखना चाहिए। हर स्थानपर कठोरता

काम नहीं देती, फिर धर्म स्थानमें तो बिलकुल नहीं, चाहे कितनी ही उत्तेजना क्यों न दी जाय। जिस अधर्मी कमारने परमेश्वरकी हँसी उड़ाई है उसे अवश्य दंड मिलेगा। उस दैवी हाथने अपना कार्य करना आरंभ कर दिया है। क्या उसीने इस लुहारसे स्वयं अपना पाप नहीं उगलवा लिया? इसे क्षमा करना सहज नहीं है। तथापि इस महानगरीके आध्यात्मिक नेता जिनपर भारतको और संसारको अभिमान है, अपनेको मानसिक कटुताके प्रवाहमें बहा नहीं सकते।...”

“आ, चन्द्रलेखा!”

नवदलकमल मण्डपसे उतरकर काल्लू नरम धरतीपर आ गया। वह अपने हाथमें अपनी बेटीका हाथ थामे हुए था। उसने विकासकी ओर दृष्टिपात किया मानों उससे एक प्रश्न किया हो। विकासका उत्तर धीरे-धीरे भावुकताके साथ मिला।

“हे मित्र, तुमने अपना मार्ग चुन लिया। तुमने उन दूसरोंपर, विजय प्राप्त कर ली है। तुमने अभी जो कुछ करके दिखलाया है वह हम जैसे सैकड़ों हजारोंके हृदयोंको फौलादके समान बल प्रदान करेगा। तुम्हारी कहानी एक स्वतंत्रताका आख्यान बनेगी, वह आख्यान जिससे हम सबको एक नई स्फूर्ति, नई जाग्रति प्राप्त होगी।”

वे एक समान भावनासे जुड़ गये और एक-दूसरेको अपनी दृष्टिमें पकड़े रहे। अन्ततः काल्लूने मधुरतासे मुस्कराकर अपना सिर हिलाया।

“नहीं, विकास मुकर्जी! यह विजय तुम्हारी ही है।”

काल्लू मुड़ा, वहाँसे चल पड़ा। वह अपनी विशाल हाथकी मुट्ठीको आगे करके लोगोंके तनाव और रोषपूर्ण मुखोंकी पंक्तियोंको चीरता हुआ आगे बढ़ता गया।

“अरे, वह मोतियोंका हार!” मोतीचन्द अपने भाषणके बीचमें ही चिल्ला उठा।

चन्द्रलेखा उस मोतियोंके हारको भूल ही गई थी। उसने एक

झटकेके साथ उस हारको अपने गलेसे दूर किया और उसे मोतीचन्दकी छातीपर फेंक दिया। फिर वह आगे बढ़ी।

बितेन और विश्वनाथ उसके पीछे-पीछे चले और भीड़के अन्तकी कतारपर पहुँचकर रुक गये।

"इस क्षण उन्हें एक-दूसरेकी ही आवश्यकता है, अन्य किसीकी नहीं।" बितेनने कहा।

विश्वनाथने सिर हिलाकर इसे स्वीकार किया। केवल कालू अपनी पुत्रीके साथ उस मन्दिरके फाटकसे बाहर चला गया।